रामायण
का पात्रालेखन

युगप्रधानाचार्यसम
पू.पं.श्री चन्द्रशेखरविजयजी म.सा.

तपोवनमें
बाल संस्करण शिबिर

स्थल
(१) तपोवन संस्कारधाम नवसारी
(२) तपोवन संस्कारपीठ साबरमती-अहमदाबाद

रविवार से रविवार सिर्फ 7 दिन के लिए

समय
(१) ग्रीष्म (Summer) वेकेशनमें-ऐप्रिल/मे मासमें
(२) क्रिसमस वेकेशन में डीसेम्बर मासमें

शिबिर के आकर्षण

- ✓ सुबह योगा, शासनवन्दना
- ✓ पू. गुरुभगवंत द्वारा सरल भाषामें कहानी और प्रवचन
- ✓ माता-पिता के उपकारो की बोधकथाएँ
- ✓ Musical अष्टप्रकारी पूजा, संध्याभक्ति
- ✓ विशिष्ट आंगीस्पर्धा का आयोजन
- ✓ Quiz Contest, अंताक्षरी, One Minit Game, Maths Magic
- ✓ विशाल मैदानमें Cricket मैच, वोलीबोल आदि Outdoor games Competition
- ✓ सिक्का शोध, Musical Chair, कोथला दौड Sack Race आदि Competition
- ✓ रोज आमरस, मीठाई से भरपूर मेनु
- ✓ शिबिर के हर बच्चे को कोमन गीफ्ट

शिबिर के अंतमें माता-पिता की उपस्थितिमें 4 दिनमें तैयार कीया गया स्टेज प्रोग्राम

तपोवन-नवसारी
भाविनभाई (गृहपति)
मो. 93777 70006

विशेष जानकारी हेतु

तपोवन-अहमदाबाद
अल्पेशभाई (गृहपति)
मो. 93761 32575

रामायण का पात्रालेखन

: लेखक :

युगप्रधान आचार्यसम

पंन्यासप्रवर श्री चन्द्रशेखरविजयजी

www.yugpradhan.com

२८५

कुटुम्ब के हर सभ्य को अपनी मर्यादा का ज्ञान
देनेवाला रामायण है । इस रामायण के राम, रावण आदि
सात पात्रो का गुणसभर जीवन को सरल भाषा में
पुस्तुत करनेवाला पुस्तक

कमल प्रकाशन ट्रस्ट

रामायण का पत्रालेखन

प्रकाशक : कमल प्रकाशन ट्रस्ट
१०२-A, चंदनबाला कोम्पलेक्स, आनंदनगर पोस्ट ओफिस के पास,
भठ्ठा, पालडी, अहमदाबाद-७. फोन : (०७९) २६६०५३५५

लेखक-परिचय

सिद्धान्तमहोदधि, सच्चारित्रचूडामणि, स्व. पूज्यपाद आ. भगवंत
श्रीमद्विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराजा साहब के विनेय
युगप्रधान आचार्यसम पू. पंन्यासप्रवर श्री चन्द्रशेखरविजयजी म.साहेब

www.yugpradhan.com

हिन्दी आवृत्ति :
प्रथम संस्करण : प्रत: १०००
द्वितीय संस्करण : प्रत: १०००
तृतीय संस्करण : प्रत: १०००
वि. सं. २०७२, फागण सुद – ५, दि. १३–०३–२०१६

मूल्य ₹. ७०/–

मुद्रक:
विद्या ऐंटरप्रायझेस
नाना पेठ, अशोक चोक, पुणे.
मो.: 9822428728, 8983896805.

प.पू. युगप्रधान आचार्यसम परम शासनप्रभावक
पंन्यासप्रवर श्री चन्द्रशेखरविजयजी म.साहेब
की तेजस्वी तवारिख

मूलवतन	: राधनपूर
संसारी नाम	: इन्द्रवदन
संसारी माताका नाम	: सुभद्राबहन
संसारी पिताका नाम	: कान्तिभाई
जन्मतिथि और स्थल	: सं. 1990 फागण सुद-5 मुंबई (अंधेरी)
व्यवहारिक अभ्यास	: कोलेज पहेला वर्ष
दीक्षातिथि और स्थल	: सं. 2008 वैशाख सुद-6 मुंबई (भायखला)
दिक्षीत नाम	: मुनिराज श्री चन्द्रशेखरविजयजी म.साहेब
गुरुदेवश्रीका नाम	: सिद्धान्तमहोदधि प.पू.आ.भ. श्रीमद्विजय प्रेमसूरीश्वरजी म.साहेब
ग्रहण और आसेवन	
शिक्षादाता गुरुदेव	: आ.भ.श्रीमद्विजयभुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा.
विद्यादाता गुरुदेव	: आ.भ.श्रीमद्विजयगुणानंदसूरीश्वरजी म.सा.
विद्यादाता पंडितवर्य	: ईश्वरचन्द्रजी पंडित-दुर्गानाथजी झा-प्रभुदासभाई पारेख
पंन्यासपद प्रदानतिथि	: मागसर सुद-10, तपोवन नवसारी वि.सं.2041
कुल पुस्तक लेखन	: 300
शिष्यो	(1) आचार्यपदआरुढ शिष्यो - 5 (2) पंन्यासपदआरुढ शिष्यो - 11 (3) कुल शिष्यंसपदा - 108
युगप्रधानआचार्यसम पदप्रदान तिथि	: सं. 2069, कारतक वद-14, दि. 12-12-2012
स्वर्गवास तिथि	: श्रावण सुद-10, दि. 8-8-2011 सोमवार
स्वर्गवास स्थल	: आंबावाडी जैन उपाश्रय
अग्निसंस्कार	: श्रावण सुद-11, दि. 9-8-2011 मंगलवार
अग्निसंस्कार स्थल	: तपोवन अमीयापुर
उम्र	: 77 वर्ष 5 मास 5 दिन
दीक्षा पर्यास	: 59 वर्ष

www.yugpradhan.com

सत्संग और संस्करण के साथ
सम्यग्ज्ञान देनेवाली अजोड संस्था याने

शेठश्री कांतिलाल लल्लुभाई झवेरी
संस्कृति प्रचारक ट्रस्ट संचालित

पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी संस्कृत पाठशाला

-: प्रेरणामूर्ति :-

युगप्रधान आचार्यसम पू. पंन्यासश्री **चन्द्रशेखरविजयजी** म.सा.
एवं पू. साध्वीश्री महानंदाश्रीजी के
स्वर्गीय मातुश्री **सुभद्राबहन कांतिलाल प्रतापशी** ह. प्रफुल्लभाई

प्रेरणादाता:
प. पु. युगप्रधान आचार्यसम पंन्यास **श्री चन्द्रशेखरविजयजी म. सा.**
मार्गदर्शक: पु. पंन्यास **श्री जितरक्षितविजयजी म. सा.**

: संस्कृत पाठशालाकी विशेषताए :

- 3 या 5 साल का कोर्स
- रहना और खाना निःशुल्क
- प्रकरण - भाष्य - कर्मग्रंथ - संस्कृत - प्राकृत आदि अभ्यास
- अंग्रेजी - संगीत - अकाउन्ट - कंम्प्युटर - पूजन आदि कोर्स
- विविध प्रकार की स्कोलरशीप एवं भेट
- मुमुक्षु आत्माओंको संयम की विशेष तालीम
- अभ्यास पूर्ण होने के बाद अच्छी पाठशालामें योगदान का प्रयत्न

www.vpradhan.com

ता.क. : इस संस्थामें दान देने की भावनावाले पुण्यशाली
(नीचे के पते पे) संपर्क करे :

तपोवन संस्कारपीठ

मु. अमीयापुर, पो. सुघड,
गांधीनगर - 382424
फोन : 079-23276901/902
ललितभाई : 9426060093, राजुभाई : 9426505882,
अमरीषभाई.: 098 2525 4754

नोंध : पू. साधु-साध्वीजी भगवंतो को, पंडीतवर्यो को अपने परिचित विद्यार्थीओको भेजने की प्रेरणा करे ऐसी बिनती है।
तपोवन पधारे तो संस्कृत पाठशाला की मुलाकात अवश्य ले।

दोनो तपोवनकी वार्षिक धर्म-आराधना (अंदाजित)

अष्टप्रकारी पूजा -2,07,350	कम के कम नवकारशी -2,07,350	रात्रीभोजन त्याग -2,07,350
सामायिक -1,23,125	धार्मिक सूत्र की नई गाथा -1,78,750	गुरुवन्दन -2,22,050
व्याख्यान श्रवण -89,735	आयंबिल तप -5,000	पौषध -1,000	प्रतिक्रमण -2,500

पर्युषण पर्व दरमियान धर्म-आराधना

चोसठ प्रहरी पौषध -330	अलग पौषध -500
अट्ठाई और उससे ज्यादा तपश्चर्या -50	देश-विदेशमें पर्युषण करवाने जानेवाले बच्चे -110

www.yugpradhan.com

95% बच्चों को 8 दिन बियासणा या उससे ज्यादा तपश्चर्या

50 जैन संघो के समूह एसे तपोवन संघ की विशेषताए

संघ का हरएक सदस्य

1. कम से कम नवकारशी का पच्चक्खाण
2. रात्रीभोजन त्याग
3. कंदमूल त्याग
4. कोल्ड्रींक्स - बरफ आदी त्याग
5. होटल - लारी - अभक्ष्य त्याग
6. सप्ताहमें 3 दिन व्याख्यान श्रवण
7. सप्ताहमें 3 दिन गाथा कंठस्थीकरण
8. रोज गुरुवन्दन
9. रोज संध्याभक्ति एवं सामुहीक आरती
10. इतवार 2 घंटे और हररोज 40 मीनट संगीतमय अष्टप्रकारी पूजा
11. रात्रीप्रार्थना
12. सोते-उठते समय नवकार स्मरण

हिन्दी आवृति के प्रकाशन अवसर पर...

युगप्रधान आचार्यसम पूज्यपाद गुरुदेव पंन्यासप्रवर श्री चन्द्रशेखर वि.म.साहेब कहते थे की "मेरी मर्यादा है, पर पुस्तको को देश और काल की मर्यादा नही होती।

पुस्तक आज भी अमेरिका के लोग पढ़ शकते है। और मेरे मृत्यु के बाद भी पुस्तक द्वारा मेरे विचार अनेक लोग तक पहुँच शकते है।"

इस विचार को लक्ष्यमें रखकर पूज्यपाद गुरुदेवश्रीने प्रवचन, शिबिर में जो बोला और जो चिन्तन और मनन किया वो सब उन्होने लिख दीया।

पूज्यपाद गुरुदेवश्रीने अपने जीवनकालमें 300 से ज्यादा पुस्तके लिखी है।

इन पुस्तको में पूज्यपादश्रीने अपने अनुभव का सार भर दीया है। वर्तमान देश-काल के अनुसार से आगमशास्त्रो का दोहन अपनी लेखनीमें उतार दीया है।

पूज्यपाद दादा गुरुदेवश्री प्रेमसूरीश्वरजी म.साहेब खुद अपने शिष्य पूज्यपादश्रीके पुस्तके पढ़ते थे। जब पूज्यपादश्री मना करते, तब बोलते थे की "चन्द्रशेखर! तेरी लेखनी अद्भूत है। इससे मेरी भाववृद्धि होती है, इसलिए मैं पढ़ता हुँ।"

पूज्यपाद रामचन्द्रसूरिजी भी पूज्यपादश्रीके पुस्तक पढ़ते थे। पूज्यपादश्रीने कहा "आप क्यूं मेरे पुस्तक पढ़ते है ?" तब गच्छाधिपतिश्री कहते थे "चन्द्रशेखर! तेरे पुस्तक लाखो लोग पढ़ेंगे इसलिए तेरे पुस्तक की शुद्धि करता हुँ।"

पूज्यपाद भद्रंकरसूरिजी पूज्यपादश्री को कहते थे। चन्द्रशेखर! भविष्यमें तेरे पुस्तक आगम की तरह लोग पढ़ेंगे।

हिन्दुस्तान के वडाप्रधान नरेन्द्रजी मोदी भी पूज्यपादश्रीके राजकरण विषय के पुस्तक पढ़ते है और मार्गदर्शन लेते है।

www.yugpradhan.com

आजतक पूज्यपादश्रीके पुस्तको से अनेक लोगो का जीवनपरिवर्तन हुआ है । कई आत्माए पुस्तक के प्रभाव से सच्चे श्रावक बने । कई आत्माए पुस्तककी लेखनी पढ़कर संयमजीवन के स्वामी बन गए ।

घर घरके क्लेश मीटाने का अनमोल ईलाज यह पुस्तके बन गई है ।

शैतान को संत बनानेवाली पुस्तके हिन्दीभाषी लोगो को भी उपकारक बने । उनके जीवनमें उजाला प्रकट हो जाए । यह भाव से आजतक १६ पुस्तके तो हिन्दीमें छपकर प्रकट हो चुकी है । इसके अलावा १७ पुस्तके हिन्दीभाषामें रुपांतरीत होकर तैयार है ।

मेरा और पंन्यास राजरक्षित विजयजी का चातुर्मास पुने शहरमें तय हुआ ।

हिन्दी भाषीओ के प्रदेशमें जानेसें पहले हम दोनो को विचार आया की पूज्यपादश्री के जीवनपरिवर्तक विचारो को महाराष्ट्र के लोग तक पहुँचाए और अनेक आत्माओ के जीवन परिवर्तन में हम सहभागी बने ।

यह भावना की फलश्रुति के रुपमें आप सबके सामने हिन्दी भाषामें हम सात पुस्तके प्रस्तुत कर रहे है ।

हमे आशा है की यह जीवन परिवर्तक विचार घर-घरमें फैलकर अनेक आत्माओके जीवन परिवर्तनमें निमित्त बनेगा ।

पुस्तकके अंतमें यह मुद्रणमें दील लगाके कार्य करनेवाले सचीनभाई (नडीयादवाले) का हम हृदयसे आभार मानते है ।

लि. गुरुपाद-पद्मरेणु
आचार्य जिनसुन्दरसूरि.
द्वितिय अषाढ सुद-६ २०७१
(चातुर्मास प्रवेश) पुने

www.vooradhan.com

कमाई के 10% पैसे अच्छे मार्ग पर

हर मास की आवक के
10% (दस प्रतिशत) पैसे
अच्छी जगह पर दान देना चाहिए

वर्तमान देश-कालके अनुसार
यह जगह पर दान देने से
ज्यादा पुण्य मीलता है

www.yugpradhan.com

(१) जैन साधर्मिक परिवार
(२) जैन पाठशाला
(३) नयी पेढी के उत्कर्ष करनेवाली
तपोवन जैसी संस्थाएँ और शिबिरे
(४) दीन-दुःखीओ और अबोल पशुओ

हर परिवार हर मास 10% पैसे
यह चार जगह पे दान करे तो
जैन धर्म की रौनक पलट जाए

युगप्रधान आचार्य सम पूज्यपाद
पं. चन्द्रशेखर विजयजी म.

अनुमोदना... अनुमोदना... अनुमोदना...

अपूर्व श्रुतभक्ति

जिनकी किताबे पढ्कर हजारो युवाओ का
हृदय और जीवन परिवर्तन हुआ है,

ऐसे महान लेखक युगप्रधान आचार्यसम
पूज्यपाद पंन्यासप्रवर गुरुदेव

श्री चन्द्रशेखरविजयजी म.साहेब के

स्वहस्तो से भिन्न-भिन्न विषयो पे
लिखे हुए सैंकडो दुर्लभ किताबो में से
चुनकर सात किताबो का हिन्दी भाषा मे
अनुवाद किया गया है ।

www.yugpradhan.com

इस महत्वपूर्ण कार्य का
आंशिक अमूल्य लाभ लेनार

श्री. शांतीनाथ जैन श्वेतांबर मुर्तिपुजक संघ

भोर, जि. पुने महाराष्ट्र

पुज्यपाद आचार्य देव श्री जिनसुदंर सुरिश्वरजी म. सा.
सात दिन के सत्संग से भोर नगर मे सब परिवार
मे जमिनकंद का त्याग अनेक नये श्रावक श्राविका ओने
पुजा सुरु कि संध्या भक्ती सामुहिक वर्षीतप आदि अनेक
आराधना कि नयी रोशनी के स्मरण मे अपुर्व श्रुत भक्ती रुप
यह लाभ लिया है.

प.पू. युगप्रधान आचार्यसम परम शासनप्रभावक
पंन्यासप्रवर श्री चन्द्रशेखरविजयजी म.साहेब
की प्रेरणा को झीलकर अब...

देशविदेशमें पर्वाधिराज पर्युषण की आराधना करवाने के लिए युवानो एवं तपोवनी बालको

जैन संघ के अग्रणी माननीय ट्रष्टीवर्य !

आपके गाँव या नगरमें अगर पर्वाधिराज पर्युषणपर्व की आराधना करवाने पू. साधु-साध्वीजी भगवंत नहीं पधार सके तो... हमारे युवानभाईओ एवं तपोवनी बालको को हर वर्ष जरुरसे बुलाना...

www.yugpradhan.com

वह आप के जैन संघ में

(१) अष्टान्हिका तथा कल्पसूत्र की प्रत का सुन्दर वांचन करेंगे ।
(२) संध्या परमात्माभक्ति में सबको लयलीन बनायेंगे ।
(३) दोनो समय के प्रतिक्रमण विधि और सूत्र से शुद्ध करवायेंगे ।
(४) श्री संघ के उल्लास अनुसार अन्य रसप्रद प्रवृत्तियाँ करवायेंगे ।

नम्र सूचन : आराधना करवाने के लिए आनेवाले को गाडी का किराया आदी श्री संघ को बहुमानरुप देना रहेगा ।

फोर्म मंगवाने का और भरकर वापस भेजने का पता :

पर्युषणादि भाग : संचालकश्री

श्रीमान् ललितभाई धामी / राजुभाई
C/o. तपोवन संस्कारपीठ
मु. अमीयापुर, पो. सुघड,
गांधीनगर - 382424
फोन : 079-23276273
मो. 94260 60093

तपोवन

उच्च संस्कार के साथ उच्च शिक्षण के सोपान को सर करने के लक्ष को वरे हुए

तपोवन में अभ्यास करते बालकगण

- अतिथिओ को नमो नमः करते है।
- हररोज नवकारशी करते है।
- हररोज अष्टप्रकारी जिनपूजा करते है।
- हररोज रात्रिभोजन का त्याग करते है।
- हररोज गुरुवंदन करते है।
- हररोज नई-नई कहानी सुनते है।
- हररोज भगवानकी आरती उतारते है।
- हररोज नई-नई वंदना गा रहे है।
- हररोज नये स्तवन के राग शीखते है।

* कम्प्युटर
* कराटे
* स्केटींग
* योगासन
* संगीतकला
* नृत्यकला
* ललीतकला
* चित्रकला
* वक्तव्यकला
* अभिनयकला
* अंग्रेजी Speech आदी में निपुण बनते है

www.yogiradhe.com

* माता-पिता के सेवक बनते है
* प्रभु के भक्त बनते है
* गरीबो के बेली बनते है
* प्राणीमात्र के मित्र बनते है
* शक्तिमान के साथ गुणवान बनते है

रामायण

संयम के पथ पर न आ सको तो...

दशरथ जैसे पिता बनो
कौशल्या जैसी माँ बनो
श्रीराम जैसे पुत्र बनो
भरत और लक्ष्मण जैसे भाई बनो
सीता और उर्मिला जैसी पत्नी बनो
श्री हनुमान जैसे सेवक बनो

यह है रामायण का शुभ-संदेश

www.yugpradhan.com

लेखक के दो शब्द

लोकहृदय सम्राट रामायण

त्रिकालज्ञानी सर्वज्ञ परमात्मा ने वर्तमान काल को अवसर्पिणी नाम दिया है। इस काल में जीवों के आयुष्य, बल, मेधा, प्रतिभा आदि तो क्रमशः क्षीण होते जायेंगे ही, परंतु उनका अंतरसौंदर्य भी क्रमशः क्षीण होता जाएगा। तत्वज्ञान के सूक्ष्म तत्वों की पाचनशक्ति और समझशक्ति का भी धीरे-धीरे ह्रास होता जायेगा।

एक समय था, जब हजारों राजा एक साथ समग्र संसार का परित्याग करते थे और अपने जीवन की सफलता को पाते थे।

परंतु कालांतर में महाभिनिष्क्रिमण और उसकी साधना में अच्छी-खासी कमी आती चली गई।

इसीलिये संत-महात्माओं ने भी मोक्षप्रापक सर्व संगपरित्याग के मूलभूत आदर्श को ध्यान में रखवा कर अंशतः परित्याग के गृहस्थ (श्रमणोपासक) जीवन पर विशेष जोर देना शुरू किया।

परंतु काल में अभी गिरावट जारी रही... और... पुनः एक सीढ़ी नीचे उतर कर देश के शैली ने पलटा खाया।

संसार सुखमय हो, तो भी वह असार है इतना भी स्वीकार्य रखने का आग्रह रहा।

बेशक, आध्यात्मिक विकास के पथ पर खिंचे विविध मार्गदर्शक स्तंभों को पार करते जाने की साधना करने वाले किसी भी साधक के लिए सुखमय संसार की असारता के सत्य का पूर्णतः स्वीकार सबसे पहली शर्त है। उसके बगैर उस पथ पर कदम रखना चाहिए भी या नहीं ? यह एक प्रश्न है। उसके लक्ष्यविहीन निम्नस्तरीय गुण और उसकी नींव रहित उच्च स्तरीय जीवन दोनों में से एक भी मोक्षभाव प्रकट नहीं कर सकते हैं, परंतु काल तो और बदतर आ गया। भोगसुखों के प्रति तीव्र भावना मानवीय अंतर में व्यापक स्तर पर जन्म लेती गई और बढ़ती गई। इसके परिणामस्वरूप मानव सुखों के होते सुखी नहीं रहा, पुण्य के होते

www.yugpradhan.com

पुण्यवान नहीं रहा और अभाव में दुःखी और दुःखी होने लगा ।

संस्कारी कुटुम्ब के लोग भी शैतान बनने लगे । भोग की भयंकर भूख ने घर-घर में क्लेश, कलह और कंकास पैदा किए । तप, त्याग और तितिक्षा ने विदाई ले ली ।

छोटी-सी आठ वर्षीय बच्ची भी सिर पर अपनी दुनिया उठा कर घूमती है। घर के प्रत्येक सदस्य को अपने विभिन्न और बिल्कुल अनूठे टेस्ट्स हैं । पसंद-नापसंद हैं । प्रत्येक की राह अलग है । प्रत्येक की चाह भी अलग है । कुछ वर्षों पूर्व पिता-पुत्र के बीच जनरेशन गैप देखा जाता था । आज दो सगे भाइयों में दो वर्ष के अंतराल के बावजूद भी जनरेशन गैप पैदा हुआ है ।

भोग-भूख के इस भूत ने मानव जीवन के सुख और शांति को छीन लिया। मानवीय मृत्यु की समाधि को किनारे किया । परलोक में सद्गति का रिजर्वेशन असंभव बना दिया । मुक्ति का तो स्वप्न भी दुर्लभ हो गया ।

जीवन की बुनियाद ही उखड़ गई । दान, प्रेम, मैत्री, प्रमोद, करुणा त्याग, तप और तितिक्षा मानो स्मशान में जाकर सो गए । कहीं ऑक्सीजन पर जीने लगे ।

www.yogpradhan.com

लाखों मेगाटन बम के उल्कापात से भी आर्यदेश का जो खाना-खराबी नहीं हो सकती थी, वह अहित आज ही हो चुका है ।

मानव, मानव नहीं रह गया है । शैतान बनाने वाली अधःपतन की खाइयों में गोते खाते हुए फिसल रहा है । लगभग शैतान बन चुका है । आर्यप्रजा का अंतरसौंदर्य सभी भयानक स्तरों को पार कर चुका है ।

इस भयानक त्रासदी से कैसे उबरा जाए ?

अब तो आर्य अपने आर्य रूपी अस्तित्व के लिये (Struggle for existance) संघर्ष करें, यही अनिवार्य है ।

आर्यप्रजा की इस भयानक त्रासदी का दर्शन कर रहे संतों-महात्माओं को अपने देश की शैली में एक और सीढ़ी नीचे उतरने का दायित्व निभाना पड़ा है।

अब उनका संदेश है, दीन-दुःखियों की तरफ नजर करो, परमात्मा की भक्ति करो, पाप को पाप के रूप में स्वीकार करो । थोड़ी ही सही, अनीति छोड़ो तो सही ? गृहक्लेश की गांठ लगा कर त्यागो, सिनेमा तो नहीं देखें, मर्यादाओं का पालन करो, औचित्य का सेवन करो, अभद्र वस्त्र नहीं पहनो, कुछ तो सदाचारी

बनो आदि... ।

समय का तकाजा ऐसा आ गया है कि ऐसे मार्गानुसारी जीवन के उपदेश को अधिक बल देने की जरूरत पैदा हुई है ।

परंतु फिर भी क्या होगा ? उच्च स्तरीय आदर्शों को दरकिनार तो नहीं रखा जा सकता ? नहीं, आदर्श तो जीवित ही रहने चाहिए, जीवन भले अग्रिम पंक्ति का शायद नहीं जिया जाये, तो भी आदर्श तो जिंदा रहने चाहिए ही...

तो क्या है कोई ऐसा ग्रंथ ? जिसमें धर्मशास्त्र के सभी सिद्धांत दृष्टांत के रूप में पिरोये हुए हों ?

है ऐसा कोई ग्रंथ ? जिसमें उच्च-निम्न सभी पंक्तियों में आदर्श जीवंत रह जाते हों ? छोटे से छोटे गुण को भी जिसमें सुंदर ढंग से विकसित किया गया हो ?

है ऐसा कोई ग्रंथ ? जिसके पात्र सर्व आर्य को स्वीकार्य हों ? जिसका मुख्य पात्र अत्यंत आदरणीय के रूप में सर्व आर्य धर्म के अनुयायियों के लिये सम्माननीय हो ?

www.yogpradhan.com

है ऐसा कोई ग्रंथ ? जिसे बाल क्या-गोपाल क्या ? छरहरा युवा क्या-ब्रह्मचारी संत क्या ? गांव की पतिव्रता स्त्री क्या-शहरी अल्ट्रा-मॉडर्न कन्या ? अनपढ़ क्या-पढ़ा-लिखा क्या ? संत क्या-संसारी क्या ?

सभी के लिये-

एक समान रूप से दिलचस्पी पैदा करे । जिसका ललकार सुनते ही जीवन की विपरीत गतियां क्षण भर तो, डिसकन्टीन्यू हो जाएं !

हाँ... उस ग्रंथ का नाम है, रामायण । रामायण राम की कथा है । आर्य के जीवन का काव्य है । यह नागरिक शास्त्र है ! जीवन जीने की जड़ी-बूटी है । जीवन की अंधेरी कोठरियों के ताले खोलने वाली कुंजियों का जूड़ा है । यह तो मास्टर-की है, जो सभी तालों को खोल देने का अप्रतिम सामर्थ्य रखती है ।

उसके प्रत्येक श्रवण पर नया ही रस और उन्मेष प्रकटित होता है । नई ऊष्मा और नई चेतना प्रकट होती है । नया अंतरसौंदर्य प्रकट होता है । नया जीवन ही प्राप्त होता है ।

उसके श्रवण से अनेक के दिल में राम बसने लगते हैं । कम से कम श्रवण

के दौरान तो प्रत्येक आत्मा राममय बनती दिखती है ।

कुछ ग्रंथ अपर-क्लास के होते हैं, जो मेधावी वर्ग के लिये ही उपयोगी हो सकते हैं । कुछ ग्रंथ लोअर-क्लास के होते हैं, जो मात्र अबूझ के लिये ही लाभकारी होते हैं ।

कुछ धर्म ग्रंथ कुछ देश के, कुछ धर्म के भावुकजनों के दिल पर चोट करते हैं, परंतु यह तो रामायण है ! यह तो इंटरनेशनल ग्रंथ है । यह All class का ग्रंथ है । जैन-अजैन सर्व के लिये आदरणीय ग्रंथरत्न है ।

इसीलिये तो कवियों ने रामायण पर काव्य रचे, कथकों ने रामायण को ही अपनी कथा-वस्तु के रूप में पसंद किया, उपदेशकों ने रामायण पर हाथ आजमाये ।

अलग-अलग दृष्टिकोणों (Angle) से यदि विचार किया जाये, तो इस चरित्र ग्रंथ का नाम देने में बड़े तुर्रमखां भी उलझन में पड़ सकते हैं ! भ्रातृभक्त लक्ष्मण भी महान दिखते हैं ! पुत्रवात्सल्यमय दशरथ भी महान दिखते हैं । विरागी भरत महान दिखते हैं ! सीता महान दिखती हैं ! लक्ष्मण-पत्नी उर्मिला महान दिखती हैं ! किए अपराध पर आंसू बहाती कैकेयी भी उतनी ही महान दिखती हैं ! सीता का बलात्कार से पतन नहीं करने वाला रावण भी महान दिखता है!

खैर... फिर भी राम ही सबसे महान थे, क्योंकि वे पिता के हृदय में जा बसे थे । उन्होंने सौतेली मां कैकेयी का प्रेम भी जीत लिया था । अरे ! शत्रु रावण के हृदय में भी वे बसते थे ।

दया, दान, मैत्री, करुणा के पहली कक्षा के स्कूली पाठ से लेकर अल्बर्ट आइंस्टीन की प्रयोगशाला के पाठ भी रामायण में समाये हैं । व्यापक उसका क्षेत्र, अथाह उसकी गहराई है । मोक्षभाव प्राप्त करने की सर्वसंगपरित्याग की साधना की वेदी पर एक साथ चढ़ जाने वाले हजारों पुण्यात्माओं की भी उसमें सर्वोच्च स्तर की कथा है; और दीन-दुःखियों की अनुकम्पा; शत्रु के साथ भी मैत्रीभाव; परधर्म के प्रति सहिष्णु बनने के बुनियादी पाठ भी उसी में लिखे गए हैं ।

मानव जीवन की वास्तविकता की धरती को बहुत बेहतर ढंग से छूते हुए ही भगीरथ पुरुषार्थ के गगन को छूने का प्रयत्न करते उसके कथानक हैं । इसीलिये

ही मानव जाति के लिये यह कथा निरंतर अत्यंत हृदयंगम बनी हुई है ।

कुछ चातुर्मासों में हर रविवार को मैं रामायण की कथा कहता हूँ । हजारों लोगों को दौड़े आते देख मेरी आंखे कई बार हर्ष के आंसू से भर आती है । डेढ़ घण्टे की यह धर्मदेशना निःस्तब्ध शांति से (बिना माइक के) हजारों हृदय को सुनते मैंने जब देखा है, तब **प्रत्येक के मुँह पर मैंने 'राम' का ही दर्शन किया है ।**

और जब वह जनसैलाब विदा होता है; तब उनकी ही भीड़ से गुजर कर मैंने सभी के मुँह पर राम की बातें रटती सुनी हैं; अपने वर्तमान जीवन पर धिक्कार बरसाती उनकी भावनाओं का मैंने साक्षात्कार किया है । कैसा अनूठा आकर्षण है इसका ? रामायण का ?

मैंने कुछ रामायणियों को सुना है; उन्हें तो मैं इस समय नहीं ही भूल सकता; अन्यथा इस हद तक मैं कृतज्ञ बना हूं । विभिन्न लेखों के रामायण के कुछ प्रसंग तो उन्होंने ही मुझे कहे हैं ।

किसी भी तरह की अपेक्षा से रहित रामायण का साद सुनाने वाले रामायणियों पर तो इस रामायण ने कमाल ही कर दिया है । उन्होंने जब मेरे समक्ष रामायण के प्रसंगों का आंशिक वर्णन किया है, तब प्रत्येक रामायणी की आंख में अश्रुधारा का प्रवाह मैंने देखा है ।

ओह ! मानवीय अंतर को भी खोखला बना देने की प्रचंड शक्ति रखने वाले इस कलियुग के सामने सत्ययुग के उस राम ने चुनौती रख कर कैसा सफल मुकाबला किया है कि उसने कई अंतरमनों को मक्खन से भी मक्खन बना दिया है !

उसने पतितों को संत बनाया है । उसने संतों को महासंत बनाया है । उसने पारिवारिक जीवन के उच्चतम् संस्कार मां बन कर प्रेमपूर्वक सींचे हैं; और कइयों के पारिवारिक जीवन की संभावित त्रासदियों को रोक दिया है ।

पिता कैसा होना चाहिए ? यह सीखना हो, तो प्रत्येक पिता को रामायण पढ़नी पढ़ेगी ।

पुत्र कैसा होना चाहिए ? यह जानने के लिये रामायण की किताब खोलनी पड़ेगी।

सास को सास और बहू को बहू कैसा होना चाहिए ? यह समझने के लिये रामायण ही विकल्प है ।

संसार में रह कर भी योगी जैसा जीवन जीने की कला रामायण सिखाती है; शत्रु को भी मित्र बना कर उसे प्रेम करने के तरीके रामायण में लिखे हैं। ऐसा कहें तो अतिश्योक्ति नहीं होगा कि 'जीवन का आदर्श मोक्ष ही है'; यह मोक्षभाव पाने के लिये सर्वसंगपरित्याग अनिवार्य है यह पुकार तो रामायण के प्रकरण-दर-प्रकरण में आलेखित है।

अब आखिरी बातें कर लूँ। इस ग्रंथ में जो प्रसंग दिये गये हैं, वे जैन-अजैन अनेक रामायणों से लिये गये हैं। कुछ रामायणियों से सुन कर लिये गये हैं; कुछ पढ़ कर भी लिये गये हैं। 'जहाँ-जहाँ जो कुछ मोक्षभावप्रभावक शुभ तत्व पड़ा है, वह मेरा ही है... उसके प्रति मेरी अपार ममता है' इस भावना से सदैव वासित रहने का जैन शास्त्रकारों का आदेश मेरे लिये सदैव शिरोधार्य रहा है।

पाठकों को एक ममतापूर्ण सुझाव देना चाहूंगा। अनेक लेखकों के हाथ से अनेक रामायण लिखी गई हैं, इसीलिये संभव है कि एक ही व्यक्ति के चरित्रलेखन में मत-मतांतर हों। (हनुमान ने अशोकवाटिका में लाल पुष्प देखे थे या सफेद? उसमें भी विवाद होने का प्रसंग अजैन रामायण में नहीं उल्लेखित है ?) इसीलिये मेरी सभी से विशेष अनुशंसा है कि मतांतरों पर ध्यान न देते हुए उस प्रसंग में छिपे मक्खन की तरफ देखें और सारग्रही बनें। कथावस्तु मुख्य वस्तु नहीं है। यह तो होम्योपैथी टिंक्चर की वाहक शक्कर की टिकिया ही है। महत्वपूर्ण तो उसमें छिपा जीवन-परिवर्तन का बोधपाठ है, वही रोगनाशक टिंक्चर है।

जैन रामायणों में परस्त्री अपहरण आदि के भयंकर पाप करने वाले रावण को; और पुत्रमोह में अंधे बन कर रामचंद्र जैसे पुरुषोत्तम के वन में जाने का निमित्त बनने वाली कैकेयी को भी दुष्कर्म के अवरोध में फंसे होने के बावजूद पश्चाताप की पावन अग्नि में आत्मस्वर्ण को डाल कर शुद्ध करने वाले सुजन के रूप में भी स्वीकारा है। पापी भी सच्चे दिल से पश्चातापी हो, तो उसे पूरी तरह अधर्मी कह देना योग्य नहीं होगा।

आर्यदेश की प्रजा को एक चेतावनी भी देना चाहूंगा। हजारों आत्माओं के हृदय परिवर्तन और जीवन परिवर्तन कर देने वाले इस ग्रंथरत्न को हमें जीवित ही रखना चाहिए। जीव को जीवित रखें, तो अच्छी बात है; परंतु मर कर भी जीवित रखने का समय आए, तो उसका भी सामना करने की तैयारी सभी को

रखनी चाहिए । क्योंकि यह ग्रंथ हमारे संस्कारी जीवन की जीवनडोर है । पिछले कुछ समय से रामायण की कथावस्तु को काल्पनिक कह कर उसके गौरव पर चोट पहुंचाने का सुनियोजित प्रयास हमारे ही सैंकड़ों जयचंद और अमीचंद कर रहे हैं । पराकाष्ठा तो तब हुई, जब एक जगह इस ग्रंथ को सार्वजनिक रूप से लात भी मारी गई है । ऐसा ही; आर्यप्रजा के धर्मप्रधान चार पुरुषार्थ की संस्कृति के संवैधानिक पवित्र ढांचे की बुनियाद के जीवन को सुनियोजित ढंग से प्रस्तुत करने वाले 'मनुस्मृति' ग्रंथ के बारे में भी हुआ है । भारत के ही एक राज्य के कॉलेज के छात्रों ने इस ग्रंथ की श्मशान यात्रा निकाली थी । उस जुलूस में घोषणाएं की गई थीं, 'हमें अब धर्मप्रधान संस्कृति का संविधान बर्दाश्त नहीं होगा।'

पुण्यवान पाठकों ! जागते रहना... सोते पकड़े जाने का अकार्य नहीं होने देना। ऊपर के दोनों ही प्रसंग आर्यप्रजा के अमंगल का भविष्य कहती हैं । यदि चेतते नहीं रहेंगे; यदि संगठित बन कर खड़े नहीं रहेंगे; यदि मर्द बनेंगे; और पवित्र बनेंगे; यदि मोक्षमूलक स्व-शास्त्र के प्रति वफादार रहेंगे, तो हमारा बाल भी कोई बांका करने की क्षमता नहीं रखता है । अन्यथा समग्र आर्यप्रजा, संस्कृति-नाश के द्वारा सर्वनाश की भयानक खाई के कगार पर एक ही नाव में आकर खड़ी रहेगी, ऐसा स्पष्ट भावी आँख के सामने मुझे दिखता है ।

परंतु मुझे विश्वास है कि जहां तक रामायण जीवित रहेगी; तब तक लोकहृदय के लाख-लाख सिंहासनों पर रामचंद्रजी विराजमान रहेंगे ही...

और जब तक लाखों रामचंद्र दिलों की उस धरती पर विचरण कर रहे होंगे, तब तक आर्यप्रजा के भव्य भविष्य को तितर-बितर कर खत्म करने की शक्ति किसी में नहीं है । रूस-अमरीका की सल्तनत एक होकर भी वह शक्ति को प्राप्त नहीं कर सकीं ।

जय हो; सिद्ध भगवान रामचंद्रजी की !

महायोगी रामचंद्रजी की !

अनासक्त भोगी, सम्यग्दृष्टि रामचंद्रजी की !

www.yugpradeep.com

अनुक्रमणिका

पात्र

१.	रावण	१२
२.	अंजनासुंदरी	४९
३.	हनुमान	७१
४.	दशरथ	७५
५.	राम	१०२
६.	सीता	१२०
७.	भरत	१६५

www.yugpradhan.com

(१) भूमिका

कलिकालसर्वज्ञ जैनाचार्य हेमचंद्रसूरिजी ने जैन धर्म के जारी अवसर्पिणीकाल में हुए निश्चित मोक्षगामी ६३ शलाका पुरुषों के जीवनों का वर्णन करने वाला ग्रंथ रचा है । उसका नाम त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र है । (२४ तीर्थंकर + १२ चक्रवर्ती + ९ वासुदेव + ९ प्रतिवासुदेव + ९ बलदेव)

इस जैन इतिहास के महाकाव्य रूपी ग्रंथ के दस पर्व हैं । इनमें सातवें पर्व में बलदेव श्री राम, वासुदेव श्री लक्ष्मण और प्रतिवासुदेव श्री रावण के जीवन चरित्र दिए गए हैं । (इसी प्रकार इस ग्रंथ के आठवें पर्व में जैन दृष्टि का महाभारत काव्य रूप में आलेखित है)

कलिकालसर्वज्ञ आज से ९०० वर्ष पूर्व हुए ।

'मिथ रहित मानव जड़ से उखड़े वृक्ष जैसा होता है ।' यह जर्मन बुद्धिजीवी नित्से का कथन है । जिस देश की प्रजा के पास अपना विशिष्ट इतिहास नहीं है, उस प्रजा की संस्कृति; उस प्रजा का धर्म, स्वाभिमान ज्यादा देर तक टिक नहीं सकता है । ऐसी प्रजा की संस्कृति आदि जड़ से उखड़े वृक्ष के जैसी कहलाती है, जिसका जीवन अधिक लम्बा नहीं होता ।

www.yugpradhan.com

एक अंग्रेज ने कहा है, "यदि आप किसी देश का कब्जा लेना चाहते हैं, तो आपको उसकी प्रजा को खत्म करना होगा । प्रजा को खत्म करने के लिये आप उस प्रजा की संस्कृति को खत्म कर दीजिए ।" Kill Sanskriti to kill people. (जलरहित तालाब में मछलियाँ कैसे जिंदा रह सकती हैं ? छोटी-बड़ी सभी मछलियाँ साफ हो जाएँगी)

"इतना ही नहीं, यदि आप संस्कृति को नष्ट करना चाहते हैं, तो उस देश की प्रजा के आराध्य मंदिरों को खत्म कर दीजिए, क्योंकि संस्कृति का प्राणबिंदु मंदिरों की उपासनाएँ हैं । Kill temples to kill sanskriti."

मंदिर (मंदिरों के प्रति पूजनीय भाव) यदि खत्म हो गए, तो समझो संस्कृति समाप्त; यदि संस्कृति समाप्त, तो प्रजा खत्म... फिर बिना बम के पूरा का पूरा देश

अपने कब्जे में ।

राम और कृष्ण हिन्दू प्रजा के वैदिक धर्मों के आराध्य महामानव हैं : परमात्मा हैं । हिन्दू प्रजा के जैन धर्म के अनुयायियों के लिए भी राम और कृष्ण कम आदरणीय नहीं हैं ।

नहीं । राम को जन्म से ही वे परमात्मा नहीं कहते हैं, परंतु मृत्युपर्यंत तो उन्हें परमात्मा (सिद्ध परमात्मा) माना ही गया है । श्री कृष्ण को भी उसी जन्म में भगवान नहीं माने जाने के बावजूद आगामी चौबीस तीर्थंकरों में उनकी आत्मा को बारहवें अमम नामक तीर्थंकर के रूप में स्वीकार किया ही गया है ।

इतना ही नहीं ये दोनों आत्माएँ राम और कृष्ण के रूप में जीवनकाल में भी सम्यग्दृष्टि के रूप में तीसरे नंबर की 'योगी' थीं, यह भी स्वीकार किया गया है।

सम्पूर्ण बनता दिनचक्र

रामायण और महाभारत विश्व के मूर्धन्य स्तर के महाकाव्य हैं । यह केवल राम-कृष्ण आदि की कथा मात्र नहीं हैं, परंतु तत्व से भरे दो भंडार हैं ।

www.yugpradhan.com

रामायण का आरंभ राम के वनवासादि प्रसंगों से काफी तनावपूर्ण, व्यथापूर्ण व संक्लेशपूर्ण है, परंतु उसका अंत सुमधुर है, सुखद है, क्योंकि अंत में रामराज्य की स्थापना होती है । मानो अमावस्या की रात के बारह बजे से घने अंधकार के रूप में शुरूआत हुई और दिन के बारह बजे भरपूर प्रकाश फैल कर अंत हुआ ।

महाभारत में इसके विपरीत होता है । हँसी-खुशी से भरी अटखेलियाँ करते भीम-दुर्योधन से इस महाकाव्य का आरंभ होता है । मानो दिन के दोपहर बारह बजे का भरपूर प्रकाश हो, परंतु उसका अंत अति करुण होता है । अपने पुत्रों के शवों पर विलाप करती माता गांधारी का करुण चीत्कार ! जंघा टूट जाने के कारण चीत्कार करते-करते ही मर जाने वाले दुर्योधन की असह्य वेदनाएँ ! हजारों गिद्धों व शियारों के जरिए नोंचे जा रही जीवित-मृत देहें ! खून की बहती नदियाँ आदि !

अरे ! मानो अंधियारी अमावस्या की मातमी रात !

'कुटुम्ब' का निर्माण

मावन जीवन में यदि चार वस्तुएँ नहीं मिली हों-चार में से एकाध भी वस्तु नहीं मिले, तो मानव का जीवन जहर समान बन जाता है । उसका जीवन अंधकारमय

बन जाता है । करोड़ों रुपए की सम्पित्त होने के बावजूद, अथाह भोग-विलास प्राप्त होने के बावजूद उस वस्तु की कमी सब कुछ 'फेल' कर देती है । ऐसे वैभवी इंसान को भी आत्महत्या करने के विचार आते हैं ।

उसका जीवन अर्थात् -

खीर के प्याले में जहर की बूंद ।
बेढमी के प्याले में कंकड़ की कणी ।
अलमस्त देह में कांटे की चुभन ।

उन चार वस्तुओं के नाम हैं : (१) जीवन में शांति (२) चित्त में प्रसन्नता (३) शरीर में स्वस्थता (४) कुटुम्ब में सम्प ।

इनमें से एक का भी अभाव समग्र जीवन को पीड़ादायी बना देता है ।

रामायण और महाभारत ये दोनों महाकाव्य उपरोक्त चार में से एक कुटुम्ब के सम्प को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं ।

सापेक्ष रूप से विचारें, तो यह बात समझ में आएगी कि संसारी लोगों का कौटुम्बिक जीवन जीव को मोक्ष दिलाने में सहायक सिद्ध हो सकता है ।

www.yugpradhan.com

संयुक्त कुटुम्ब में संघर्ष, संक्लेश, आर्थिक संकट और संकुचितता, बीमारी, घिसाई जैसे प्रतिकूल तत्वों का अस्तित्व कम-ज्यादा सदैव रहेगा । इन सभी परिस्थितियों का बेहतर ढंग से मुकाबला करना ही होगा ।

संघर्ष और संक्लेशों का सहनशीलता से निवारण करना होगा ।

आर्थिक संकट में और संकीर्णता में प्राप्त स्थिति में जो मिले, उससे चलाना होगा । बीमारी में एक-दूसरे के मददगार बनना होगा ।

घिसाई की स्थिति में हिम्मत रख कर आगे बढ़ने का पुरुषार्थ करना होगा । इसके अलावा अतिथि-सत्कार, गुरुजन सेवा, परस्पर प्रेम, मौन, समता आदि गुण जीवन को फूलों की तरह खिलाते हैं ।

इसीलिये कहा जा सकता है कि मुनि-जीवन प्राप्त कर जो कर्मसंग्राम करना है, जो प्रतिकूलताएँ झेलनी हैं, जो समतामय जीवन जीना है, उसके बारे में जो जरूरी गुण हैं और जरूरी प्रशिक्षण है, वह संयुक्त कुटुम्ब की जीवन-शैली को प्राप्त करने से ही प्राप्त हो जाता है ।

इसीलिये कुटुम्ब को विभक्त नहीं होने देना चाहिए । उसकी स्वच्छंदता, आलस्य, उच्छृंखलता जैस जो लाभ हैं, वे तुच्छ स्तर के हैं और उसके शीलभंग, गुणहानि, दोषप्राप्त आदि जो नुकसान हैं, वह अधिक हैं ।

कुटुम्ब में सर्वत्र भारी से भारी सम्प होना बहुत आवश्यक है । रामायण सकारात्मक ढंग से (पॉजिटिवली) हमें समझाती है, "आप अपने परिवार में पिता के स्थान पर हैं, तो दशरथ बनना, भाई के स्थान पर हैं, तो राम-लक्ष्मण बनना। सास के स्थान पर हैं, तो कौशल्या बनना, बहू के स्थान पर हैं, तो सीता से जरा भी कम न बनना । अरे ! भूल कर बैठें, तो कैकेयी या रावण जैसा घोर पश्चाताप जरूर करना ।"

महाभारत नकारात्मक रूप से (निगेटिवली) हमें समझाती है, "आप पिता हैं, तो कभी धृतराष्ट्र नहीं बनना, पुत्र हैं, तो दुर्योधन नहीं बनना; भाई हैं, तो दुःशासन नहीं बनना । मामा हैं, तो शकुनि नहीं बनना । माँ हैं, तो वात्सल्यहीन गांधारी नहीं बनना । परित्यक्त हैं, तो कर्ण नहीं बनना । द्रौण-द्रुपद की तरह बैर की गाँठ नहीं बांधना ।"

www.yugpradhan.com

एक में दर्प दूसरे में कन्दर्प

व्यवहार-दृष्टि से दोषों में भयंकर कोई दोष है, तो वह काम यानी कन्दर्प माना जाता है, परंतु उससे भी महाभयानक एक दोष है; उसका नाम है अहंकार अर्थात् दर्प। संक्षेप में कन्दर्प और दर्प द्वारा तमाम संस्कारी जीवों को चंगुल में लिया जाता है ।

रामायण में 'रावण' के पात्र द्वारा कन्दर्प की भयानकता को जीवंत किया गया है। महाभारत में दुर्योधन के पात्र द्वारा दर्प की भयानकता को उजागर किया गया है ।

रावण परस्त्री (सीता) के प्रेम में पड़ कर कन्दर्प में लिप्त हुआ; तो दुर्योधन स्वप्रेम में पड़ कर दर्प के चंगुल में फँसा ।

अंततः ये दोनों 'आसक्ति' के नाम हैं । परासक्ति कन्दर्प बनती है, स्वासक्ति दर्प बनती है ।

कन्दर्प से मुक्त होना आसान है । दर्प के चंगुल से मुक्त होना बहुत मुश्किल है। जीवन से दर्प गया, तो सभी दोष चले जाएंगे । वही अभिमन्यु का सातवाँ चक्रव्यूह है । उसकी भयानकता को समझ चुके एक अर्वाचीन कवि ने कहा है:

अहं रे अहं, तू जा मरी !
पछी मारामां शेष रहेशे हरि ।

उभयत्र पुत्रमोह

रामायण में कैकेयी का घातक मोह पुत्र भरत पर छा गया । उसमें से रामायण का संहारक सृजन हुआ ।

महाभारत में पिता धृतराष्ट्र का घातक मोह पुत्र दुर्योधन पर छाने से महाभारत का विध्वंसक सृजन हुआ ।

दोनों युद्धों में लाखों की संख्या में लाशें गिरीं । लाखों नवोढाएँ विधवा हुईं। लाखों माताओं की गोद सूनी हो गई ।

कोई नहीं करना; आसक्ति : पर की या स्वयं की ।

एक में नियति : दूसरे में पुरुषार्थ

रामायण के पात्र कहते हैं: बस पुरुषार्थ ही करें, जरूर सफलता मिलेगी ।

राम को सीता मिली । राम को अयोध्या वापस मिली । भरत को मनपसंद संन्यास मिला । लक्ष्मण को वनवास में भाई का साथ मिला । सीता ने कुछ हठ की, तो पति की छाया बनने में तत्काल सफलता मिली ।

कैकेयी को घोर पश्चाताप के बाद क्षमा मिली ।

महाभारत कहती है, "प्रारब्ध (नियति) बलवान है । पुरुषार्थ करना बेकार है । कितना ही करो, वह विफल जाता है ।"

भीष्म कौरव-पांडवों को सदैव मित्र बनाने में विफल रहे ।

विष्टिकार के रूप में कृष्ण 'फेल' रहे । धर्मराज 'जुआ' में धकिया गए । कर्ण की तो जन्म से ही दुर्दशा हुई । धृष्टद्युम्न की द्रोणवध की नियति का द्रोण ने ही स्वागत किया । अपने हत्यारे को स्वयं ही शस्त्रविद्या सिखा कर 'नियति' का ज्ञान सार्थक किया ।

महापराक्रमी भीष्म की मृत्यु नपुंसक के हाथों हुई ।

घर के कलह को कृष्ण मिटा नहीं सके, बेमौत मारे गए । द्वारिका जैसी महानगरी उसके सृजक कृष्ण की आँखों के सामने ही साफ हो गई ।

महाभारत कहती है; "सब नियति-बद्ध है । क्रमबद्ध ढंग से सब हुआ करता है।

किसी बात को लेकर कभी भी अफसोस नहीं करें, आघातित नहीं हों । विलाप नहीं करें ।"

Everything is in order. 'कम्प्यूटर' का गणित गलत हो सकता है, नियति का कभी नहीं ।

रामायण कहती है, "नियति कौन जानता है ? इसीलिए केवल पुरुषार्थ ही करते रहो ।" महाभारत कहती है, "भले, परंतु पुरुषार्थ करने के बावजूद विफलता मिले, तो जरूर नियति को ध्यान में लाइए । कृपाल पर दो उंगली रख कर मन ही मन समाधान करना कि नियति ऐसी ही थी, इसीलिये विफल रहा। कोई बात नहीं । ओ नियति, तुझे सौ-सौ सलाम ।"

"ऐसा मन ही मन बोल लेना । नहीं तो विफलता मिलने पर मानसिक रूप से टूट जाएँगे ।"

मतांतरों से भड़कें नहीं

जो रामचरित्र अजैन लेखकों ने लिखी हो, वह अजैन रामायण कहलाती है; जिसे जैन लेखकों ने लिखा हो, वह जैन रामायण कहलाती है । शेष राम आदि तमाम पात्र बहुधा वही के वही हैं ।

www.yugpradhan.com

हाँ, जैन लेखक राम, सीता और रावण आदि को जैन धर्म के कट्टर अनुयायी मानते हैं, जबकि अजैनों की मान्यता ऐसी नहीं है ।

परंतु इससे अजैनों को अकुलाने की जरूरत नहीं है । उन्होंने जिन्हें भगवान है माना, उन्हें जैन भी महान मानें, तो यह आनंद की ही बात है । इसमें यह तो नहीं ही कहा जा सकता है, हमारे राम को आप कैसे अपना मानते हैं ? अरे ! मैं तो इससे विपरीत बात करता हूँ कि अजैन भाइयों ! राम सभी को कैसे प्यारे या अजैन उन्हें अपना मानें; जैन भी अपना मानें । यह तो रामभक्तों के लिये कैसे आनंद की बात है ?

रामायण की कथा जिन्होंने आलेखित की, उन्हें जो परम्परागत-कथा मिली, वह उन्होंने लिखी । इसमें मत-मतांतर रहेगा ही । जैन और अजैन परम्परा कुछ बातों (ईश्वरकर्तृत्व आदि) में बिल्कुल अलग हैं अर्थात मतांतर कभी बड़े भी देखने को मिले । ऐसे समय में हमें विचार-सहिष्णु और मत-सहिष्णु बनना चाहिए । विवाद

नहीं करना चाहिए ।

अरे ! जो अजैन-रामायण हैं, उनमें भी परस्पर मतांतर देखने को मिलते हैं। इससे भी बडे आश्चर्य की बात कहता हूँ । संत रामदास्वामी रामकथा कह रहे थे ।

ऐसी मान्यता है कि जब रामकथा चलती हो, तब हनुमान वहाँ निश्चित ही उपस्थित रहते हैं । इस प्रकार हनुमान वहाँ उपस्थित थे ।

संत ने कथा सुनाते-सुनाते कहा, "हनुमान जिस अशोकवाटिका में पहुँचे, वहाँ जो पुष्प थे, वह सफेद थे ।" यह वाक्य सुनते ही हनुमान चौंक उठे । उन्होंने तत्काल प्रकट होकर रामदास स्वामी से कहा, "अपनी भूल सुधारें । वे पुष्प लाल थे । मैंने खुद देखे हैं ।"

संत अपनी बात पर अड़े रहे, तो उत्तेजित होकर हनुमान ने कहा, "जिस हनुमान के पुष्प देखने की बात आप कर रहे हैं, वह हनुमान तो मैं खुद हूँ । मैं ही जब आपसे कह रहा हूँ कि मैंने वे पुष्प लाल देखे हैं, तो आप किस तरह सफेद पुष्प की बात पर अड़े रह सकते हैं ?" कमाल ! कथाकार ने तो फिर भी अपनी हठ नहीं छोड़ी ।

www.yugpradhan.com

सौभाग्य से उस समय वहाँ नारदजी आ पहुँचे । उन्होंने सभी बातें सुनीं और बहुत हँसे ।

उन्होंने खुलासा किया कि दोनों सही हैं, क्योंकि जो पुष्प थे, वे वास्तव में सफेद ही थे, परंतु रावण के परस्त्री के अपहरण की घटना से क्रोधित हनुमान की आँखें लाल हो गई थीं । इसीलिए लाल आँख से सफेद पुष्प उन्हें लाल रंग के दिखे थे! इस तरह दोनों अपनी-अपनी जगह सही हैं ।

इस प्रसंग से मैं एक बात कहना चाहता हूँ कि यदि हनुमानजी के जीवन में घटित घटना में हनुमानजी के मन में ही मतभेद हों, तो विभिन्न लेखों के रामायण ग्रंथों में ऐसी संभावना तो रहेगी ही । ऐसे समय में जरा भी व्याकुल हुए बगैर मतांतर को जानने की कोशिश करनी चाहिए । मतभेद को निपटाने के लिये कोई दृष्टिकोण नारदजी की तरह पकड़ना चाहिए । इस मतांतर से भी जो जानने जैसी बातें मिलीं, उन्हें ग्रहण कर शेष बातों की उपेक्षा करनी चाहिए ।

सभी लिखते हैं कि रावण के लिए सीता परस्त्री थी, परंतु ओटान (तिब्बत के पास स्थित प्रदेश) की रामायण में सीता को रावण की पुत्री बताया गया है। लाओस

की रामकथा में राम की दो बहनें और रावण की पत्नी सीता दर्शाई गई है । आनंद रामायण में सीता को राम की पुत्र कहा गया है । अन्यत्र हनुमान को राम-सीता का पुत्र कहा गया है । वाल्मीकि रामायण (अयोध्या कांड ८-१४, सुंदरकांड २८-१४) में राम की अनेक पत्नियाँ कही गई हैं । अजैन रामायण में राम की एक ही पत्नी-सीता कही गई है । इसीलिये ऐसी उत्कृष्ट मर्यादा के पालक राम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा गया है, परंतु सभी जैन रामायणकारों ने राम की चार पत्नियाँ दर्शाई हैं ।

नहीं... ऐसा कहने से राम के मर्यादा पुरुषोत्तमत्व को ठेस नहीं पहुँचेगी । दूसरे अनेक दृष्टिकोणों से राम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा जा सकता है ।

एक से अधिक पत्नी होने मात्र से पुरुषोत्तमत्व नष्ट नहीं हो जाता है ।

पिता दशरथ की चार पत्नियाँ थीं, यह सर्वमान्य पहलू है ।

श्री कृष्ण की सोलह हजार रानियाँ स्वीकार कर भी उन्हें पुरुषोत्तम, योगेश्वर आदि कहा गया है ।

अब रही समन्वय की बात ।

www.yugpradhan.com

इस तरह समन्वय हो सकता है कि राम की चार पत्नियाँ होने के बावजूद वास्तविक पत्नी तो एक ही सीता थीं । शेष तीन पत्नियाँ स्वभाव से ख़राब थीं। सीता की ये सौतें सीता के प्रति ईर्ष्या भाव रखती थीं ।

उन्होंने ही जाहिर किया था कि (धोबी की बजाए) सीता को रावण के यहाँ कलंकित हुई । ऐसी कंकासी तीन पत्नियाँ कहीं राम की पत्नियाँ कही जा सकती हैं?

पिता के विरुद्ध संघर्ष को उतारू पुत्र को पुत्र कहा ही नहीं जा सकता ।

पानी को शीतल नहीं कर पाने वाले घड़े को घड़ा कैसे कहा जा सकता है ?

अन्य भी कई मतांतर विभिन्न रामायणों में देखने को मिलते हैं । जैसे कि:

(१) रावण को राम ने नहीं, परंतु लक्ष्मण ने मारा था ।

(२) सीता धरती में नहीं समाई थीं, बल्कि संन्यास की राह चली थीं ।

(३) हनुमानजी आजीवन ब्रह्मचारी नहीं थे, परंतु अनेक रानियों के साथ विवाहित थे ।

(४) कैकेयी को दो वरदान नहीं थे । एक ही था । राम का वनवास स्वयंस्वीकृत था।

(५) राम वन में गए, तब दशरथ की आघात से मृत्यु नहीं हुई थी, परंतु भरत अयोध्यापति बने थे, जिसके बाद दशरथ ने दीक्षा ले ली थी ।

(६) स्वर्णमृग के पीछे राम नहीं गए थे, बल्कि राजा खर के साथ युद्ध के लिये लक्ष्मण गए थे । उस समय लक्ष्मण को आपत्ति में घिरा समझ कर सीता ने राम को सहायता के लिए भेजा था । इस तरफ रावण ने सीता का अपहरण किया था। (रावण संन्यासी वेश में नहीं आया था और न ही लक्ष्मण ने कोई रेखा खींची थी या सीता ने उसका उल्लंघन किया था)

(७) सीता ने लव-कुश के राम के साथ युद्ध के बाद दूसरी बार अग्निपरीक्षा नहीं दी थी, बल्कि उस समय एक ही अग्निपरीक्षा थी ।

वास्तविकता को छूते जैन लेखक

ऐसे मतांतरों को कथा के वाचकों को सहिष्णु बन कर हजम कर लेना चाहिए। अन्यथा अकारण मनःक्लेश उत्पन्न होगा, जो लाभदायी नहीं होगा ।

अजैन रामायण के लेखकों ने ईश्वरकर्तृत्ववादी होने से राम को अवताररूप माना है । यह बात जैन रामायण में स्वीकार नहीं की गई है । जैन धर्म उस तरह का, वैसा ईश्वरकर्तृत्व स्वीकार नहीं करता है ।

www.vuuprachar.com

भगवान महावीरदेव भी जन्म से भगवान नहीं थे । साढ़े बारह वर्ष की घोर साधना के बाद वे ४२ वर्ष की आयु में अरिहंत भगवान हुए हैं ।

रामचंद्र भी उस तरह साधना करने के बाद योगी के रूप में मृत्यु को प्राप्त होकर सिद्ध भगवान हुए हैं ।

जैन मतानुसार कोई भी आत्मा मलिन स्वरूप में जन्म लेती है । यदि वह उत्कृष्ट साधना करे, तो अरिहंत भगवान होती है या सिद्ध भगवान ।

इस अवसर्पिणीकाल के बीसवें अरिहंत भगवान मुनि सुव्रत स्वामी के शासनकाल में राम और रावण हुए हैं । उनका जीवनकाल लाखों वर्ष पूर्व का माना जा सकता है ।

जैन धर्म में ईश्वर - कर्तृत्व की बजाए प्रचंड पुरुषार्थ को प्रमुखता दी गई है। उसके मतानुसार ईश्वर जगत बनाते (सृजन) नहीं हैं, परंतु बताते हैं । जगत का अनादि, अनित्य, अशरण आदि स्वरूप दिखा कर जीवों को ऐसे जगत से विरक्त बनाते हैं । मोक्षमार्ग के साधक बना कर सिद्ध परमात्मा बनाते हैं ।

ईश्वरकर्तृत्व का प्रतिपादन कई बार 'भगवान ने मुर्दे को जिंदा कर दिया' जैसी

अवास्तविक बातें प्रस्तुत करता है । उदाहरण के लिये...

रावण को राक्षस माना गया था । उसका संहार करना जरूरी था । इसीलिये शिवजी ने राम के रूप में अवतार लिया । राम यदि अयोध्या के राजा हुए, तो वन में जाकर रावण का वध नहीं कर सकते । इस चिंता से ग्रस्त होकर देव-देवताओं ने विघ्नेश्वरी देवी को मंथरा के शरीर में प्रवेश कराया । मंथरा ने कैकेयी के कान भरे । कैकेयी ने राम का वनगमन कराया । राम वन में गये और उनके हाथों रावण का वध हो सका । इसीलिये ईश्वरकर्तृत्व को अस्वीकार करने वाली ऐसी कोई कल्पना जैन धर्म में नहीं है ।

बहुत ही सहज ढंग से सभी घटनाएँ घटी हैं । विघ्नेश्वरी का मंथरा की देह में प्रवेश आदि बातें बहुत ही अवास्तविक लगती हैं ।

जैन रामायण की घटनाएँ काफी वास्तविक लगती हैं । अवास्तविकता के गगन में व्यर्थ ऊँची उड़ानें भरने की बजाए वास्तविकता की धरती को पकड़ कर रखना चाहिए ।

जब कैकेयी राम को बहुत चाहती हो, तो वह स्व-पुत्र भरत के लिये राज माँगे, न कि राम को वन में भेजने की बात करे ।

www.yugpradhan.com

इसीलिये जैन रामायण की एक कैकेयी को एक वरदान की बात तथ्यपूर्ण लगती है । इतना ही नहीं बड़े भाई की उपस्थिति में छोटा विवेकी भाई गद्दी पर नहीं बैठे, ऐसी आर्य मर्यादा को ध्यान में रख कर बड़ा भाई स्वयं हट जाए, वन में चला जाए- यह घटना बहुत सहज व वास्तविक भी लगती है ।

अस्तु । हम इस विषय का समापन करते हुए इतना ही तय करते हैं कि परविचारों (मतांतरों) की तरफ हमें बहुत सहिष्णु बनना चाहिए । परविचारों को सहन करना चाहिए । यानी उनकी तरफ तिरस्कार नहीं करना चाहिए ।

दु:ख सहन करना (अडिग रहना) सरल है; परंतु सुख सहन करना (थकना नहीं) बहुत मुश्किल है ।

उससे भी मुश्किल वरिष्ठों के कठोर शब्दों (आक्रोश) को बर्दाश्त कर लेना है। इससे भी मुश्किल दूसरों के अभिप्रायों को बर्दाश्त करना, उन्हें तिरस्कृत नहीं करना है ।

देवाधिदेव परमात्मा महावीर ने ब्राह्मणों के साथ वार्तालाप में विरोधाभासी वेदपंक्तियों का उपहास नहीं किया था; बल्कि उन्हें सही ठहरा कर पारस्परिक विरोधाभास टाल कर उनका समन्वय कर दिया था ।

भोग जगत का सर्वोत्कृष्ट वाक्य माना जाता है - मैं तुझे चाहता हूँ । I love you. आध्यात्मिक जगत का उत्कृष्ट वाक्य है - शायद आप भी सही हों । I believe you.

दूसरों के विचारों के प्रति अपार सहिष्णुता के कारण ही हजारों वर्षों के घातक आक्रमणों के विरुद्ध हिन्दू प्रजा संगठित बन कर रह सकी है । विचारों में असहिष्णु गोरों ने गेलीलियो को जेल में भेजा है, कोपरनिक्स को जला दिया है, जबकि भारत ने नास्तिक कणाद (परमाणुवादी चिंतक) को महर्षि कहा है । चार्वाक धर्म को परमात्मा के पेट के स्थान पर रख कर उसका सापेक्ष गौरव किया है ।

अजैनों में राम-चरित्र रूप में जो दो महाकाव्य हैं, उनमें से एक वाल्मीकिकृत है और दूसरा रामचरित मानस संत तुलसीदास का है । दोनों लेखक कहाँ थे और राम का नाम जप कर कहाँ पहुँच गए ?

जंगली वालिया मरा... मरा... मरा..., राम... राम... जपते हुए संत वाल्मीकि बन गया।

पत्नी रत्नावली में चौबीस घण्टे कामुक तुलसी संत तुलसीदास बन गया । रत्नावली ने कहा, "ऐसी प्रीत रघुनाथ की, तो न होत भवभीत..." तुलसी ने रघुनाथ की शरण ली ।

www.yugpradhan.com

गर्भ में रहे जीव को वीर-शिवाजी बनाने वाला तो रामायण के अरण्यकांड का गर्भवती जीजाबाई का सतत पाठ ही था न ?

* * *

(२) रावण

कर्मों के घातक आक्रमण

रामायण के पात्र रावण, हनुमान, राम आदि में सर्वप्रथम जन्म रावण का होने से पात्रालेखन में पहले रावण का पात्रालेखन करें ।

रावण वास्तव में दुराचारी नहीं था; वह महात्मा था । उसमें ऐसे कुछ नेत्रदीपक गुण विकसित हुए थे, जिन्हें जानने के बाद रावण को अधर्मी कहने की भूल कोई नहीं करेगा । अजैन रामायणकारों ने उसे दुराचारी कहने की बड़ी भूल की है ।

इस बात को समझने के लिए हमें जैन धर्म का कर्म का तत्वज्ञान जानना पड़ेगा। अशुभ कर्म दो प्रकार के हैं । एक ऐसा कर्म है, जो भौतिक रूप से सुखी जीव पर आक्रमण कर उसे सुखभ्रष्ट करता है, उसे दुःखी करता है ।

दूसरा अशुभ कर्म है, जो आक्रमण कर किसी को सुखी या दुःखी नहीं बनाता है, बल्कि उस सुखी या दुःखी जीव की बुद्धि भ्रष्ट कर पापी बना देता है ।

www.yugpradhan.com

इन अशुभ कर्मों में जो अनिकाचित कर्म होते हैं, उसे तो सत्य पुरुषार्थ कर पीछे हटाया जा सकता है, लेकिन निकाचित (प्रारब्ध) कर्म तो आक्रमण करे बिना नहीं रहते हैं और जीव को परेशान किये बगैर नहीं रहते हैं ।

सीता, अंजना आदि पर दुःख देने वाले अशुभ कर्मों का आक्रमण हुआ । वे सुखी से दुःखी हो गए ।

रावण, नंदिषेण, अषाढाभूति आदि पर पाप कराने वाले अशुभ कर्म का आक्रमण हुआ, जिससे वे बुद्धिभ्रष्ट हुए और अंत में पापी हुए ।

इन आत्माओं का अशुभ कर्म 'निकाचित' था । ऐसा इसलिये कहा जा सकता है, क्योंकि ये आत्माएँ उस कर्म के उदय की पापी अवस्था से सुखी नहीं थीं; उन्हें पाप करने का अति भारी पश्चाताप था । पाप करने की उनकी लेशमात्र भी भावना नहीं थी ।

निकाचित कर्म किसी को छोड़ता नहीं है । उसे भोगे बगैर छुटकारा नहीं है। निकाचित यदि भोगावली कर्म हो, तो उस जीव को भोग भोगने ही पड़ते हैं । यदि

निकाचित कर्म अशुभ हों, तो उस जीव को उसके उदय में दुःखी या पापी होना ही पड़ता है ।

हाँ... इतना जरूर है कि पापी बने जीव के अंतर में वह पाप धिक्कार होता हो, उसका तीव्रतम् पश्चाताप हो, तो उस जीव को पाप करने के बावजूद पापी या दुष्ट नहीं कहा जा सकता है । अरे ! उसे 'महात्मा' ही कहना पड़ेगा ।

रावण पाप से कम्पायमान था । परस्त्रीगमन-बलात्कार का पाप वह नहीं कर बैठे, इसके लिये उसने पानी से पहले दीवार बनाने के रूप में प्रतिज्ञा ले ली थी। यह सब रावण के महात्मात्व को सिद्ध करता है । सीता के लंका में रहने के दौरान सीता के चरण पर शीष रख कर रिझाता रावण रोज रात को गृह मंदिर में परमात्मा मुनि सुव्रत स्वामीजी के चरण में शीष झुका कर कहता, "हे प्रभु ! मुझे बचाओ; इस पाप से संभवतः मैं कल ही बलात्कार कर बैठूँ-मेरी प्रतिज्ञा टूट जाए, तो आश्चर्य नहीं ।"

रावण को दुष्ट कैसे कहा जा सकता है ?

www.yugpradhan.com

ऐसे रावण को 'दुष्ट' कैसे कहा जा सकता है ? सभी जैन-अजैन रामायणकार जब एकमत से कहते हों कि रावण सीता को उठा लाया, परन्तु अशोकवाटिका (देवरमण उद्यान) में उसे लाकर उस पर उसने कभी बलात्कार नहीं किया । अरे! सीता की देह को उंगली भी नहीं लगाई ।

ओह ! तो फिर अजैन रामायणकारों ने रावण को दुष्ट कैसे वर्णित कर दिया? परस्त्री का अपहरण करने मात्र से रावण को दुष्ट नहीं कहा जा सकता है । इतना ही नहीं ऐसा करके भी वह अत्यन्त दुःखी था; स्वयं को धिक्कारता था ।

जैसे धर्म (धर्मक्रिया) करने वाले सभी जीवों को धर्मी नहीं कहा जा सकता (उनके अहंकारादि दोषों के अधिक जोर के कारण) वैसे पाप (पापक्रिया) करने वाले सभी जीवों को पापी नहीं कहा जा सकता है । (उनके तीव्र पश्चातापादि के कारण)

धर्म करने वाला यदि अहंकारी हो, तो वह धर्मी नहीं है । पाप करने वाला यदि पश्चातापी हो, तो वह पापी नहीं होता है ।

अजैन लेखकों ने रावण को 'राक्षस' कहा है । उस हनुमान को देह से वास्तव

में बंदर कहा गया है ।

जैन लेखकों ने इस बात को एकमत से नकारा है । रावण राक्षस नामक वंश में और हनुमान वानर नामक द्वीप में जन्मे थे । इसीलिये वे राक्षस और वानर कहे गए । वे न राक्षस थे, न वानर । दोनों हमारी जैसी देह के मालिक इंसान थे । रावण के दस सिर थे, न हनुमान को पूछ आदि ।

रावण का दशानन (दसमुख) नाम उसके बचपन के एक प्रसंग के कारण पड़ा था । उसने अति अल्पायु में बहुत वजनदार नौसेर का हार पेटी से निकाल कर गले में डाल दिया था । हार की प्रत्येक सेर के मुख्य रत्न में बाल रावण का मुँह दिखता था । ऐसे नौ मुख और रावण का प्राकृतिक एक मुख, इस तरह दस मुख देख कर उसकी माँ कैकसी और पिता रत्नश्रवा ने उसका नाम दशानन रखा था । हाँ... रावण बहुत बलवान था । इसलिये कह भी कहा जा सकता है कि रावण के पास दस मस्तक का बल था ।

अजैन लेखकों ने राम को भगवान बनाया । भले बनाया, परन्तु रावण को शैतान चित्रित कर वे चूक कर गए हैं । राम नायक भले रहें; परंतु रावण को महाभारत के दुर्योधन जैसा खलनायक तो नहीं ही बनाया जा सकता है ।

रावण अति शूरवीर था । प्रभु का परम भक्त था और शील का अत्यन्त प्रेमी था । ये बातें विस्तार से देखें ।

शूरवीर रावण

रावण के परदादा लंकापति थे । परन्तु रावण के दादा सुमाली और उसके दो भाई माली व माल्यवान् तीनों कमजोर निकले । वैताढ्य के विद्याधर राजा इन्द्र ने युद्ध किया । माली को मार दिया । शेष को लंका से भागना पड़ा । सुमाली और माल्यवान् पाताल लंका में छिप गए ।

सुमाली को रत्नश्रवा नामक पुत्र हुआ । वह भी कमजोर निकला । रत्नश्रवा की पत्नी कैकसी थी । उसकी कोख से रावण का जन्म हुआ । हाँ, दूसरी तीन संतानें भी जन्मीं, जिनके नाम क्रमशः कुम्भकर्ण, चंद्रनखा (शूर्पणखा) और विभीषण ।

चार भाई-बहनों में रावण सबसे अधिक शूर था, तेजस्वी था ।

वैताढ्य के विद्याधननरेश इन्द्र ने अपे दूत वैश्रमण को अपनी ओर से लंका का

राज करने को दिया । वैश्रमण कैकसी का भांजा था ।

एक बार वैश्रमण का विमान पाताल लंका के गगन से गुजर रहा था, तभी कैकसी अपनी चार संतानों के साथ ममत्व कर रही थी । विमान देखते ही वह क्रोध से जलने लगी । रावण ने कारण पूछा, तो उसने उसके कमजोर बाप-दादाओं का इतिहास बताया । कैकसी ने रावण को बताया, "तुम भी मुझे तो ऐसे ही कमजोर लगते हो कि तुम्हारे बुजुर्गों के स्वामित्व वाली लंका तुम भी वापस नहीं ले सकोगे। हट् कायर ! मेरी कोख से कहाँ जन्मे !"

ये शब्द सुन कर चार भाई-बहनें क्रोध से काँपने लगे । सभी आवेश में आ गए। दादा की लंका वापस पाने के लिये रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण ने कमर कसी। विजय मुश्किल थी, तो पुरुषार्थ कठिन था । उन्होंने विद्याएँ सिद्ध करने के लिए वन जाने का निश्चय किया । माँ कैकसी को तो यही चाहिये था । अच्छे मौके पर उसने संतानों को उत्तेजित किया था । माँ का आशीर्वाद प्राप्त कर तीनों संतानें विद्या सिद्धि के लिये निकल गईं ।

उन्होंने अथाह विघ्नों को पार कर साधना सिद्धि प्राप्त की । रावण ने एक हजार विद्याएँ और देवाधिष्ठित चन्द्रहास तलवार प्राप्त की । विभीषण ने चार और कुम्भकर्ण ने पाँच विद्याएँ सिद्ध कीं । हेमचन्द्राचार्य ने विद्याओं का सुंदर वर्णन किया है । (discribe किया है) परन्तु यह तो नहीं ही कहा है कि वह संहारक विद्याएँ सीखने जैसी हैं । उन्होंने इन विद्याओं के मामले में (priscribe नहीं किया है) यही जैन धर्म की खूबी है । वह धर्म से प्राप्त भोग-सुखों को कभी भी अच्छा या प्राप्त करने योग्य नहीं कहता ।

वैश्रमण को सतत उकसाते रह कर रावण ने उसके साथ युद्ध किया । पराजित वैश्रमण ने परम वैराग्य प्राप्त कर भगवती दीक्षा स्वीकार की । रावण ने उसे काफी रोका, परंतु वैश्रमण का वैराग्य कच्चा नहीं था । अश्रुपूर्ण आँखों से रावण ने वैश्रमण-मुनि को भावपूर्ण वंदन करते हुए कहा, "आप हार कर भी जीत गए हैं। मैं जीत कर भी हार गया हूँ ।"

फिर रावण ने लंकापति इन्द्र को जीता । रावण लंकापति बना ।

रावण की शूरवीरता पर उसके वध के बाद रामचंद्रजी ने भी प्रशंसा के पुष्प

चढ़ाए थे । बड़े भाई रावण का वध होते ही छोटे भाई विभीषण को आघात लगा। आत्महत्या करने के लिये उन्होंने म्यान से तलवार निकाल कर गला काटने की तैयारी की ।

रामचंद्रजी ने उन्हें समय रहते रोकते हुए कहा, "तेरा भाई चाहे जैसे मारा गया; परन्तु वीरता से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ है । ऐसी वीरमृत्यु पर तुझे शोक नहीं करना चाहिए ।" ऐसा था शूरवीर रावण ।

वह तीर्थंकर देव का परम भक्त था । उसके जीवन में सबसे गंभीर दो भूलें हुई हैं :

(१) वाली मुनि की हत्या का प्रयत्न

(२) सीता का अपहरण

इन दोनों प्रसंगों में उसकी अपूर्व परमात्मभक्ति देखने को मिलती है ।

वाली मुनि की हत्या का प्रयत्न

रावण की लंका की सीमा पर वानर द्वीप था । पीढ़ियों से राक्षस राजाओं और वानर राजाओं के बीच अपूर्व स्नेहभाव चला आ रहा था ।

www.vooppradhan.com

रावण ने सोचा कि मैं वानर राज वाली को मेरा सेवक बनाऊँ । उसने दूत भेज कर कहलवाया कि हमारे बीच स्नेहभाव की बजाए स्वामी-सेवक भाव होना जरूरी है; क्योंकि मैं तुमसे अधिक बलवान हूँ ।

रावण के दूत की बात सुन कर धर्मात्मा वाली हँस पड़े । उन्होंने दूत से कहा, "तेरे स्वामी को यह धुन कब से लग गई ? जा... तू उसे कह कि यह बात मुझे स्वीकार नहीं है । मेरा स्वामी बनना हो, तो युद्ध भूमि पर तय करना होगा । तारक तीर्थंकर परमात्मा ही मेरे सदा स्वामी रहने वाले हैं । दो स्वामी मैं कभी नहीं रखूँगा।"

दूत से यह समाचार सुन कर रावण आगबबूला हो गया । उसने युद्ध छेड़ दिया।

हजारों निर्दोष सैनिकों की दोनों तरफ से जानहानि हुई । यह देख कर धर्मात्मा वाली मुनि की आत्मा काँप उठी । उन्होंने रावण को मात्र द्वन्द्वयुद्ध करने की प्रेरणा दी । रावण भी उसी अहिंसाप्रधान जैन धर्म का अनुयायी था । वाली का प्रस्ताव उसने स्वीकार कर लिया ।

द्वन्द्वयुद्ध के अनेक दाव खेले गए । अंत में रावण हाथ में खुली चन्द्रहास तलवार लेकर वाली की तरफ आया । वाली ने रावण को बगल में लेकर जोर से

दबा दिया । बड़ा चक्कर धरती पर लगा कर वाली ने रावण को अपने सामने खड़ा किया । रावण शर्मिंदा हो गया । घोर पराजय की कालिमा उसके मुँह पर छा गई।

वाली ने रावण से कहा, "तू मुझसे कभी नहीं जीत सकता है, परन्तु अब मुझे इस संसार में नहीं रहना है । काफी समय से संसार की असारता का मुझे भान हुआ था । यह भान तेरी तीव्र युद्धलालसा देख कर अधिक जीवंत हो गया है । मैं तुझसे जीता हूँ, फिर भी तेरी लंका वापस सौंपता हूँ । मेरा छोटा भाई सुग्रीव तेरे अधीनस्थ राजा रह कर लंका संभालेगा । तू उसका स्वामी बन कर अपनी महेच्छा पूरी कर सकेगा ।"

रावण के लिये यह दूसरी बड़ी हार थी । रावण का सिर झुक गया । अपराधी की भाँति वह वालीराज के सामने कुछ समय खड़ा रहा । उसकी आँख से आँसू निकलने लगे । वह वालीराज के चरणों में गिर गया । अपनी सत्तालालसा के लिये उसने क्षमा याचना की । वालीराज ने भगवती दीक्षा ली । रावण को धर्मलाभ देकर उन्होंने विदाई ली ।

घोर साधना के पथ पर वाली मुनि ने कदम रखा । अष्टापद तीर्थ पर जाकर वे अधिकाधिक समय ध्यान व कायोत्सर्ग में रहने लगे ।

एक बार लंकापति रावण रत्नावली नामक राजकन्या से विवाह के लिये आकाश मार्ग से विमान से गुजर रहा था । विमान अष्टापद तीर्थ से गुजरते हुए वालीमुनि के मस्तक पर से निकला, तो मुनि की घोर सधना के प्रभाव से (शरीर से सतत निकल रही पवित्र ऊर्जा के स्पर्श से) विमान डोलने लगा । रावण उत्तेजित हो गया। विमान को पहाड़ पर उतार कर उसने पड़ताल की, तो पता चला कि यह काम उसके पूर्व शत्रु वाली का है ।

निरंतर एक से बढ़ कर एक आधिभौतिक : आधिवैदिक और आध्यात्मिक बल

इस विषय पर जरा गहराई से विचार करें । विश्व में तीन बल हैं : आधिभौतिक बल, आधिवैदिक बल और आध्यात्मिक बल ।

मानवीय पुरुषार्थ और मानवीय साधनों के भौतिक बल की तुलना में दैवीबल अत्यंत अधिक है । मानव ने जो वैज्ञानिक सिद्धियाँ प्राप्त कर 'नई दुनिया' का सृजन

किया है, उसे मिनट के छठे भाग में दैवीबल खत्म कर सकता है। दैवीबल कुपित हो, तो एक ही घण्टे में जहाँ जल है, वहाँ थल; जहाँ थल है, वहाँ जल हो सकता है।

आज भौतिक बलों ने धार्मिक व साम्प्रदायिक पदार्थों की बर्बादी कर दी है। टी. वी., सिनेमा, क्लबों, होटलों आदि के विलास रूपी बलों ने धर्म-बलों को मृतप्राय: कर दिया है। लाखों संतों में यह कुव्वत थी कि वे एकत्र होकर भी इन विलासी बलों को नष्ट कर सकते, परंतु यदि कोई एकाध धर्मी देवात्मा इस भारत देश पर नजर करे, तो उसे यह परिस्थिति काफी दु:खद लगेगी; वह जो इस स्थिति से निपटने की इच्छा करे, तो झूठ का विसर्जन करने का काम उसके लिये मात्र दो मिनट का है। समग्र विज्ञानवाद, भोगवाद और यंत्रवाद दो ही मिनट में इस धरती से गायब हो जाएँ। मॉस्को और न्यूयॉर्क दो ही मिनट में ध्वस्त हो जाएँ। पेंटागन का अस्तित्व ही न रहे।

सैकड़ों वर्षों में स्थापित भौतिक साम्राज्यों के विसर्जन को दैवीबल दो ही मिनट में खत्म कर सकता है।

आज की चिंताजनक परिस्थित को निपटाने का काम जब भी होगा, तब ऐसे दैवीबलों के द्वारा ही होगा। मानवीय बल सीधे प्रहार करने में सक्षम नहीं है।

www.yogpradhan.com

ऊर्जा पैदा करता आध्यात्मिक बल

परंतु इन दैवीबलों से बढ कर आध्यात्मिक बल है। संतों की आध्यात्मिक साधना के समक्ष दैवीबल बौने हो जाते हैं। झुक जाते हैं, शरणागत हो जाते हैं। उनके मनोगत भाव जान कर तद्अनुसार काम निपटाते हैं।

यह तो ठीक, दैवीबलों की सहायता लिये बगैर-उन्हें मीडिया बनाए बगैर भी आध्यात्मिक बल कार्वान्वित होते हैं। साधकों की देह में, सातों धातु में ऐसी पवित्र व तीक्ष्ण ऊर्जा पैदा होती है, जो आसपास व्याप्त होकर सभी मलों और बलों की सफाई कर डालती है।

इसीलिये साधकों के पास आने वाले जात्यवैरी पशुओं का हिंसक भाव खत्म हो जाता है।

व्यभिचारी मानसिकता से ग्रस्त जीवों की अब्रह्म की आग ठंडी हो जाती है।

आमर्ष चौषधि आदि द्वारा संत अन्यों के रोगादि का निवारण करते हैं।

उनके मूत्र, थूक, पसीने आदि औषधिरूप बन जाते हैं ।

आनंदधनजी के मूत्र ने पत्थर की शिला को स्वर्णमयी बनाया था ।

सनत्मुनि के थूक से कोढ़ एक सेकेंड में साफ हो गया था ।

कलिकालसर्वज्ञ के मंत्रित जल प्रभाव से गुर्जरेश्वर अपने देहलावण्य को पुनः प्राप्त कर पाए थे ।

शुद्ध ब्रह्मचारी पेथडमंत्री की शाल प्रजाजनों का बुखार भगा देती थी ।

घोर तपस्वी कृष्णर्षि के चरण जल से लोग रोगमुक्त होते थे ।

पूर्व जन्म के तप के प्रभाव से विशल्या का स्नानजल चामत्कारिक बना था ।

तक्षशिला में फैला प्लेग उपद्रव शांत करने के लिये देवी असफल रही थी । उसने मानवदेव सूरिजी महाराज के चरण जल की तरफ अंगुलिनिर्देश किया था ।

अत्यन्त रोगीष्ट जटायु गरुड़ अपनी काया को कंचनवर्णी करने में मुनियों की देह को किए गए स्पर्श (आमर्ष - औषधिरूप) से सफल बना था ।

अजैनों में अकबरकालीन तानसेन के गुरु हरिदास और जूनागढ़ के नरसिंह मेहता जब भावविह्वल बन कर परमात्मभक्ति करते थे, तब अंधियारी रात में भी चौतरफा प्रकाश फैलने की सुनी जाने वाली बात उनके प्रगाढ़ बने आध्यात्मिक बल के कारण ही हुई थी ।

साधकों की ऊर्जा क्या नहीं कर सकती ? उनके सामने दैवीबल बौने लगते हैं ।

तारक तीर्थंकर देवों के अतिशय उनकी आध्यात्मिक ऊर्जा का ही परिणाम है ।

वाली मुनि ने स्वयं रावण के विमान को स्खलित नहीं किया है, दैवीबलों द्वारा ऐसा नहीं कराया गया है । फिर भी ऐसा हुआ है, उसका कारण स्वयंस्फूर्त ऊर्जा ही है । और कुछ नहीं ।

ऐसे ऊर्जावंत योगी इस जगत के सर्वोत्कृष्ट पूजनीय तत्व हैं । प्रचंड दैवीबलों के स्वामी देवेन्द्र भी योगियों के चरण चूमने के लिये लालयित रहते हैं ।

इसीलिये सच्चे संत दैवीबलों के पीछे पागल नहीं होते हैं । वे स्वयं योगी बनते हैं । इसीलिये दैवीबल उनके चरणों में शीष झुकाते हैं । उनका आदेश सहर्ष शिरोधार्य करते हैं ।

वाली मुनि की ऊर्जा ने रावण के विमान को स्खलित किया । कायोत्सर्ग में रहे

कुन्ती-द्रौपदी की ऊर्जा से इन्द्र का विमान स्खलित हुआ था । धर्ममहासत्ता को भी मानो अविनय - महामुनि को वंदन करे बिना आगे बढ़ना - मंजूर नहीं था ।

सूक्ष्म की साधना की ओर सभी मुड़ें

यदि वर्तमानकालीन श्रमणों की यह बात ठीक से समझ में आ जाए, तो वे स्वलक्षी सूक्ष्म की आराधना को एक पल के लिये भी नजरअंदाज नहीं कर सकते । उसे गौण कर परलक्षी कल्याण के भ्रम में कभी नहीं फँस सकते ।

सूक्ष्म की शक्ति तो अणुबम में पड़े यूरेनियम का सर्वाधिक महत्व का तत्व U291 है । वही अणुबम से होने वाले विस्फोट का मुख्य तत्व है ।

आध्यात्मिक जगत में सूक्ष्म की शक्ति ही बड़ी ताकत है । पुण्यबल का जतन कर के वह बहुत बड़ा सृजनलक्षी विस्फोट कर सकता है ।

ऐसी शक्ति का उद्‌गम केन्द्र पवित्रता (Purity) है । सभी श्रमणों को जताना चाहूँगा कि - Raise the height of purity.

यह सूक्ष्म ऊर्जा आत्मा की विशुद्धि है । उसका बाई-प्रोडक्ट पुण्य है ।

www.vuqbrahman.com

विशुद्धि मोक्षार्थ जरूरी है । पुण्यतत्व का हम परार्थ कर दें । उस हरिभद्रसूरिजी की तरह भावना करें, "शुद्धि के साथ बाई-प्रोडक्ट के रूप में उत्पन्न पुण्यतत्व से जगत के जीवों का एकांत में हित हो, वे रोगमुक्त हों, सही अर्थ में सुखी हों ।"

स्व का या पर का या सर्व का कल्याण साधने का जैन न्याय यह एक ही है कि आप सर्व के हित को ध्यान में रख कर अपना हित बराबर साधते रहें । आपकी गुण-सिद्धियाँ जगत को गुणी बनाएँगी । आपकी सिद्धि ही परार्थ का वास्तविक साधन है । ऐसे परार्थ में स्वार्थ का निकंदन नहीं निकल सकता । स्वार्थ साधने का लक्ष्यरहित परार्थ स्वार्थ का निकंदन निकालता है, परंतु परार्थलक्षी स्वार्थ एकांत में साधक है ।

इसमें मानवता के जीवन की गुण-सिद्धि की तुलना में निरंतर सम्यक्‌त्व की, देशविरति की और सर्व विरति के जीवन की गुण-सिद्धियाँ महान हैं; व्यापक स्तर पर परार्थकारी हैं, अधिकाधिक सूक्ष्म बनती जाती हैं ।

एक लाख मानवता वाले मानवों की तुलना में एक ही जिनभक्ति वाला जीव बेहतर है । एक लाख जिनभक्तों की तुलना में एक ही देशवरितिधर बेहतर है ।

एक लाख देशविरतिधरों की वर्षों की साधना की तुलना में एक ही सर्वविरतिधर की एक ही सेकिंड की साधना अधिक बेहतर है ।

इसीलिये जगत्कल्याण के कामी पुण्यवान योगियों को सर्वविरति को ही अपना कार्यक्षेत्र बनाना चाहिए, जिसमें संख्या, क्षेत्र, काल कम होने के बावजूद परिणाम अति विराट है । परार्थ का यह काम विशिष्ट पुण्यशाली योगी का है । जैसे-जैसे पुण्यबल कम होगा, वैसे-वैसे निम्नतर देशविरति आदि कार्यक्षेत्रों का चयन करना चाहिए ।

सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम् बनते जा रहे योगियों के आध्यात्मिक बल ही इस जगत की उत्तरोत्तर बढ़ती शक्तियाँ हैं । हम उन्हें ही उत्पन्न करें । वे बल स्वत: परकल्याण-सर्वकल्याण में कार्यान्वित होंगे । अंतत: तो नियति अनुसार ही परकल्याण का वृत्त छोटा या बड़ा या विराट बनने वाला है । अत: स्वकेन्द्र में प्रचंड बल उत्पन्न करने के अलावा अन्य किसी पचड़े में हमें नहीं पड़ना है । इस मामले में कभी निराश नहीं होना है ।

सभी क्षेत्रों में फैले विनाश से निराश होने की बजाए हम स्व-केन्द्र में योग की पालथी लगा कर बैठें, यही हमारा कर्तव्य है । परार्थलक्षी एकांती आपाधापी हमें थका डालेगी, निराश कर देगी ।

यदि हमारी नजर में सूक्ष्म के स्वामी-वाली, जटायु, कृष्णार्षि, भीम, कुंडलियाँ, सेठ सुदर्शन, भिक्षुक प्रवरदेव, बलदेव मुनि और अतिशयान्वित तारक तीर्थंकर देव सतत आते रहते हैं, तो हमें पालथी (पलाठी) में अप्रतिम श्रद्धा लानी होगी । लाठी की शक्ति को नगण्य मान कर उसे त्यागना होगा ।

अब वाली-मुनि के प्रसंग में आगे बढ़ें । रावण को विमान-स्खलन में अपना भीषण अपमान दिखा । उसने अष्टापद के पहाड़ पर विमान उतारा । वहाँ ध्यानमग्न वाली मुनि को देखा ।

यह वही वाली थे, जो वानर द्वीप के राजा थे, जिन्होंने रावण को करारी शिकस्त दी थी ।

रावण की बैर-भावना जागृत हुई

रावण को यह सारी बातें बहुत सताने लगीं । उसने सोचा, "मेरे विमान का

स्खलन कर यह वाली अभी भी मुझे सताना चाहता है, परंतु अब मैं उसे नहीं छोड़ूँगा । मेरी करारी हार का बदला लेने के लिये इस वेशधारी वाली को मार डालूँगा।"

ऐसा सोच कर वह अष्टापद की तलहटी में गया । पहाड़ के नीचे बड़ा गड्ढा कर अंदर घुसा, पहाड़ उठाने की शक्ति उस 'मानव' के पास कहाँ से होगी ? उसने एक हजार सिद्ध विद्याओं का स्मरण कर तमाम दैवीबलों को एकत्र किया । उनकी सहायता मिलते ही पहाड़ उठाया । रावण का मकसद वाली को पहाड़ समेत समुद्र में डुबो देना था ।

वाली मुनि का ठोस प्रतिकार

पहाड़ उठाते ही बड़ी गर्जन हुई । वाली मुनि हिल गए । ज्ञानबल से उन्होंने सारा माजरा जान लिया । उन्होंने मन ही मन विचार किया, "रावण यदि इस प्रकार मुझे समुद्र में डुबो दे, तो कोई आपत्ति नहीं है; परंतु पहाड़ को भी डुबो देगा, तो असंख्य वर्षों पूर्व इस पहाड़ पर निर्मित भरत चक्री का रत्न मंदिर भी डूब जाएगा । यह किसी भी स्थिति में असहनीय है । ऐसा नहीं होने दिया जा सकता ।"

www.yugpradhan.com

इस तरह स्थावर तीर्थ की रक्षा को प्रेरित मुनि ने मात्र एक अंगूठे से पहाड़ का शमन किया । पहाड़ दबते ही रावण भी दबा । भीषण वेदना से चीखते हुए वह मुश्किल से पहाड़ से बाहर निकल तो गया, परंतु उसे खून की उल्टियाँ हो गईं । वह पहाड़ की तरफ बढ़ा । वह समझ गया कि ऐसी सजा उस मुनि के अलावा कोई नहीं दे सकता । उसे अपने कुकर्म का एहसास हुआ और तीव्र पश्चाताप के साथ वाली मुनि के पास पहुँचा । चरणों में गिर कर रोती आँखों से मुनिवर से क्षमायाचना करने लगा ।

मुनि ने क्षमा तो दी, परंतु साथ ही उपदेश भी दिया । ऐसे अकार्य नहीं करने की सुमधुर वाणी में सलाह दी । नतमस्तक व भावार्द्र हो रावण ने पश्चाताप करते हुए अपना अपराध स्वीकार किया ।

अब सवाल उठता है कि क्या वाली मुनि ने रावण को दंडित किया, वह उनके स्तर के योग्य था ?

विघातक बलों का प्रतिकार जरूरी

इसका जवाब देने से पहले कहना चाहूँगा कि ऐसी ही परिस्थिति में विष्णुकुमार मुनि ने धर्मद्वेषी मंत्री को कठोर सबक सिखाया था । कालकसूरिजी ने पटना के राजा गर्दभिल्ल को करुण हालत में रख कर निष्ठुरता आचरित की थी ।

मुनि ने जहर उगलने वाली नागश्री ब्राह्मणी को तत्कालीन आचार्य के जरिये चारों ओर उसकी काली करतूतों का ढिंढोरा पिटवा कर उसे ब्राह्मण जाति से बहिष्कृत करवा दिया था । पुलाक लब्धिधर मुनि अपने अप्रतिम शारीरिक बल का उपयोग जरूरत पड़ने पर धर्मद्रोही या गुरुद्रोही राजाओं के खिलाफ करते हैं ।

ऐसे महात्माओं का यह कर्तव्य है कि अंतर में उन तत्वों के विरुद्ध कोई राग-द्वेष रखे बगैर संघरक्षा के लिये ऐसा करें । इसमें कोई पाप नहीं है । इसीलिये उसका प्रायश्चित भी अत्यल्प होता था ।

सब्र ! यह सब वही मुनि कर सकते हैं, जो महागीतार्थ हों, रागादि परिणति से शून्य हों और महाशक्तिमान होने के साथ महापुण्यवान हों ।

www.yugpradhan.com

शास्त्रों में लिखा है कि ऐसे मुनियों को कोई आमंत्रण नहीं दें, तो भी उन्हें ऐसे शासन पर आक्रमणों में, धर्म का ध्वंस होने की स्थिति में, सत्क्रिया मार्ग को भय होने की स्थिति में, शास्त्रसिद्ध पदार्थों के विरुद्ध विद्रोह की आशंका में कूद जाना चाहिए । सम्पूर्ण गीतार्थता को काम में लगा कर यथासंभव सभी प्रयत्न करने चाहिए । इच्छित सफलता प्राप्त करके ही रहना चाहिए । ऐसी समर्थ आत्माएँ यह कथन नहीं कह सकतीं, "मैंने तो सभी यत्न किए, क्या करूँ ? विफल रहा ।"

विफलता को आमंत्रित करने वाली रणनीति ऐसे प्रचंड सेनापति कभी नहीं बना सकते ।

यह बात उत्तेजित होकर स्वीकार नहीं करनी चाहिए । इसी बात में यह सूचित हुआ है कि सभी प्रकार का पुण्यादि का सामर्थ्य देख कर ही कूदना चाहिए । जिसे उसमें थोड़ी सी भी न्यूनता दिखाई दे, जिससे जिनशासन के डाँवाडोल होने की आशंका हो, तो उसमें हाथ नहीं डालना चाहिए । चुपचाप स्वलक्षी साधना करते रहना चाहिए ।

गुस्से में किसी दीवार से सिर नहीं फोड़ा जा सकता । उससे तो अपनी हड्डियाँ

ही टूटेंगी । जिसके पास धर्मरक्षा का जो सामर्थ्य हो, वह उसे उपयोग में लेना ही चाहिए । कभी-कभी ऐसा कार्य करने के अधिकारी आचार्यादि भगवंत पीछे हटें, प्रमाद रखें और यदि किसी मुनि में ऐसा सामर्थ्य या उत्साह हो, तो वह भी यह कार्य कर सकता है । उस समय स्व के अधिकार का विचार नहीं करना चाहिए।

रेलवे क्रॉसिंग के आगे पटरी के स्क्रू नक्सलवादियों ने निकाल दिए हों; वहाँ भेंड़ चराने वाले चरवाहे को पता चल जाए, तो वह मरम्मत करने वाले को जानकारी देगा । मरम्मत करने वाला अनुपस्थित हो या सोते हुए नहीं उठे और इस तरह तेज रफ्तार से ट्रेन चली आ रही हो, तो क्या चरवाहा ट्रेन को रोकने का काम इसलिए नहीं कर सकता, क्योंकि वह उसके अधिकार क्षेत्र में नहीं है ! अरे ! उसे अपनी लाठी पर लाल कपड़ा चढ़ा कर भी 'रेड सिग्नल' देकर ट्रेन को रोकना ही होगा । यदि वह ऐसा न करे, तो बड़ा हादसा हो जाएगा ।

कभी-कभी वरिष्ठ अधिकारियों को कुछ काम अपने लिये छोटे लगते हैं । इसलिये वे उसमें पड़ते नहीं है । यह भी सही नहीं है ।

एक बार राधनपुर में माळी फळिया में आग लगी । एक व्यक्ति दौड़ता आया और नवाब साहब को सूचित किया । पहने हुए कपड़े में नवाब पैदल ही चल पड़े। उन्होंने माळी फळिया में पहुँचते ही आग को रेत से बुझाना शुरु कर दिया । सभी ने देखा और वे भी नवाब का अनुकरण करने लगे । आग काबू में आ गई ।

इस समय नवाब साहब को इस काम में छोटापन लगा होता-मैं बड़ा नवाब ! मैं रेत कैसे उठाऊँगा ? यदि ऐसे सवाल नवाब ने सोचे होते, तो पूरा राधनपुर आग की चपेट में आ जाता ।

फिर नवाब साहब ! किस पर नवाबी करते !

वाली मुनि से रावण ने अंत:करण से माफी मांगी, तो भी उसका दिल पश्चाताप से प्रज्वलित होता रहा । वह मंदोदरी के साथ वहीं स्थित जिनमंदिर में गया । मंदोदरी ने प्रभुभक्ति के रूप में नृत्य शुरु किया । रावण ने वीणा हाथ में ली। युगल प्रभुभक्ति में लीन हो गया । रावण की आँख से अश्रुधारा बह रही थी । अंतर में द्वंद्व चल रहा था, "हे देवाधिदेव ! मुझे बचाओ... बचाओ... बचाओ । स्थाई व अस्थाई तीर्थों के नाश के लिये प्रयत्न कर मैंने अति भयानक कर्मबंध कर दिया है !"

उसी समय वीणा का तार टूट गया। भक्ति के जमे रंग में भंग न हो, इसके लिये रावण ने पैर के स्नायु को जोर लगा कर ऊंचा कर तंग कर उसे वीणा के तार के रूप में उपयोग में लिया। (मतांतर के अनुसार भुजा के सभी स्नायुओं को ऊंचे कर भुजवीणा बना कर प्रभुभक्ति करता है) काफी क्षणों तक स्नायु तंग रहे, तो बहुत पीड़ा हुई, लेकिन रावण को होश नहीं था। परमात्मा की भक्ति में देह और आत्मा की विभक्ति हो गई थी।

ऐसी उत्कृष्ट प्रभुभक्ति की क्षणों में रावण ने तीर्थंकर नामकर्म का बंध किया।

धन्य है रावण। उस समय नागेन्द्र वहाँ आए। उन्होंने इस युगल की अद्‌भुत प्रभुभक्ति देखी। वे अतीव प्रसन्न हुए। भक्ति में खलल नहीं पहुँचाते हुए उन्होंने मंदिर में प्रवेश नहीं किया। जब रावण मंदिर से बाहर निकला, तो नागेन्द्र ने उसकी प्रभुभक्ति की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए कहा, "भक्ति का फल तो मोक्ष है, परन्तु हे रावण ! आप संसारी जीव हैं। आप संसार की जो वस्तु मांगेंगे, मैं दूँगा।"

रावण ने कहा, "आपने अपना कर्तव्य निभाया। मेरा कर्तव्य है भक्ति के बदले में कुछ नहीं मांगूँ।" रावण मन ही मन पश्चाताप की आग में झुलस रहा था। मानो वह नागेन्द्र से कह रहा था, "हे नागेन्द्र ! तू जो सर्वोत्कृष्ट भोगसामग्री दे सकता है, वह मुझे नहीं चाहिए। मुझे जो चाहिए-ताजा तीव्र पापकर्म का क्षय-यह तू मुझे नहीं दे सकता है। ओ रंक ! फिर क्यों कुछ भी माँग लेने का बखान कर रहा है !"

नागेन्द्र ने आग्रहपूर्वक अमोघविजया शक्ति और रूपपरावर्तिनी विद्या रावण को दी। अमोघविजया शक्ति का उपयोग भविष्य में लक्ष्मण के सीने पर मार कर उसे मूर्च्छित करने में हुआ था, जबकि रूपपरावर्तिनी विद्या का उपयोग अजैन रामायण के आधार पर सीता का देहसुख पाने के लिये राम का रूप धारण करने में रावण ने किया था। कहा जाता है कि दर्पण में अपना राम-स्वरूप देखते ही जो रावण दिखा, उससे रावण की कामवासना खत्म हो गई थी ! (जहाँ राम तहाँ काम नहिं! जहाँ काम तहाँ नहिं राम। तुलसी ! दोनुँ ना रहे, राम-काम इक ठाम)

वहाँ से रावण रत्नावली राजकुमारी से विवाह कर लंका गए। इधर वाली मुनि को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई।

यहाँ रावण की अथाह प्रभुभक्ति के दर्शन होते हैं। रावण ने लंका में अपने

राजमहल में अपूर्व स्तर का तत्कालीन शासनपति परमात्मा मुनिसुव्रत स्वामी के अति मूल्यवान नीलमरत्न के जिनबिम्ब वाला गृह मंदिर बनाया था । यह जिनबिंब और गृह मंदिर इतने उत्कृष्ट थे कि उसकी प्रसिद्धि समग्र विश्व में हुई थी । अयोध्या में भी राम आदि सभी इस वास्तविकता से अवगत थे । इसीलिये जब रावण का वध कर राम ने विभीषण के साथ लंका में प्रवेश किया, तब उस स्वागतयात्रा में ही राम ने विभीषण से कहा था कि सबसे पहले मुझे तेरे ज्येष्ठ बंधु के गृह मंदिर में जाना है । परमात्मा मुनिसुव्रत स्वामी के दर्शन कर कृतार्थ बनना है । मैंने सुना है कि इस विश्व का वह अजूबा समान है ।

रावण इस गृह मंदिर में त्रिकाल पूजा करता था । सीता को अपने यहाँ नजरकैद करने के बाद रोज दिन में वह देहसुख पाने के लिये चरण में शीष झुकाता ।

परन्तु रोज रात को गृह मंदिर में आरती कर एकांत प्राप्त कर प्रभु के चरण में गिर कर उससे भी अधिक आक्रन्द करता । उस समय रावण परमात्मा से कहता, "हे देवाधिदेव ! ओप पतितों के पावन ! मुझे बचाओ । मेरी कामवासना बहुत प्रज्वलित हुई है । परस्त्री पर-उसकी इच्छा न हो, तब-बलात्कार नहीं करने की मेरी प्रतिज्ञा है, परन्तु अब मुझसे सहन नहीं होगा । शायद, कल मैं सीता पर बलात्कार कर बैठूँगा । मेरी प्रतिज्ञा को तोड़ दूँगा । ओ प्रभु ! यदि ऐसा अघटित कृत्य मुझसे होगा, तो मेरी इकहत्तर पीढ़ियाँ कलंक के सागर में डूब जाएँगी । प्रभु ! मुझे बचाओ... बचाओ... मेरी काली कामवासना शांत करो । आपका उपकार मैं जन्मोजन्म तक नहीं भूलूँगा ।"

और वास्तव में... प्रार्थना फलीभूत होती । नित्य चौबीस घण्टे का बल रावण को मिल जाता । उसकी कामवासना को यह प्रार्थना हतप्रभ कर देती ।

कैसा प्रभुभक्त रावण ! कैसा उसका पश्चाताप ! इसे कैसे दुष्ट कहा जा सकता है, समझ में नहीं आता ।

सीतापहरण

जिसने सीता का अपहरण करने का अत्यन्त कलंकित कार्य अपने जीवनकाल में कर दिया, वह रावण ब्रह्मचर्य का कट्टर प्रेमी था । इसीलिये उसके जीवन में लगे इस कलंक का कारण कर्म का तत्वज्ञान नहीं पाने वालों को समझ में नहीं आएगा।

वास्तव में तो रावण निकाचित मोहनीय कर्म की चपेट में आ गया था। उस कर्म ने ही उसे पछाड़ा है। नंदिषेण, सत्यकी, महावीर देव का मरीचि आदिकालीन आत्मा आदि के जीवनचरित्रों में निकाचित कर्मों के झंझावाती, अपरिहार्य आक्रमणों का हमें स्पष्ट दर्शन होता है। रावण भी ऐसे ही आक्रमणों का शिकार बना था। उसके जीवन की दो घटनाएँ इसका प्रमाण हैं। इसके अलावा पाप पर उसका तीव्रतम् पश्चाताप भी इस तथ्य को सही साबित करता है। चलिए, हम उन दो महान घटनाओं को देखते हैं।

नलकुबरपत्नी उपरंभा

महाराजा इन्द्र का दूत राजा नलकुबर था। उसकी रानी उपरंभा थी। नलकुबर को जीतने के लिये रावण ने उसकी नगरी के चारों ओर पड़ाव डाला। नगरी में सेना का प्रवेश अति कठिन था, क्योंकि नलकुबर ने आशाली विद्या के बल से नगर के चारों ओर अग्नि का किला खड़ा कर दिया था। रावण, विभीषण आदि बहुत चिंता में पड़ गए थे।

www.yugpradhan.com

कई दिन बीत गए।

उस समय रावण की प्रचंड शक्ति पर न्योछावर रानी उपरंभा ने दूत से रावण को संदेशा भिजवाया, 'यदि आप मुझे रानी के रूप में स्वीकारें, तो मैं आपको आशाली विद्या को शांत कर देने वाली प्रतिविद्या भेजूँ और सुदर्शन चक्र की भी भेंट दूँगी।'

शील के अत्यन्त प्रेमी रावण ने उसके प्रस्ताव को एक क्षण में ही तिरस्कृत कर दिया, परन्तु विभीषण शांत नहीं बैठा। जैसे ही दूत रावण की छावनी से बाहर आई, विभीषण ने उससे कहा कि महाराज रावण ने उसकी रानी की बात स्वीकार कर ली है। उपरंभा को वह अपनी अर्धांगिनी जरूर बनाएंगे। तू आशाली विद्या की मारक विद्या तुरंत ले आ।

दूत ने उपरंभा को बताया। प्रसन्न उपरंभा ने प्रतिविद्या भेज दी। उसके उपयोग से रावण की जीत आसान हो गई। नलकुबर जीवित कैद में आ गया। विजयोत्सव मना रही राज्यसभा में निर्लज्ज बन कर उपरंभा आई। उसने अपना प्रस्ताव रखा। उसका पति नलकुबर स्तब्ध रह गया। स्त्रीचरित्र और विश्वासघात का यह तूफान देख कर वह चकरा गया।

उपरंभा की निर्लज्ज मांग का उत्तर देते हुए रावण ने कहा, 'मेरे भाई विभीषण ने राजनीति की है । मैंने तेरा प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया है । खैर जो हुआ सो हुआ। परन्तु हे बहन ! अब तू मेरी विद्यागुरु बनी है । तूने मुझे विद्यादान दिया है । अब मुझसे तेरे साथ भोग का जीवन नहीं जिया जाएगा । फिर तेरा पति बहुत महान है । तू उसकी पत्नी के रूप में ही सदा रहे, इसी में तेरा हित है ।'

रावण के वाक्य सुन कर उपरंभा की वासना शांत हो गई । नलकुबर के मन में रावण के प्रति अपार सम्मान पैदा हुआ । रावण की ऐसी उत्कृष्ट शील-निष्ठा थी!

अनन्तवीर्य का केवली से प्रश्न

एक बार रावण अनन्तवीर्य नामक केवल ज्ञानी भगवंत की वंदना करने गया । उसकी धर्मदेशना सुनने के बाद रावण ने सवाल किया, 'मेरी मृत्यु किससे होगी ? किन कारणों से होगी ?'

महर्षि ने कहा, 'भविष्य में होने वाले वासुदेव से तेरी मृत्यु होगी । परस्त्री के कारण होगी ।'

www.yugpradhan.com

ये शब्द सुन कर रावण का मन चकराने लगा । उसे बहुत आघात लगा । उसके मन में सवाल पर सवाल उठने लगे । 'क्या मैं किसी की विवाहिता पर कामुक बनूँगा? फिर क्या उसका अपहरण करूँगा ? यानी उसका पति मुझसे युद्ध करेगा? और उस युद्ध में मेरी मौत होगी ? हाय ! इतनी कलंकित मृत्यु ! अरे, इससे अच्छा तो कुत्ते की मौत मरने को मैं तैयार हूँ । मेरा महापवित्र राक्षस वंश... और उसके सपूत की यह दुर्गति ! नहीं... नहीं... नहीं... मैं कभी भी यह स्थिति पैदा नहीं हो दूँगा । भले ही उस केवलज्ञानी का यह वचन हो, कभी मिथ्या नहीं जाने वाला हो... परन्तु मैं अच्छाई करूँगा । उस नियति की सोने की थाली में लोहे की कील ठोक दूँगा । नहीं... मुझसे ऐसी कलंकित मृत्यु की कल्पना भी नहीं हो सकती ।'

कुछ ही देर में रावण के मस्तिष्क में एक विचार कौंध गया । वह तुरंत खुश हो गया । वह मन ही मन बोला, 'यदि ऐसी प्रतिज्ञा अभी ही ले लूँ, तो इस ज्ञानी-वचन का मिथ्या होना तय है । हाँ... प्रतिज्ञा का उल्लंघन करूँ, तो अलग बात है; परन्तु लंकापति रावण प्रतिज्ञा-भंग करे ऐसा सत्वहीन, निर्लज्ज और निष्ठुर कभी नहीं हुआ है और भविष्य में भी नहीं होगा ।'

उसके बाद रावण ने अजंलिबद्ध नमस्कार कर ज्ञानी भगवंत से कहा, 'मुझे वचन दो कि जब तक मेरे समझाने के बावजूद परस्त्री मुझे देहसुख देने में सहमत न हो, तब तक मैं उसके साथ बलात्कार नहीं करूँगा ।'

परस्त्रियमनीच्छन्तीं, रमयिष्यामि नह्यहम्

ज्ञानी भगवंत ने वचन दिया । वे नियति के दर्शक थे । प्रतिज्ञा भी नियति में दिखती थी और परस्त्री निमित्तक रावण वध भी नियति में दिखता था ।

प्रतिज्ञा लेने के बाद रावण को सतत एहसास होता रहा, 'अब मैं कलंकित होने के भय से सदा के लिये मुक्त हो गया हूँ ।'

चिंतातुर रावण का नैमित्तिक से प्रश्न

अनन्तवीर्य केवली का वचन सही होने की संभावना से अवगत रावण को सतत इस बात की चिंता खाए जाती थी कि उसकी मृत्यु परस्त्री के कारण होगी । यह जीवन की कितनी हल्की घटना होगी !

एक बार रावण के पास अष्टांग निमित्त का जानकार नैमित्तिक आया । रावण ने तुरंत स्वमृत्यु का प्रश्न पूछा । नैमित्तिक ने कहा, 'जनक राजा की पुत्री सीता के कारण, राम द्वारा (लक्ष्मण द्वारा) तेरी मृत्यु होगी ।' यह सुन कर रावण आघातित हो गया । विभीषण के लिये तो यह सत्य असहनीय हो गया । उसने राम के पिता दशरथ और सीता के पिता जनक को ही मार देने का पैंतरा रचा । ये दोनों मरे, तो उन्हें राम और सीता नामक संतानें होने का प्रश्न ही समाप्त हो जाए ।

परन्तु दशरथ के कुशल मंत्रियों ने विभीषण को ठगा । दशरथ को नगर से विदा कर दिया । उनके जैसी प्रतिकृति (सोते हुए दशरथ की) रख दी । क्रोध से झुलस रहे विभीषण ने उस मूर्ति पर घात किया । दशरथ को खत्म मान कर मंत्रियों से लेकर तमाम नगरजनों ने करुणा कल्पांत किया । नाटक पूरा हो गया, लेकिन विभीषण को शक नहीं हुआ । उसने सोचा, 'दशरथ खत्म है, तो अब जनक को खत्म करने की जरूरत नहीं है । अकेली सीता भले पैदा हो । एक हाथ से ताली बजने वाली नहीं है !'

यह सोच कर वह लंका लौट गया । दशरथ जीवित रह गए । जनक जीवित रह गए।

राम और सीता का जन्म होकर ही रहा । सीता का अपहरण हुआ ब्रह्मचर्या प्रेमी

रावण के हाथों ।

परन्तु रावण ने सीता पर बलात्कार नहीं किया । उसका पूरा श्रेय रावण की प्रतिज्ञापालन की कट्टरता को जाता है ।

वह शराबी बुनकर ! कैसा कट्टर प्रतिज्ञापालक कि मौत को गले लगा लिया, परन्तु शराब नहीं पी !

वह साकलचंद्र महाराज । गधे चिल्लाए, तभी कायोत्सर्ग का संकल्प । ७२ घण्टे बाद गधा चिल्लाया, तब तक अखंड कायोत्सर्ग में रहे ।

वह वज्रजंघ राजा, दिक्परिमाणव्रत जान की बाजी लगा कर पाला ।

कितने नाम दूँ ? गुर्जरेश्वर की चातुर्मास में नगर से बाहर नहीं जाने की प्रतिज्ञा ।

चंद्रयशा और आदित्ययशा की जबर्दस्त प्रतिज्ञाएँ ।

रावण के सीताहरण की पूर्वभूमिका

शंबुक का वध

www.yugpradhan.com

ऐसा ब्रह्मचर्य प्रेमी सीता के चक्कर में कैसे पड़ा ? अब देखते हैं ।

रावण की बहन थी शूर्पणखा । बहनोई खर । भांजा शंबुक ।

शंबुक को विद्या सिद्धि का भारी व्यासंग था ।

उसने कहीं से जाना, 'यदि सूर्यहास खडग पाना हो, तो अमुक मंत्र जापपूर्वक की १२ वर्ष और ७ दिन की साधना बाँस के वन में उल्टे सिर बाँस पर लटक कर करनी चाहिए ।'

माता-पिता की अनिच्छा के बावजूद वह द्रोह कर वन में गया । साधना शुरु की । माता शूर्पणखा रोज दोपहर को भोजन की थाली लेकर विमान से वहाँ आती।

बारह वर्ष और चार दिन बीत गए । अब तीन दिन शेष थे । तलवार आकाश से नीचे उतरती जा रही थी । माँ के आनंद की सीमा नहीं थी । उसी समय राम, सीता और लक्ष्मण ने वनवास के दिनों के दौरान बाँस वन से कुछ दूर कुटीर बांध कर पड़ाव डाला । एक बार लक्ष्मण घूमने निकले । तलवार के निकट आए । सूर्यतेज से चमकती तलवार देख कर इस क्षत्रियवीर के हृदय में आनंद छा गया । एक छलांग लगा कर तलवार हाथ में ले ली !

पुण्यशाली को देखते ही देखते वस्तु मिल जाती है । बेचारा शंबुक ! उसे घोर साधना करनी पड़ी ।

पुण्य की प्रबलता थी, तो (१) एक ही माह के हुए दशरथ का राज्याभिषेक हुआ। (२) हुमायू की कब्र पर बांधे बाल के कारण अकबर पर शत्रु के बाणों की बौछार के बावजूद उसे कोई हानि नहीं हुई । (३) शालिभद्र को उसके पिता गोभद्र सेठ स्वर्ग से हर रोज ९९ पेटी भेजते ।

दूसरी तरफ पुण्य समाप्त हो गया, तो (१) नेपोलियन सेंट हेली के द्वीप में सड़ कर मारा गया । (२) प्रताप भिक्षुक की तरह पहाड़ों में अरसे तक भटका । हाथ आई रोटी भी गिद्ध छीन ले गया । (३) गांधीजी, इंदिराजी, राजीवजी की हत्या हुई । (४) मुगल सल्तनत के अंतिम वंशज गलियों में भीख मांगते गए । (५) गोर्बाच्योव का प्रतिष्ठा सूर्य मध्याह्न में अस्त हो गया । (६) ईरान का शाह तड़प-तड़प कर मरा । (७) अरबोंपति फोर्ड पानी के अभाव में प्यासा मरा ।

माता-पिता की अनिच्छा पर शंबुक ने की साधना विफल रही । उसका करुण अंजाम आया । माता-पिता और गुरु के आशीर्वाद के बिना संतानों या शिष्यों का स्वत: पुरुषार्थ प्रसिद्धि देगा, सिद्धि कभी नहीं । प्रसिद्धि भी पतन ही लाएगी ।

www.yogadhan.com

वह महाभारत का मातृद्रोही कौशिक !

वह गुरुद्रोही आरणक वाले आचार्य !

कैसी करुणता हुई उनके साथ ।

शंबुक की साधना के तीन दिन पहले लक्ष्मण ने तलवार ले ली । उसकी शक्ति देखने के लिए उसने उसी बाँस की झाड़ी पर घुमाया, जिसके अंदर शंबुक साधना करने के लिये लटका हुआ था । एक सेकिंड के सौवें हिस्से में तलवार से उसके धड़-मस्तक अलग हो गए । रक्तरंजित तलवार देख कर लक्ष्मण भड़के । घबराए । तलवार के साधक का सिर कटने की आशंका हुई । अंदर देखा, तो सही निकला ।

लक्ष्मण तलवार के साथ राम की तरफ दौड़े । सब कुछ जानने के बाद राम ने बड़ी आपदा की कल्पना की । निरपराधी साधक का वध बड़ा अमंगल हो गया ।

इस तरफ शूर्पणखा विमान में भोजन लेकर आई । उसने जब देखा, तो वह उसके लिये रोने लगी । आसपास उसने कदमों के निशान देखे । कदमों के निशान

के साथ वह राम-लक्ष्मण की तरफ जाने लगी । उसने दूर से कुटीर में बैठे देवकुमार जैसे दो पुरुषों और अप्सरा जैसी एक स्त्री को देखा । उसके मन में पुत्र का वध करने वालों पर काम जागृत हो गया । अपने बेडौल रूप को त्याग कर विद्याबल से वह अप्सरा जैसी कुमारिका बन कर रामादि की तरफ जाने लगी ।

यह रूपपरावर्तन राम की नजर से बच नहीं सका । राम ने लक्ष्मण को उस स्त्री से सावधान रहने को कहा ।

कामुक शूर्पणखा से राम ने पूछा, 'बाई ! तू कौन है !' जवाब मिला, राजकुमारी। दो युवक राजकुमार मेरे पीछे पड़े हैं । दोनों के बीच अभी-अभी भयंकर युद्ध हुआ । दोनों मारे गए । मैं भाग कर यहाँ आपके पास आई हूँ । आप पत्नी के रूप में मेरा स्वीकार करें । राम ने कहा, 'मेरी तो पत्नी यह बैठी है ! सीता नाम है । तू मेरे इस भाई से बात कर ।'

शूर्पणखा ने लक्ष्मण से बात कही । लक्ष्मण ने उसकी बात उड़ाते हुए कहा, 'तू मेरे भाई को मन से पति मान चुकी थी न ? इसलिये तू मेरी भाभी हो गई । अब मैं तुझे पत्नी के रूप में स्वीकार कैसे कर सकता हूँ ?'

www.yuvapradhan.com

ये शब्द सुन कर शूर्पणखा को विश्वास हो गया कि दोनों भाई उसका मखौल उड़ा रहे हैं । इसीलिये पुत्र का वध करने वालों के प्रति वह भयानक क्रोध में आ गई ।

अब काम ने क्रोध का रूप ले लिया ।

उसने कहा, 'याद रखो । तुमने मेरे पुत्र को मारा है । उस बैर का बदला लेने मैं शीघ्र ही आऊँगी ।'

गीताजी का वचन कितना सही ठहरा । कामात् क्रोधोऽभिजायते ।

शूर्पणखा ने पति खरराज से पुत्रहत्या की बात की । उसे शत्रुहत्या करने के लिये बहुत भड़काया । विराट सैन्य के साथ खर राम-लक्ष्मण की तरफ चल पड़ा ।

खर के साथ लक्ष्मण युद्ध को तैयार हुआ ।

राम ने कहा, 'भाई ! विपत्ति आए तो सिंहनाद करना । मैं तेरी सहायता को आऊँगा ।' इस पर लक्ष्मण ने मुस्कुराते हुए कहा, 'बड़े भाई ! आपकी मुझ पर अमोघ कृपा है । मुझे क्या हो सकता है ! फिर भी आपकी बात ध्यान रखूँगा ।'

कुटीर से कुछ दूर लक्ष्मण और खर का भीषण युद्ध शुरु हुआ ।

राम और सीता कुटीर में बैठे हैं । इस तरफ शूर्पणखा अपने बड़े भाई रावण के पास गई । उसने रावण के समक्ष सीता के सौंदर्य का बखान किया । रावण उससे मिलने आतुर हो गया । तत्काल पुष्पक विमान में बैठ कर वह वन में पहुँचा ।

दूर से उसने सीता को देखा । उसे लगा कि वह स्वर्गलोक की साक्षात् उर्वशी है । शूर्पणखा ने उसका जो वर्णन किया, वह बहुत अधूरा है । रावण की नजर सीता के बराबर बैठे राम पर पड़ी और रावण एकदम अस्वस्थ हो गया । राम का तेज अपूर्व था । रावण उसे देखन नहीं पा रहा था । ऐसे महान पुरुष के पास बैठी सीता को दिनदहाड़े उठाना आसमान से तारा तोड़ने से भी कठिन था ।

अब क्या किया जाए ? यकायक उसे अवलोकनी विद्या आई । उसने वह विद्या सिद्ध की । स्मरण के साथ ही वह हाजिर हो गई । उसका काम चारों ओर अवलोकन करना था और योग्य रास्ता दिखाना था ।

रावण ने उसे कहा, 'तू राम को हटा दे । उसकी उपस्थिति में सीता को उठाना सर्वथा असंभव लगता है ।'

विद्यादेवी ने कहा, 'आपकी बात बिल्कुल सच्ची है ।' फिर चारों ओर अवलोकनी ने अवलोकन किया । उसे रास्ता मिला । उसने रावण से कहा, 'खर के विरुद्ध युद्ध में जाते समय लक्ष्मण ने राम से कहा था कि वह विपत्ति में पड़े, तो सिंहनाद करे ।'

महाराजा रावण ! मैं दूर जाकर हूबहू सिंहनाद करती हूँ । राम लक्ष्मण की सहायता को दौड़ेंगे । फिर अकेली सीता को आप उठा लेना ।

अवलोकनी ने दूर से सिंहनाद किया । राम थोड़े अस्वस्थ तो हुए, परन्तु तुरंत उन्होंने सीता से कहा, 'यह कोई षड्यंत्र लगता है मुझे दूर कर तुझे उठा ले जाने का । भाई लक्ष्मण की अप्रतिम युद्ध-शक्ति का मुझे पूरा अंदाजा है । वह कभी विपत्ति में नहीं पड़ सकता ।'

परन्तु सीता घबरा गई । उन्हें तो सिंहनाद सच ही लगा । राम पर बहुत दबाव डाला । राम को सीता से अलग होकर दौड़ना ही पड़ा । उसी समय उल्लू की आवाज आदि के अमंगल होते ही राम ठहर गए, परन्तु सीता ने फिर फटकार लगाई । देवर की मदद को जाने का आग्रह किया ।

और... राम दौड़े ।

रावण की विद्या साधना के प्रभाव तले आई बेचारी अवलोकनी । अनिच्छा से भी उसे गलत काम करना पड़ा ! इसीलिये कोई भी गुलामी अच्छी नहीं है । काश! हम जब तक हमारे सिद्ध-स्वरूप को प्रकाशित नहीं करें, तब तक हमें कर्मों की गुलामी करनी ही पड़ेगी । उसके दिए दुःख, खींचे सुख हमें स्वीकारने ही पड़ेंगे । गुलामी मात्र भयंकर है । कवि गंग से अपनी खुशामद कराने के लिये अकबर ने कहा, 'आश करो अकबर की ।' सिरफिरे स्वाभिमानी गंग ने कहा, 'जिस को हरि पे विश्वास नहीं, सो ही आश करो अकबर की ।' इस पर गुस्साए अकबर ने गंग कवि को हाथी के पैर तले कुचलवा दिया !

इस तरफ अकेली सीता को रावण ने उठा कर विमान में बैठा दिया ।

विमान रवाना हो गया ।

उस समय राम के सत्संग से धर्मात्मा बने गरुड़-जटायु ने विमान का पीछा किया। रावण पर आक्रमण किया । जोर से चोंच से वार करने लगा । रावण जानता था कि शत्रु अवगणना के लायक नहीं है । उसने कमर से कटारी निकाल कर उसके गले पर चला दी । रक्त की धारा बह निकली । जटायु जमीन पर गिर गया । अजैन रामायण ने कहा है कि उस समय जटायु महाराज जोर-जोर से 'राम', 'राम' बोल रहा था ।

वनवासियों ने आकाश-युद्ध देखा था । जटायु की रक्तरंजित देह धरती पर पड़ी देखी थी । उसके आघात से वे शून्यमनस्क हो गए थे ।

जटायु महाराज के पास सभी पहुँच गए । राम... राम... राम... जपते जटायु से किसी ने पूछा, 'महाराज ! कैसे बलि के साथ आपने संघर्ष किया । इसमें जीत की तो आप कल्पना भी नहीं कर सकते हैं । तो आपने परिणाम का विचार किए बगैर खुद की कैसे आहुति दे दी ?'

बड़ी मुश्किल से सिर ऊँचा कर स्वाभिमान के साथ जटायु ने कहा, 'मैंने खुद को इसलिये न्योछावर किया क्योंकि वह परस्त्री-अपहरण का अधर्म मुझसे नहीं देखा जा सका ।' फिर राम नाम जपते जटायु की मृत्यु हुई । (जैन मतानुसार राम ने ही उसे अंतिम नवकार-मंत्र सुनाया था ।) कैसा अद्‌भुत वाकया है । अन्याय करना गलत है, तो अन्याय होता देखना, सहन करना भी उतना ही गलत है ।

आज तो राजनीति के क्षेत्र में कैसा घोर अन्याय गरीब, अशिक्षित और ग्रामीण प्रजाजनों पर हो रहा है ! उनके साथ कितने सम्पन्न, शिक्षित व शहरी आए हैं ? कुछ अन्यायी लोगों ने गरीबों आदि पर अति जुल्म किया है । बेचारे उन लोगों का कोई सहारा नहीं है । उनके साथ कोई नहीं आता । सभी स्वार्थ के सगे बने हैं ।

रावण का विमान सीता को लेकर लंका की ओर बढ़ा । सीता ने राम को अपनी खोज में मदद के लिये शरीर के आभूषण एक के बाद एक धरती पर फेंकना शुरु किया ।

इस तरफ लक्ष्मण की मदद को राम दौड़े । लक्ष्मण तो भारी मस्ती से खरराज को परास्त कर रहे थे । वह किसी आपत्ति में नहीं था । राम को देख वह स्तब्ध रह गया । उसने पूछा, 'बड़े भाई ! क्यों पधारे ? मैंने कोई सिंहनाद नहीं किया है ।'

इस वाक्य से ही राम के मन में घबराहट पैदा हो गई । उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि तो फिर जरूर कोई षड्यंत्र खेला गया है तेरी भाभी के अपहरण का । मुझे तो सिंहनाद सुनते ही यह आशंका हो गई थी, परन्तु तेरी भाभी ने भारी दबाव डाला और मुझे तेरी मदद को भेजा । खैर... अब मैं जल्दी से सीता के पास पहुँचता हूँ।

www.yagpradhan.com

राम पुनः कुटीर में आए । काश ! वहाँ सीता नहीं थीं । राम ने चारों ओर नजर दौड़ाई । कोई नहीं दिखा ।

राम धड़ाम से धरती पर निढाल हो गए । 'हे सीते !' कहते हुए बेहोश हो गए।

राम का करुण विलाप

जब खर का वध कर विजयी बने लक्ष्मण कुटीर में आए, तब राम बेहोश पड़े। सीता तो थी नहीं, जो राम को होश में लाए । इसके बाद राम ने 'हे सीते !', 'हे सीते!' कह कर करुण रुदन किया ।

राम ने कहा, 'ओ लक्ष्मण ! यहाँ चारों ओर घूमा । सीता मुझे दिखती नहीं है । हाय ! मैंने उसे अकेली क्यों छोड़ा ? मेरे इस अपराध की मुझे तू क्षमा दे । ओ सीते ! सीते ! सीते !'

राम के इस करुण रुदन को सुन कर पेड़ों पर रहे पक्षी उदास हो गए । पशु वहाँ आकर खड़े हो गए । उनकी आँखों से आँसू गिरने लगे ।

राम और लक्ष्मण वन में ढूँढने निकले । सीता के प्रति मोहदशा से राम पागल

जैसे हो गए ।

दूर रहे लम्बे पत्तों वाले पवन से हिलते सरु के वृक्षों को देख कर राम को लगा कि वे पत्ते रूपी हाथ से मुझे बुलाते हैं । राम ने वहाँ जाकर उनसे पूछा कि क्या 'आपने मेरी प्रिये सीता को देखा है ? वह कहाँ है ?'

झरने के बहते पानी की आवाज में राम को लगा कि वे उन्हें बुला रहे हैं । राम झरनों के पास गए और पूछा कि 'क्या उन्होंने मेरी प्रिये सीता को देखा है ? वह यहाँ से गुजरी है ? कहाँ गई है ? मुझे जल्दी बताओ ।'

इस प्रकार प्रकृति के प्रत्येक स्वर में राम को सीता के मिल जाने की कल्पना होने लगी ।

नाहं जानामि कुंडले

राम आगे बढ़े, तभी धरती पर पड़ी कान की बाली दिखाई दी । राम ने लक्ष्मण से पूछा, "भैया, यह तेरी भाभी की बाली तो नहीं है ?"

लक्ष्मण ने कहा, "मुझे नहीं पता ।"

www.vyapradhan.com

राम ने सीता की ओर से विमान से फेंके गए कई हार, बाजूबंद, नाक की नथुनी आदि आभूषण देखे । राम को निश्चित लग रहा था कि ये आभूषण सीता के ही हैं, परन्तु हाल की स्थिति में मनोदशा ठीक नहीं होने के कारण वे निर्णय नहीं कर पा रहे थे । इसीलिये लक्ष्मण से बार-बार पूछते । लक्ष्मण हर बार यही कहते, "मुझे नहीं मालूम ।"

ऐसे में राम को सीता के पैरों की झांझर दिखी । उन्होंने फिर लक्ष्मण से पूछा, तुरंत लक्ष्मण ने वह नूपुर सीता का होने की बात कही ।

राम ने पूछा, "अन्य कोई आभूषण तुझे मालूम नहीं है । यह कैसे पता चला?"

लक्ष्मण ने कहा, "मैं भाभी की देह की तरफ कभी नहीं देखता था, इसीलिये देह-सम्बंधित आभूषणों के बारे में मुझे नहीं मालूम, परन्तु भाभी के चरणों में नित्य प्रणाम करता था, इसीलिये मुझे झांझर के बारे में जानकारी है ।"

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले ।
नुपूरे त्वभिजानामि, नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥

लक्ष्मण की ऐसी सदाचारिता का दूसरा प्रसंग यहाँ प्रस्तुत करता हूँ ।

वनवास के दौरान ईंधन के लिये जरूरी लकड़ियाँ आदि जो कुछ लाना हो, वह लक्ष्मण ही लाते । एक बार राम ने लक्ष्मण से कहा कि वे यह सामग्री ले आते हैं। लक्ष्मण ने राम से कहा, "मैं वन में आप पूज्यों (भाई-भाभी) की सेवा के लिये तो आया हूँ । आप मेरे फेरों पर दया न करें । मुझे जाने दें ।"

राम ने लक्ष्मण की नहीं सुनी और स्वयं गए ।

इस तरफ सीता कुटीर के बाहर बैठे लक्ष्मण की गोद में सिर रख कर सो गई। राम ने वहाँ आकर यह दृश्य देखा, तो चौंक गए । लक्ष्मण पर संदेह भी हुआ । सीता वास्तव में मृत्युलोक की अप्सरा थी । उसके स्पर्श से कौन चलायमान नहीं होता ?

राम ने तुरंत तोते का रूप लिया । वृक्ष पर जाकर तोता बोलने लगा, "पुष्प देख कर, फल देख कर, सुंदर नारी का यौवन देख कर किसका मन चलित नहीं होगा ?"

पुष्पं दृष्ट्वा, फलं दृष्ट्वा योषिद् यौवनां ।
त्रीण्येतानि दृष्ट्वैव कस्य नो चलते मनः ।।

www.yugpradhan.com

यह कौन बोल रहा है ? लक्ष्मण को कुछ देर तो पता नहीं चला । फिर उसे खयाल आ गया कि तोता बोल रहा है ।

लक्ष्मण ने जवाब दिया, "जिसके पिता पवित्र हो, जिसकी माता पतिव्रता हो, उसे ये तीन वस्तुएँ देख कर विकार नहीं जागता ।"

पिता यस्य शुचीर्भूतः, माता वस्य पतिव्रता ।
त्रीण्यंतानि दृष्ट्वैव, तस्य नो चलते मनः ।।

अभी भी राम को संतोष नहीं हुआ । तोते के रूप में उन्होंने फिर कहा, "तपते अंगारे जैसी नारी होती है और पुरुष घी के गट्ठे की तरह होता है । दोनों एकत्र होने लगे, तो घी (पुरुष का मन) पिघल ही जाता है । इसमें भी यदि परस्त्री हो और गोद में सोती हो, तो फिर पुरुष का मन चलित हुए बिना रह ही नहीं सकता ।"

तप्ताङ्गारसमा नारी, धृतकुम्भसमः पुमान् ।
जानुस्थिता परस्त्री च कस्य नो चलते मनः ।।

लक्ष्मण ने तोते को जवाब दिया, "मदोन्मत्त हाथी की तरह मन चारों ओर

दौड़ता हो, इस बात से मैं भी सहमत हूँ, परन्तु ज्ञानरूपी अंकुश यदि प्राप्त हो जाए, तो मनरूपी हाथी को काबू में रहना ही पड़ता है ।"

मनो धावति सर्वत्र मदोन्मत्तगजेन्द्रवत् ।

ज्ञानाङ्कुशे समुत्पन्ने तस्य न चलते मनः ।।

लक्ष्मण के इस जवाब से तोता रूपी राम खूब प्रसन्न हुए । वे आश्वस्त हो गए कि ज्ञानयोगी और पवित्र माता-पिता की संतान भाई लक्ष्मण का मन विकारी नहीं ही हो सकता ।

राम प्रकट होकर लक्ष्मण के गले लग गए ।

कैसा यह आर्यदेश ! ! जहाँ परनारी का दर्शन भी नहीं किया जाता । इसीलिये मगधपति श्रेणिक को शालिभद्र की हवेली की छठी मंजिल नहीं जाने दिया गया था, क्योंकि वहाँ शालि की पत्नियाँ रहती थीं ।

वल्लराज युवराज को परनारी दर्शन होते ही विकार जागृत हुआ । तुरंत उसने आत्महत्या कर ली । पंडित त्रिलोकनाथ की आकाश - उड्डयनशक्ति शाहजादी की ओर एक ही क्षण के विकारी दर्शन से खत्म हो गई थी । मुस्लिम राजा को पद्मिनी का साक्षात दर्शन न करा कर उसके पति भीमदेव ने दर्पण से कराया था । अकबर को रिझाने वाली ताना-रीरी ने आत्महत्या की थी ।

www.yugpradhan.com

रावण-मंदोदरी संवाद

रावण ने सीता को लंका लेकर जाकर देवरमण उद्यान में अशोक वृक्ष के नीचे रखा । रोज रावण देहसुख की प्रार्थना करता रहा । उसने कामक्रीडा के लिए विशेष रूप से तैयार किए गए उद्यान दिखाए । उसने मंदोदरी को भेज कर सीता को कहलवाया, "तू लंकापति की पत्नी बन । तेरा पति वन में भटकता है; छलिया वस्त्र पहनता है, खाने के ठिकाने नहीं हैं । यह लंकापति तो सोने की लंका का मालिक है । उसका पुण्य सभी तरह से जबर्दस्त है । मेरे पति ने युवावस्था में परस्त्री की अनिच्छा से बलात्कार नहीं करने की प्रतिज्ञा की है । अतः स्वेच्छा से सहमति दे, तो ही उसका काम होगा । नहीं, तो वह तेरे विरह में तड़प कर मर जाएगा ।"

सीता ने मंदोदरी को कटु शब्दों से धिक्कार दिया । मंदोदरी को आघात लगा। उसके अंतःकरण में बाढ़ आ गई । रावण उसके पास आया ।

मंदोदरी अत्यन्त व्यथित थी । जैसे सीता अयोध्या की महासती थी, वैसे ही मंदोदरी लंका की महासती थी । एक महासती को दूसरी महासती को परपुरुष गमन की बात समझाने के लिये भेजा जाए, यह कितना असह्य है ! मंदोदरी सिसक-सिसक कर रो रही थी ।

कुछ स्वस्थ होकर मंदोदरी ने रावण से पूछा, "सीता में मुझसे अधिक उत्कृष्ट क्या दिखता है ? क्या वह मुझसे भी सुंदर है ? मुझे इन दो बातों का जवाब दीजिए।"

रावण ने कुछ देर मौन रहने के बाद कहा, "तेरे सवाल के जवाब सुनने से पहले, तू मेरे दो सवालों के जवाब दे । पहला सवाल यह है कि इस लंकापति से अधिक समृद्ध राजा तूझे कोई दिखता है ? दूसरा सवाल यह कि लंकापति जैसी सत्ता किसी और राजा के पास सुनी है ?"

दोनों सवालों के नकार में उत्तर देते हुए मंदोदरी बोली, "सत्ता व समृद्धि में आपसे बढ़ कर कोई नहीं हैं ।"

www.vasupradhan.com

"बस... सीता को नहीं छोड़ने का यही कारण है मंदोदरी ! जरा विस्तार से सुन। इस सीता के जरिये मैं बर्बाद होना चाहता हूँ और जगत के बड़े-वयोवृद्धों को एक बोध देना चाहता हूँ कि आप कभी किसी बात की हठ नहीं पकड़ना । अन्यथा राजा रावण जैसे आपके हाल होंगे । दूसरा बोध मैं युवा वर्ग को देना चाहता हूँ कि आप कभी परस्त्री पर कुदृष्टि मत डालना, अन्यथा राजा रावण की तरह रण में कुचले जाओगे ।"

इतना कहते हुए रावण की आँखों से आँसू बह निकले ।

रावण अपने अकार्य के लिये मन ही मन पश्चाताप कर रहा था । इस प्रसंग से यह सिद्ध होता है ।

रावण का राम में रूपपरावर्तन

सीता किसी तरह वश में नहीं आ रही थी । रावण की वासना साढ़े तीन करोड़ रोम में सुलग चुकी थी । यदि उसकी प्रतिज्ञा नहीं होती, तो वह निश्चित ही बलात्कार कर डालता । हाँ, उसने बलात्कार करने की धमकी दी थी, परन्तु वह धमकी ही रही थी ।

एक बार कुम्भकर्ण ने मध्यरात्रि में करवट बदलते रावण को देखा । आज पहली बार कुम्भकर्ण को पता चला कि बड़े भाई ने आपदा को आमंत्रण दिया है । सारी हकीकत रावण ने सुनाई, तो कुंभकर्ण ने रूपपरावर्तिनी विद्या का उपयोग कर राम बन कर सीता के पास जाकर मनमानी करने की सीख दी । रावण क्रोध से आगबबूला हो उठा । उसने कुम्भकर्ण से कहा, "गधे ! ऐसी असह्य स्थिति में क्या मैंने यह उपाय नहीं किया होगा ! परन्तु क्या करूँ ? विद्या द्वारा मैं राम बन कर दर्पण के सामने गया था । मैंने दर्पण में राम के दर्शन किए और उसी क्षण मेरी काम वासना खत्म हो गई । मैं कैसे सीता की तरफ कदम बढ़ाऊँ ?"

कर्तुश्चेतसि रामरूपममलं दूर्वादलश्यामलम् ।

तुच्छँ ब्रह्मपदं परं परवधूसङ्गप्रसङ्गः कुतः ।।

यह सुन कर कुंभकर्ण ने मन ही मन राम को वंदन किया ।

जहाँ राम तहाँ काम नहिं, जहाँ काम तहाँ नहिं राम । तुलसी ! दोनुँ ना रहे, राम काम इक ठाम ।

www.yugpradhan.com

सीता ने भी इष्टदेव-परमात्मा का नामस्मरण सतत जारी रखा, जिससे उसका विघ्न टल जाए । रावण ने एक रात तो सीता को बहुत सताया । सर्पों आदि को उसकी तरफ छोड़ दिया । विद्याशक्ति से विकराल प्राणियों को उसकी तरफ छोड़ दिया, परन्तु सीता सदैव ध्यानस्थ रहीं । जरा भी डिगी नहीं ।

यह सब जान कर विभीषण सीता के पास आया । परपुरुष को देख कर घबराई सीता को विभीषण ने अभय कर दिया । उसने कहा, "बहन ! तू मुझसे डरना नहीं। मैं रावण का भाई विभीषण हूँ । परनारी सहोदर हूँ । तेरा हाल मुझे विस्तार से सुना। मैं कोई रास्ता निकालने का यत्न करूँगा ।"

"परनारी सहोदर" शब्द सुनते ही सीता स्वस्थ हुई ।

इस जगत में नारियों को इस शब्द का श्रवण कोई बिरलै परपुरुष से ही सुनने को मिलते हैं ।

काठियावाड के एक गाँव में राणा नामक युवक नैष्ठिक ब्रह्मचारी था । उसका पतन करने के लिये उसका मित्र उसे वेश्यावाड़े में ले गया । राणा को खुद पर पूरा भरोसा था, अतः वह वहाँ जाने को राजी हो गया । दो सुन्दर वेश्याएँ पसंद की गई।

उनके सामने सौ-सौ के नोट फेंक कर उस मित्र ने उनसे कहा, "आप जितना जोर लगा सकती हैं, लगाओ, मेरे मित्र राणा का शील भंग कर दो । मेरे लिये यह टेक जीवन-मरण बन गई है ।"

सौ के दो नोट देख कर दोनों वेश्याएँ कामुक भाव-भंगिमाएँ करते आगे बढ़ीं।

उसी समय राणा ने उनसे कहा, "मेरी प्यारी बहनों ! मैं चाहता हूँ कि तुम मुझे अपना भाई स्वीकारो ।"

और... वेश्याएँ पीछे हट गईं । इसके बाद मित्र ने सौ के चार नोट फेंके । वेश्याओं ने कहा, "हम कुछ नहीं करना चाहती हैं । रुपए तो हमें सदा मिलेंगे, परन्तु हमें अपनी बहन बताने वाला भाई तो जीवन में पहली ही बार मिला है ।"

मित्र विफल रहा । कसौटी से पार पाने के लिये राणा की प्रसन्नता की सीमा नहीं रही ।

सीता ने सारी बातें विभीषण से कीं । बड़े भाई रावण पर उसे बड़ा तिरस्कार हुआ।

विभीषण रावण के पास उसे समझाने गया, परन्तु रावण तो क्रोधवश उसे गालियाँ देने लगा । विभीषण ने ज्ञानी का वचन याद कराया । राम की पत्नी सीता के कारण होने वाले कुलक्षय की भी याद दिलाई, परन्तु रावण के क्रोध की आग में सभी हितवचन जल कर खाक हो गए ।

www.yugpradhan.com

हनुमान का लंकागमन

सीता किसे समझें ?

इधर राम ने अपने नए भक्त हनुमान को सीता का संदेश भेजने को तैयार किया। राम ने हनुमान से कहा कि पहले वह विभीषण के पास जाए, जो लंका के सज्जन व्यक्ति के रूप में प्रसिद्ध था । यदि उससे सीता मुक्त हो जाए, तो अच्छा, नहीं तो सीता के पास जाए । उसे राम-मुद्रिका दे, जिसके बदले में सीता का चूडामणि ले । सीता से कहे कि राम बहुत दुःखी हैं । चिंता न करें । रावण के साथ युद्ध के लिये और उसे छुड़ाने के लिए बड़ी सेना लेकर तुरंत आते हैं ।

अजैन रामायण में प्रसंग आता है कि हनुमान ने उस समय राम से पूछा, "मैं सीता किसे समझूँ ।"

राम ने सीता के मुँह पर तिल, मस्सा आदि निशानियाँ बताईं । हनुमान ने तुरंत

कहा, "यह काम मुझसे नहीं होगा; क्योंकि मैं परस्त्री की तरफ देखता नहीं हूँ ।"

यह सुन कर राम के लिये हनुमान अत्यन्त आदरणीय हो गए । राम ने दूसरी निशानी दी कि उस उद्यान में बैठी स्त्री के चारों ओर झरने, शिला, वृक्षों आदि से 'राम... राम... राम... ' ध्वनि कानों में पड़े, उस स्त्री को सीता समझें ।

यह निशानी हनुमान ने स्वीकार कर ली ।

हनुमान लंका गए । पहले भिषण से मिले । सारा वृतांत सुनाया । सीता को मुक्त नहीं किए जाने पर भयंकर परिणाम की चेतावनी दी । विभीषण को तो वैसे भी रावण के हठाग्रह से नफरत थी । वह अब और बढ़ गई ।

विभीषण से चर्चा के बाद हनुमान देवरमण उद्यान गए । सीता को पाकर उनकी गोद में रामदत्त अंगूठी डाली । सारे समाचार दिए । सीता निर्भीक बनीं । हनुमान ने बदले में चूडामिण मांगा, जो सीता ने दिया ।

रावण के भय से मुक्त होने के लिए जब तक राम के शुभ समाचार न मिलें, तब तक उपवास रखने की जो प्रतिज्ञा की थी, उसे इक्कीस दिन पूरे हो गए थे । आज शुभ समाचार मिलते ही उसने पारणा किया ।

www.yogpradhan.com

हनुमान ने कहा, "हे देवी ! मैं तो रामचंद्रजी का भक्त हूँ । अत: मेरी शक्ति अमाप है । यदि आप अनुमति दें, तो मेरे कंधे पर बैठा कर पल भर में ही मैं तुम्हें राम के पास पहुँचा दूँ । यह बेचारा रावण मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा ।"

यद्येवं देवि ! मे स्कन्धमारोह क्षणमात्रत: ।
रामेण योजयिष्यामि मन्यसे यदि जानकि ।।

सीता ने कहा, "तेरी निर्विकारिता में मुझे पूर्ण विश्वास है । परन्तु मेरा स्त्री के रूप में स्वधर्म तुझे स्पर्श करने से रोकता है । मैं अंतर से भले कितनी ही निर्विकार हूँ, परन्तु मुझे व्यवहार का पालन भी करना पड़ेगा । भले मुझे कितना ही लाभ होता हो, परन्तु उससे व्यवहार धर्म की मर्यादा का उल्लंघन मुझसे नहीं किया जा सकता ।"

भर्तु: भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर ! ।
नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम ! ।।

सीता की बात बिल्कुल सही थी । उस संन्यासी ने डोर पर अपनी लंगोट के साथ

धोती सुखाने रखी, तो उसके शील को लेकर कितना हंगामा खड़ा हो गया था न!

इस जीव ने पाँचों इन्द्रियों में स्पर्शनेन्द्रिय को अधिक महत्व दिया है । (निगोदादि में) अत: उसकी उत्तेजना भी अधिक होती है ।

(१) संभूतमुनि स्त्री केश की लट के स्पर्श में ही विकार से पूरे के पूरे सुलग गए थे।

(२) सार्थवाह के स्पर्श मात्र से सुकुमालिका (ससक, भसक की बहन) महाशीलवती साध्वी, जिसने पुरुषों से बचने के लिए भीषण अनशन किया था, जो मृतप्राय: बन गई थीं, वह अस्वस्थ बन गई थीं । अंत में सार्थ पत्नी के जीवन में प्रवेश किया था ।

(३) खानपान, देखने की सभी तैयारी स्थूलभद्र मुनि ने रूपकोशा को दिखा कर भी स्पर्श करने से इनकार कर दिया था । स्पर्श की घातक उत्तेजकता को उन्होंने जान लिया होगा ?

(४) विद्यासाधक दो भाइयों में मेघरथ ने सिरदर्द से कराह रही काणी-काली-कुबड़ी स्त्री का सिर दबाने के लिए स्पर्श किया, उसमें मेघरथ का निर्विकार भाव थर्रा गया । विद्यासाधना में पतन हो गया ।

www.yugpradhan.com

(५) ब्रह्मचारी कुमारगिरी ने विकार भाव जागृत होने पर चित्रलेखा राजकुमारी को पकड़ा, इतने में ही उसके शरीर की ब्रह्मचर्यजनित ऊर्जा खत्म हो गई । स्वबचाव के लिए राजकुमारी ने उसे थोड़ा सा धक्का दिया । इतने में कुमारगिरी लुढ़क गया।

(६) लड्डू की आसक्ति से बारम्बार नट के घर जाने वाले अषाढ़ाभूति मुनि को नटनियों के मादक स्पर्श ने पतित कर दिया !

हनुमान का देवरमण उद्यान में उपद्रव

सीता का चूडामणि लेकर राम के पास जाते-जाते हनुमान ने देवरमण उद्यान को खेदान-मेदान कर दिया । उसका प्रतिकार करने के लिए रावण का पुत्र अक्षकुमार आया, तो उसे मार डाला । बाद में दूसरा पुत्र इन्द्रजीत आया । उसे खत्म न करते हुए हनुमान ने जान-बूझ कर खुद को नागपाश में बंधवाना पसंद किया। उसे पकड़ कर राज्यसभा में रावण के सामने खड़ा किया गया । रावण को हनुमान ने खरी-खरी सुनाई । रावण क्रोधित हुआ । सैनिकों को उसका वध करने का आदेश दिया । हनुमान ने बल से नागपाश तोड़ दिया । आकाश में जोरदार छलांग लगा कर रावण के मुकुट पर लात मार कर उसे चूर-चूर कर दिया । वह चला गया । कोई

उसे पकड़ नहीं सका । लंका नगरी में तोड़फोड़ करते हुए समुद्र पार कर राम के पास आया । उसने सीता का चूड़ामणि दिया । हृदय के साथ आलिंगन कर और सारे समाचार प्राप्त कर राम को बहुत संतोष हुआ ।

विभीषण और रावण में कहासुनी

इधर सीता से मिलने के बाद विभीषण रावण के पास आए । पुनः एक बार मधुरता से ज्येष्ठ बंधु को सीता को छोड़ देने की बात समझाने का यत्न किया । उस समय रावणपुत्र इन्द्रजीत काका विभीषण पर बहुत क्रोधित हुआ । शत्रु से साँठगाँठ का आरोप लगाया । विभीषण ने इन्द्रजीत को कुलनाशक कहा । रावण ने तलवार निकाल ली । विभीषण निःशस्त्र था । राजमहल का खंभा खींच कर स्वरक्षा की तैयारी की । कुम्भकर्ण और इन्द्रजीत ने मध्यस्थता कर दोनों भाइयों को अलग कर दिया ।

रावण ने विभीषण को देशनिकाला दिया । तीस अक्षौहिणी अपनी सेना लेकर विभीषण राम के पक्ष में गया । लंका के श्रेष्ठ सज्जन को कौन नहीं स्वीकारेगा ? भारी सम्मान के साथ राम ने उसका स्वागत किया ।

www.yugpradhan.com

रावण और राम के बीच युद्ध शुरू हुआ । दिन बीतते गए । हजारों लाशें गिरने लगीं । महारथी धराशायी होने लगे ।

एक बार विभीषण और रावण आमने-सामने आ गए । दोनों के बीच उग्र कहासुनी हुई । राम को चिंता हुई कि उनके आश्रित बने विभीषण को रावण मार न डाले । उन्होंने लक्ष्मण को भेजा । रावण ने विभीषण को खत्म करने के लिए अमोघविजया शस्त्र तैयार कर लिया । उन्होंने जैसे ही यह शस्त्र छोड़ा, वहाँ पहुँचे लक्ष्मण को लगा । सीने पर शस्त्र का वार होते ही लक्ष्मण बेहोश हो गए । रावण इस खुशफहमी के साथ चला गया, "यदि लक्ष्मण मरेगा, तो उसके विरह के आघात से राम स्वतः ही प्राण त्याग देगा ।"

लक्ष्मण के मूर्छित होने का समाचार सुन राम बेहोश हो गए । "हा, लक्ष्मण ! हा, लक्ष्मण !" राम की सेना में शोक व्याप्त हो गया । हाहाकार मच गया । सीता भी मूर्छित हो गईं । बड़ी मुश्किल सेहोश में आईं ।

विशल्या जल का प्रभाव

लक्ष्मण के मूर्छित होने के बाद प्रतिचन्द्र नामक विद्याधर ने कहा, "यदि भरत

के मामा द्रोणमेघ की पुत्री विशल्या का स्नान जल लक्ष्मण पर छिड़का जाए, तो वह तुरंत होश में आ जाएगा । उसकी पूर्वभव की उग्र तपस्या से उसे ऐसी लब्धि प्राप्त हुई है ।"

राम ने हनुमान आदि को अयोध्या से भरत को लेकर कौतुकमंगल नगर में द्रोणमेघ राजा के पास जाने को कहा ।

उसी तरह अमल हुआ । विशल्या स्वयं विमान में बैठ कर युद्धभूमि पर स्नानजल के साथ आई ।

उसका करस्पर्श होते ही लक्ष्मण बैठ गया ।

कुमारिका विशल्या ने जिस परपुरुष का स्पर्श किया, उसने उसे ही पति के रूप में स्वीकार कर लिया । बाद में विवाह हुआ ।

विशल्या का स्नानजल राम के घायल सैनिकों पर छिड़कते ही वे सभी रूप से स्वस्थ बने । अतिरिक्त स्नानजल हनुमान धरती पर उड़ेल रहे थे । राम ने उन्हें रोकते हुए कहा, "यह जल शत्रुसैन्य की सहायता में भेजो । ऐसे फेंको मत ।"

शत्रु के प्रति भी राम में कैसी करुणा थी !

www.yugpradhan.com

विशल्या की आत्मा की पूर्वभवीय तपश्चर्या ने उसके मौजूदा भवन में यह प्रभाव पैदा किया था ।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव के विविध प्रभाव होते हैं ।

तारक तीर्थंकरदेवों की दिन के प्रक्षाजल के छिड़काव के प्रभाव से दो इन्द्रों का भयानक क्रोध पल भर में शमित हो जाता है । शुद्ध ब्रह्मचर्याधारी से ओढ़ी जाने वाली ठंडी की शॉल जिस किसी को भी ओढ़ाई जाती, उसका तप शॉल में आ जाता । चन्द्रकांत मणि के साथ आग में रखा हाथ जरा भी नहीं जलता है । दंडकारण्य क्षेत्र के प्रभाव से वहाँ प्रवेश करते ही लक्ष्मण को राम के प्रति तीव्र नफरत होने लगी थी । "यदि राम को सीता, तो मुझे उर्मिला क्यों नहीं ? अभी अयोध्या जाता हूँ और मेरी उर्मिला को साथ ले आता हूँ ।" जब तक वनक्षेत्र पूरा नहीं हुआ, तब तक लक्ष्मण ऐसी ही ग्लानि में रत् रहा ।

जहाँ साँप ने फन फैला कर अंगार रूपी रेत के गड्ढे में फँसे मेंढक के लिए छाँव कर दी थी, उस दृश्य को देख कर अहिंसक प्रभावक उस क्षेत्र में आद्य शंकराचार्य ने श्रृंगेरी मठ की स्थापना की थी ।

वेश्या के बंगले को बोर्डिंग के रूप में खरीद कर उसमें छात्रों का स्थानांतरण होने

से सभी छात्र सजातिय मैथुन की आदत का शिकार बन गए थे ।

युगलिका का काल ही ऐसा होता है कि जहाँ ऐसे पाप कोई कर ही नहीं सकता कि वे नर्क में जाएँ । काल प्रभाव से तमाम सरल परिणति के, इसीलिए सभी देवगति में ।

३०० वर्ष पुराना नीम कब सूखेगा ? ऐसा सतत भाव रखने पर वह नीम ३० दिन में ही सूख गया था ।

फाँसी की सजा से 'हाय... हाय... ' करती जेल की महिला की बनाई खिचड़ी खा कर सभी को दस्त-उल्टी हो गई थी ।

एक का क्रोध भाव सोलह व्यक्तियों के दिमाग को उद्विग्न कर सकता है । यह महर्षि महेश की शोध है ।

अहिंसा का दीर्घ जीवन जी चुके किसी मुनि की आत्मा बिल्ली या साँप के भव को धारण करे, तो क्रमशः हजारों चूहे या मेंढक खाने लग जाए ।

यह है भव का प्रभाव ।

जैसा भाव, वैसा भव; जैसा भव वैसा द्रव्यादित्रण ।

www.yugpradhan.com

सीता को रावण की धमकी

इस तरफ लक्ष्मण सजीवन होते ही रावण अकुलाया । वह तुरंत सीता के पास गया । बहुत क्रोध में उसने कहा, "कल युद्ध में तेरे पति और देवर को जान से मार कर तुझ पर बलात्कार किए बगैर नहीं रहूँगा ।"

रावण के इन वचनों से घबराई सीताबेहोश होकर निढाल हो गई । जागृत होने के बाद उसने अभिग्रह लिया, "यदि राम-लक्ष्मण की मृत्यु हो, तो उसी क्षण से मेरा आजीवन उपवास व्रत रहे ।"

यह जान कर रावण ने सोचा, "यह स्त्री अब मेरे हाथ में तो आने वाली नहीं है । इतना है कि मैं राम को जीत कर ही उसे कैद कर सीता जीवित सौंपूँ, जिससे मेरा सम्मान बना रहे । आज ही सौंप देने से मेरी हार मानी जाएगी ।"

कन्दर्प से अधिक घातक दर्प

रावण का कन्दर्प शांत हुआ, वहीं दर्प सामने आया । कन्दर्प विजेता स्थूलभद्र विद्यावर्गस्त्री दर्प के समक्ष हार गए ।

लक्ष्मण का कन्दर्प शांत हुआ, वहीं दर्प ने हमला किया ।

नंदिषेण की भी कामलता के यहाँ यही हालत हुई । सताता कन्दर्प उस समय नहीं था, लेकिन दर्प ने पतन कर डाला ।

अतः सभी दोषों का सम्राट अहंकार होना चाहिए ।

दोषों को तो गुण मारते हैं, परन्तु यदि गुण का ही अहंकार उत्पन्न हो, तो वह गुण मर जाते हैं और दोष जीवित हो जाते हैं ।

दादू कवि ने कहा कि यदि अहंकार (आत्मा) शांत पड़ जाए, तो तीन बड़े लाभ मिलेः (१) हरि मिले (भक्ति) (अहं रे अहं ! तू जा ने मरी, पछी मारा बाकी रहे ते हरि) (२) तन-मन की वासनाएँ खत्म हो जाएँ । (शुद्धि) (३) सर्व जीवों के प्रति बैरभाव का निर्मूलन हो । (मैत्री)

अप्पा मिटै, हरि को मिलै
तन, मन तजे विकार
निर्वैरी सब जीव तो
दादू ! यह मत (धर्म) सार ।

दूसरे दिन सुबह रावण युद्धभूमि पर गया ।

www.yugpradhan.com

रावण का वध

अंत में रावण (प्रतिवासुदेव) लक्ष्मण (वासुदेव) आमने-सामने आ गए । भीषण युद्ध हुआ । अंत में रावण ने सुदर्शन चक्र छोड़ा । लक्ष्मण ने अपनी उंगली में उसे ले लिया और रावण पर छोड़ा । तीव्र वेग से आ रहे सुदर्शन चक्र ने रावण का धड़ सिर से अलग कर दिया । तुरंत युद्ध समाप्त हो गया ।

विभीषण को आघात लगा । आत्महत्या करने के लिए कटारी निकाली । राम ने तुरंत उसका हाथ पकड़ लिया ।

रावण के शव पर मंदोदरी, इन्द्रजीत आदि आ गए । राम आदि भी दौड़े ।

राम का सभी को आश्वासन

राम ने सभी को आश्वासन दिया । उन्होंने कहा, "रावण क्षत्रिय की भाँति रण में वीरगति को प्राप्त हुआ है । उसने अपने शौर्य की पराकाष्ठ दिखा कर मौत को गले लगाया है । ऐसे वीरपुरुष की मृत्यु पर शोक नहीं करना चाहिए ।" कैसे महान् राम ! शत्रु को भी चाहते हैं, (वे जोगीदास खुमाण दुश्मन नरेश की पुत्री के साथ नहीं गए थे)

इसके बाद मंदोदरी और उसके दो पुत्रों इन्द्रजीत, मेघवाहन तथा रावण के भाई कुंभकर्ण आदि ने दीक्षा ली । आत्मकल्याण की राह ली । विभीषण लंकापित बना। छह वर्ष तक उसने राम का लंका में आतिथ्य किया ।

राम अयोध्या की ओर

जब राम को पता चला कि अयोध्या में माताएँ आदि स्वजन लक्ष्मण के घायल होने के समाचार के बाद काफी उद्विग्न रहते हैं । युद्ध में क्या हुआ ? यह समाचार भी नहीं पहुँचे हैं । इसीलिए विभीषण के छह वर्ष के आतिथ्य के बाद राम ने अयोध्या के लिए विदा मांगी । सोलह दिन में विभीषण ने अयोध्या को अपूर्व रूप से सुशोभित किया । बाद में अति भव्य रूप से रामादि का सीता आदि समेत अयोध्या में प्रवेश हुआ ।

* * *

www.yugpradhan.com

(२) अंजनासुंदरी

आर्यावर्त की भौतिक और आध्यात्मिक सम्पत्ति का मूल क्रमशः गाय-चरखा और मुनि है, परन्तु इन मूलों का भी मूल मात्र स्त्री है । स्त्री के कई स्वरूप हैं । वह पुत्री है, बहन है, पत्नी है, माता है, दादी है, भाभी आदि है । इन सभी स्वरूपों में 'माता' सर्वोत्कृष्ट मूल है ।

आर्यावर्त की स्त्री के सामने 'पुरुष' तो बहुत बौना दिखता है ।

स्त्री का माता के रूप में योगदान सर्वोत्कृष्ट है । स्त्री गाय को पोषती है, चरखा कातती है, मुनियों के आशीर्वाद पाती है, पति का स्नेह पाती है, अतिथियों का मान पाती है, बुजुर्गों की सीख पाती है... इन सबके सामने माता के रूप में स्त्री समग्र देश की शान बढ़ाते; और धर्मक्षेत्र का तेज बढ़ाते वीर-संतानों का योगदान करती है। जिस देश की नारी रक्तशुद्ध है, उस देश को विश्व की कोई भी प्रजा हरा नहीं सकती; झुका नहीं सकती, क्योंकि इन शेरनियों ने लाखों शेर संतानों को पैदा किया हो । शेर का दूध पीने वाले या तो शूर हों या संत ।

www.yugpradhan.com

शूर देश में समृद्धि लाए ।

संत प्रजा में गुणों की भरमार कर दे ।

इसीलिए नारी को घर में रखा जाता है । घर काम में डुबोया जाता है । घर की उसे रानी बनाया जाता है । नारी को बाहर निकालने का मतलब है उसके अंग पर शोभने वाले आभूषण भी बाहर सड़क पर लाना, उसे लुटाना, उसे नोचा जाना । पुरुष जाति ने नारी स्वतंत्रता का अभियान उठा कर अपनी हवस को ही पोषित किया है ।

नारी नोची गई है ।

नारी घर की रानी नहीं रही है । अब वह बाजारू माल बन गई है । बीच बाजार में लुटी है ।

इसीलिये वीरों या संतों का अकाल पड़ा है ।

जो पुरुष देखने को मिलते हैं, वे बहुधा वर्णसंकर हैं, न उनमें मर्दानगी है, न ही वे गुणी हैं ।

नारी को जल्द से जल्द घर में लाओ ।

घरकाम, स्वजन रखरखाव, गुणोत्पादन उसके कार्य हैं । रसोई उसका मुख्य क्षेत्र है । सवाल उठता है कि रसोई घर से रसोई के जरिए वह क्या हासिल नहीं करती ?

नारी को पुनः घर में लाओ ।

हिटलर ने यह काम किया था । यह सही था ।

कई माताओं के मैं नाम दे सकता हूँ, जिन्होंने अपनी संतानों को संस्कारित किया, पतियों को दिल से चाहा था, उनके जीवन-बागों को गुणों के फूलों से सुगंधित किया था ।

हाँ... जो टेढ़े रास्ते पर गए; उन माता-पिताओं ने मार भी खाई ।

सुनो...

सम्प्रति की माता ने दिग्विजय कर आए सम्प्रति का उत्साह के साथ स्वागत न कर उसे कैसा धर्मात्मा बनाया था ! आर्यरक्षित, फल्गुरक्षित, पति आदि सभी को संयम के मार्ग पर एक महान माता ने कैसी युक्ति से मोड़ दिया था !

www.yugpradhan.com

मयणा को उसकी माता सुरसुंदरी ने कैसे संस्कार दिए थे ? कोढ़ग्रस्त पुरुष को उसकी शादी हुई, तो बिना किसी हिचकिचाहट के उसका हाथ पकड़ कर उसे वर के रूप में स्वीकार कर लिया था ।

पाहिनी ने जैनशासन को कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य की कैसी भेंट दी थी !

देवकी ने पुत्र गजसुकुमाल को दीक्षा देने से पहले वचन ले लिया था कि उसे भवचक्र की अंतिम माता बनाए । पुत्र ने भी वचन का पालन कर दिखाया था । अपनी संतानों के संरक्षण के मामले में आड़े नहीं आने की शर्त पर ही गंगा ने शांतनु के साथ विवाह किया था ।

मदालसा ने तो प्रत्येक संतान को संन्यास के मार्ग पर मोड़ने के मामले में विघ्न नहीं डालने की शर्त पर एक पुरुष के साथ विवाह किया था ।

अनसुया आदि पालने में झूलते बच्चे के जीव को उसके सच्चिदानंद, आनंदधन, शुद्धता, बुद्धता की बातें करतीं ।

पिता चणक ने पुत्र चाणक्य को राजा बनने से रोका था । क्षीरकदम्बक पाठक पुत्र का नारकगामित्व पता चलते ही संसार से विरक्त हो गए थे ।

अपने शिशु पर खराब संस्कार पड़ने की कल्पना से ही काँप उठी चाँपराज वाले की माँ ने जीभ को दांतों तले कुचल कर मौत को गले लगा लिया था ।

पुत्र गोपीचंद के अपनी रानियों के साथ विलासी जीवन को देख कर माँ रोज चुपचाप रो लेती थी

आँख पर पट्टी बांध कर वात्सल्य नहीं दे पाई गांधारी के सौ पुत्र दुष्ट हुए थे।

पुत्र हरिलाल पर धिक्कार की आग बरसाने वाले गांधीजी हरिलाल के साथ अन्याय कर बैठे थे ।

कामुक पिता ययाति काम की तीव्रता से पुत्रों के साथ इस बारे में हात करते ही निर्लज्ज बना था ।

अंजना वास्तव में अति महान् शीलवती स्त्री थी । दुःख की आग में वह कुन्दन शुद्ध स्वर्ण बन कर बाहर आयी । उसने जगत को महान हनुमान की भेंट दी ।

चलिए, हम उसका पात्रालेखन करें ।

अंजना की गुफा में राम आदि का आगमन

www.yugpradhan.com

कहा जाता है कि अपनी पिछली आयु में अंजनासुंदरी वन में रह कर तपश्चर्या करती थीं । एक बार वहाँ से राघवेन्द्र (रामचन्द्रजी) विमान में जा रहे थे । विमान में हनुमान, वानराधिपति सुग्रीव, नल, भरत, लक्ष्मण भी थे ।

अपनी माता की गुफा के निकटस्थ क्षेत्र से विमान जाने लगा, तो हनुमान ने राघवेन्द्र से करबद्ध आग्रह किया, 'आप यहाँ तक पधार गए हैं, तो निकट ही मेरी माँ तप कर रही हैं । आप नीचे पधार कर उन्हें दर्शन नहीं देंगे ?'

हनुमान की भावना का स्वागत किया गया । विमान उस गुफा की तरफ मुड़ा। गुफा के पास उतरा । हनुमान की पूरी टीम उस गुफा के पास आई । सबसे आगे भागते हनुमान ने कहा, 'ओ माताजी ! साक्षात् राघवेन्द्र पधारे हैं । चलो... बाहर... जल्दी चलो... दर्शन करो...'

तपस्विनी अंजनासुंदरी खड़ी हुई । अतिथि का सत्कार करने गुफा के बाहर आई। भारी गंभीरता से बैठीं, उनके मुख पर आनंद नहीं दिखाई दे रहा था । उन्हें कुछ खटकता लगता है । राघवेन्द्र को देखते ही खड़े होकर तपस्विनी ने भावपूर्ण नमस्कार किया । फिर अपने स्थान पर जा बैठीं ।

लक्ष्मण की ओर अंगुलिनिर्देश क०र हनुमान ने कहा, 'माताजी ! राघवेनद्र के लघुबंधु लक्ष्मणजी हैं ।'

सिर पर मनों बोझ पड़ा हो, इस प्रकार बड़ी मुश्किल से तपस्विनी ने सिर नीचा कर लिया ।

हनुमान के मन में प्रश्न उत्पन्न हुआ कि आज माताजी का बर्ताव ऐसा क्यों है? उत्साह क्यों नहीं दिखता ? राघवेन्द्र स्वयं पधारे हैं, फिर भी मुख पर हर्ष की लहर क्यों नहीं हैं ? होगा...

'माताजी ! ये भरतजी ! अनासक्त योगी जैसा जीवन जीने वाले राघवेन्द्र के दूसरे लघुबंधु !', हनुमान ने कहा ।

'होंगे... ' तपस्विनी बोलीं । 'और माताजी... ये वानराधिपति सुग्रीव !'

'हाँ... होंगे...' मुँह मसोस कर अंजना ने कहा ।

'और ये... नल; जिन्होंने लंका विजय के समय समुद्र पर विराट सेतु बनाया था।'

www.yugpradhan.com

'तो होंगे...' फिर मुंह टेढ़ा कर, बिल्कुल उदासीन बन कर तपस्विनी ने जवाब दिया ।

लक्ष्मण का अंजना से प्रश्न

अब तो हद हो गई । लक्ष्मणजी से रहा नहीं गया । पूरी रामायण में लक्ष्मणजी एक ऐसा पात्र हैं, जो अन्याय सहन नहीं कर सकते । अन्याय देखते ही वे भड़क जाते हैं ।

लक्ष्मणजी तुरंत खड़े होकर तपस्विनी के पास गए । हाथ जोड़ कर कहा, 'क्षमा करें, महासतीजी ! आपका यह उदासीन बर्ताव मुझे उचित नहीं लगता, आप मुख टेढ़ा कर क्यों देखती हैं ? आपके पुत्र हनुमान के अनुग्रह से ही हम यहाँ आए हैं। फिर भी जिस तरह के अतिथि सत्कार की हमें अपेक्षा थी, उससे मेरे मन को थोड़ा खेद हुआ है ।'

अंजनासुंदरी का मुँहतोड़ जवाब

अब अंजनासुंदरी ने सिर उठाया । लक्ष्मण के सामने दृष्टि स्थिर कर आँखों की

भौहें जरा ऊँची कर कुछ कठोर भाषा में बोलीं, 'लक्ष्मणजी ! मैं क्यों बेचैन हूँ, आप सुनना चाहते हैं ?' तो सुनो, परंतु आप बुरा नहीं लगाएंगे । बुरा तो मुझे बहुत लगा है और इसीलिए मेरे व्यवहार में आपको खामी दिखे, यह स्वाभाविक है । वैसे आप जैसे महान पुरुष यहाँ पधारे, इससे मेरी कुटिया पावन हो गई ! मेरा जन्म भी पावन हो गया ! परन्तु मेरी उदासीनता का कारण... मेरे पुत्र हनुमान की निर्माल्यता है ।

लक्ष्मणजी कहते हैं, 'क्या बात करती हैं माताजी ! आपका पुत्र निर्माल्य ? अरे! रामचन्द्रजी को रावण के साथ युद्ध में विजय दिलाने में मुख्य भूमिका आपके पुत्र हनुमान की ही है ! उन्होंने कैसा पराक्रम किया है ? और उन्हें निर्माल्य कहती हैं?'

अंजना आवेश में आकर कहती हैं... 'सीता जैसी सती को लंका के राजा रावण ने अपहृत किया । उसे मुक्त कराने के लिए राघवेन्द्र को ठेठ लंका तक जाना पड़ा? अरे... ! मेरा हनुमान यदि वास्तव में पराक्रमी होता, तो वह अकेले ही लंका जाकर उसे छुड़ा कर नहीं ले आता ? कैसा निर्माल्य है वह !'

'सेवक जब ऐसा निर्माल्य था, तभी तो उसके स्वामी को रक्त का पानी करना पड़ा न ! लक्ष्मणजी ! इस हनुमान की कायरता ने मेरी कोख लजवाई है । अब यह डेढ़शाना बन कर यहाँ आकर आपकी पहचान देता है, इसमें क्या खुशी होगी? मैंने उसे क्या संस्कार दिए थे ? कैसा दूध पिलाया था ?'

www.yaspradhan.com

'ऐसो दूध मैं तेरे को पिलायो'

इतना कहते ही अंजनासुंदरी के हृदय में पुत्र-वात्सल्य की लहरें उठने लगीं । होठ से कठोर फिर भी हृदय से कोमल अंजना के स्तन से दूध की धार छूटी । और सामने पड़ी शिला से टकराई । शिला के दो टुकड़े हो गए !

आँख की भौंहें उठा कर तपस्विनी ने हनुमान से कहा, 'ऐसो दूध मैं तेरे को पिलायो, लेकिन हनुमान ! तूने मेरी कूख लजायो !'

आज ऐसी माताएँ मिलेंगी ?

आज ऐसी माताओं की अपेक्षा रखी जा सकती है ? अश्लील गीतों से सराबोर सिनेमाओं को टीवी पर देखने के लिए अपने पुत्रों और पुत्रवधुओं से भी आगे आकर सोफे पर बैठ जाने वाली माता से ऐसे पराक्रमी पुत्र की अपेक्षा कैसे की जा सकती है ?

वर्तमान काल के जीवन में प्रवेश कर चुकी अंग्रेजी पद्धतियों ने आर्यावर्त की दुर्दशा कर दी है । कैस इन पद्धतियों को समर्पित माताएँ उत्तम संतानों को जन्म दें या भविष्य में उत्तम साधुरत्न या सज्जन बन सकेंगे ?

महासती अंजना का जीवनप्रसंग

वैताढ्यगिरी पर स्थित आदित्यपुर-नगर में प्रह्लाद राजा राज्य करता था । उसकी केतुमती नामक पत्नी थी और पवनंजय नामक पराक्रमी पुत्र था ।

दंती पर्वत पर महेन्द्रपुरनगर में महेन्द्र नामक विद्याधर राजवी था । उसकी हृदयसुंदरी नामक पत्नी थी और अंजना नामक अत्यन्त रूप-लावण्यवती पुत्री थी।

विद्याधर यानी विद्या को धारण करने वाला । विविध विद्याओं के धारक मानव विद्याधर कहलाते । महेन्द्र ऐसे ही विद्याधरों का राजा था ।

अंजना के लिए योग्य वर की तलाश करते मंत्रियों ने अनेक राजकुमारों के चित्र लाकर राजा महेन्द्र को दिखाए । राजा हिरण्याभ के पुत्र विद्युत्प्रभ और राजा प्रह्लाद के पुत्र पवनंजय-दोनों राजकुमारों में राजा महेन्द्र को विद्युत्प्रभ अपनी पुत्री के लिए योग्य लगा ।

www.yugpradhan.com

दोनों की कुलीनता और रूपादि समान होने से राजा महेन्द्र ने मंत्री से पूछा, 'इनमें से कौन-सा वर अंजना के लिए चुना जाए ?'

मंत्रीश्वर ने जवाब दिया, 'राजन् ! विद्युत्प्रभ की आयु अट्ठारह वर्ष ही है, फिर भी इसी भव में मोक्ष में जाने वाला है, जबकि प्रह्लाद का पुत्र पवनंजय दीर्घायुषी है, अतः हमारी अंजना के लिए पवनंजय अधिक योग्य है ।'

पतिविरह से अतिव्यथित अंजना

अंजना के महल के अंदर उसका पति कभी पैर नहीं रखता । इस कारण अंजना अत्यन्त दुःखी है । चंद्ररहित रात्रि जैसी अंजना अपनी आंख से बहते अश्रुजल के कारण काले मुख वानी बन गई है । शुरूआत में तो वह सोचती होगी कि आर्यपुत्र को राज्य के काफी काम होंगे, इसीलिए आ नहीं पाते होंगे, परन्तु जब उसे पति द्वारा उसका त्याग करने की जानकारी हुई होगी और उस त्याग का कोई भी कारण नहीं बताया गया होगा, तो उसकी व्यथा का कोई ठिकाना नहीं रहा होगा ।

रो-रो कर रात्रि गुजारने लगी । पलंग में पड़े-पड़े दोनों पैर पछाड़ने लगी ।

मानसिक संतुलन बारम्बार खोने लगी ।

दु:ख पापकर्म से ही आते हैं

अंजना यदि कर्म के तत्वज्ञान को अच्छी तरह समझ सकी होती, तो इतना गहरा आघात उसे नहीं लगता । जब-जब जीवन में आघात और व्यथाएँ आती हैं, तब यह याद करना चाहिए कि 'मेरे द्वारा बांधे गए पापकर्म जब उदित होंगे, तो दु:ख तो आएंगे ही । मेरे ही पापकर्म के कारण दु:ख आए; इसमें न ईश्वर की प्रेरणा है, न ही किसी अन्य व्यक्ति का दोष ।' प्रत्येक बात में ईश्वर की इच्छा को बीच में न लाएँ । महादयालु ईश्वर किसी को दु:खी करने की इच्छा क्यों करेगा ?

एक व्यक्ति जहर खाकर मर गया । उस समय ऐसा कहना कि ईश्वर की ही इच्छा थी, उचित नहीं होगा । कोई भी व्यक्ति अति विषपान करे, तो मरेगा ही । जहर का यही स्वभाव है !

इसी प्रकार पापकर्म का स्वभाव ही ऐसा है कि उसके उदय से दु:ख आएगा ही। पापकर्म टाइम बम जैसा है । टाइम बम उसका टाइम होते ही फूटता है । इसी प्रकार बांधा हुआ पापकर्म उसका समय आते ही फूटता है और जब वह फूटता है, तो दु:खादि भी देता है । इसमें ईश्वर को बीच में लाने की जरूरत नहीं रहती ।

www.vuppradam.com

जिएँ भलें अच्छे में अच्छा, परन्तु खराब की पूर्ण तैयारी के साथ

घर में बालक पैदा होते ही सभी खुश हो जाते हैं । पिता उसे चूमता है और बहनें खिलाती हैं । माता की खुशी नहीं समाती, परन्तु कोई जानता है कि यह बालक आठ वर्ष का होते ही मर जाएगा ? और यदि वास्तव में आठ वर्ष में वह मर जाए, तो ? कैसे आघात और प्रत्याघात जीवन में आएंगे ? ऐसे कई आघात में तो माता-पिता की मृत्यु भी हो जाती है । अत: मैंने पहले भी कहा था कि :

Live for the best but, be ready for the worst.

अच्छे में अच्छा जीवन जीने की आशा भले रखो, परन्तु खराब में खराब जीवन के स्वागत को भी तैयार रहो ।

आज का करोड़पति कल का रोडपति (भिखारी) भी हो जाता है । इस जगत में ऐसा भी हो सकता है ।

भूकम्प होते हैं, तब ऐसा ही होता है न ? बड़े-बड़े मकान धराशायी हो जाते हैं, महलों में बसने वाले सम्पन्न लोग रास्ते पर भटकते भिखारी बन जाते हैं। भारत-पाकिस्तान विभाजन के समय हजारों लोग बेहाल, बेघर और सम्पत्तिहीन बन ही गए थे न ? !

अंजना की दुःखद स्थिति

वसंता मीठे शब्दों से अंजना को सांत्वना देती है। उससे अंजना का कुछ दुःख कम होता है, परन्तु बारम्बार पति का स्मरण होते ही दुःख बढ़ जाता है। वह कुछ बोलती नहीं है, मानो हेमंत ऋतु की कोयल ! बोले नहीं, चाले नहीं।

बाईस वर्षों तक अंजना को दुःख सहन करना पड़ता है। वह रोती जाती है और दिन गुजारती है।

यह स्थिति तुम्हारी हो, तो क्या करो ? इसी तरह रोते रहो और दिन पूरे करो या जैसा जीवन बन गया है, उसके अनुकूल हो जाओ ? Adjustment of life, जीवन जैसा मिला हो, उसके अनुकूल होने की कला सीख लेनी चाहिए।

www.yugpradhan.com

तुम साधारण स्थिति के हो, तो उस पर भी नजर डालो, जो दिन के पाँच रुपए भी नहीं प्राप्त कर सकता। तुम्हें लगेगा कि मेरे पास तो बहुत है। मैं तो रोज पेट भरके खा भी सकता हूँ, जबिक यह बेचारा तो पेट भरने के लिए भी खाना जुटा नहीं सकता। तुम्हारे विचार से साधारण स्थिति का दुःख तुरंत चला जाएगा।

एक्सिडेंट में तुम्हारा पैर कट जाए, तो तुम दोनों पैर कटे हुए विकलांग व्यक्ति की तरफ देखो। तुम्हें एहसास होगा, 'मेरा तो एक पैर है भी। इस बेचारे के तो दोनों पैर नहीं हैं !' इस विचार से एक पैर कटने का दुःख हल्का हो जाएगा।

तुम मूक-बधिर स्कूल की तरफ नजर डालो। मध्यांतर से निकलते उन मूक-बधिर बच्चों को देखते ही अंतर में करुणा उभर आएगी। आँख में शायद आँसू भी छलक जाएंगे, परन्तु वे तो हँसते-खेलते चले जाते होंगे। मानो इशारे से कुछ बातें करते मालूम पड़ेंगे। मैंने ऐसे बच्चों को देखा है, तब मुझे भी ऐसा ही विचार आता है कि इन बच्चों ने अपने को इस स्थिति में कैसे एडजस्ट कर लिया है। एडजस्ट ऑफ लाइफ का नारा कितना जीवनसात् कर लिया है !

दुःखे दुःखाधिकं पश्य

जब जो परिस्थिति आए, उसके अनुकूल हो जाना पड़ता है । इसमें हम फेरबदल नहीं कर सकते हैं । रो-रो कर सदा उदास बन कर जीवन जीने का कोई मतलब नहीं है । जन्म से अंधे लोग भी देखो कैसे ब्रेल लिपि में लिख-पढ़ सकते हैं ? ट्यूमर के दर्द से पीड़ित व्यक्तियों की तरफ नजर तो करो । कितने भयंकर त्रास से लोग जीवन गुजारते हैं ! इन सबको देख कर तुम्हें अपना दुःख दुःख नहीं लगेगा ।

वह वाक्य याद करो : 'दुःखे दुःखाधिकं पश्य' 'तू दुःखी है ? तो अपने से भी भयंकर दुःखी को तू देख ।'

क्या तुम्हारे पैर बहुत दुखते हैं ? तो जिसके पैर में एक्सिडेंट के बाद सरिया डाला गया है और अस्पताल के एक रूम में पड़े पलंग पर चौबीस घण्टे उसे पैर लटकाए सोना पड़ता है, उस मरीज को देखो ।

क्या तुम्हें सिर में भयंकर दर्द है ? तो उस समय कैंसर और ट्यूमर वाले मरीजों को याद करो । कैसा भयंकर दुःख वे भोग रहे हैं ? जैसे सिर धड़ से अलग हो रहा है ! कैंसर के रोग के कारण दीवार से सिर टकराते मरीजों को मैंने स्वयं देखा है। क्या इससे अधिक आपका सिर दर्द है ? यदि नहीं... तो ऐसे दर्द से दुःखी क्यों होना ?

www.yugpradhan.com

क्या तम्हें इस व्याख्यान सभा में बहुत गर्मी लगती है ? तो इसी क्षण जमशेदपुर के टाटा के कारखाने में काम कर रहे मजदूरों को याद करो । भीषण आग की भट्ठी के पास रह कर वे मजदूर अभी काम कर रहे हैं । यह विचार करोगे, तो तुम्हें इस सभा में तो बहुत ठंडक का एहसास होगा ।

मन के 'वैक्यूम' को भर देने के लिए मंत्रजाप या भक्ति अपनाएँ

दुःख की भयंकर आग के बीच भी शिमला की सर्दी का लुत्फ उठाने के लिए किसी मंत्र या जाप या शुभ विचारधारा का आलंबन तुम्हें लेना ही पड़ेगा । खाली मन में दुःखों के उबाल आने लगते हैं । ऐसे 'वैक्यूम' के समय को अच्छे चिंतन, भजन, मंत्रजाप द्वारा भर देना चाहिए । निर्धारित समय के कार्यक्रमों में कोई कार्यक्रम आधा मिनट भी जल्द पूरा हो जाए, तो रेडियो अनाउंसर कोई संगीत रिकॉर्ड बजा कर 'वैक्यूम' को भर देता है । ऐसा आपके पास 'कुछ' होना चाहिए।

जीवन में कई बार ऐसे भयंकर आघात और दुःख आ पड़ते हैं, जो मानव को पागल बना देते हैं-क्या करें, कुछ समझ में नहीं आता । ऐसे समय में दुःखों का वह बोझ मन पर सवार न हो जाए, इसके लिए सुविहित मंत्रों के जाप, प्रभुभक्ति के गीत या सांत्वना देने वाली किसी अच्छी पुस्तक का वांचन आदि तुम्हें तैयार रखना ही चाहिए, जो मन के 'वैक्यूम' की जगह को भर दे ।

अंजना के मन की स्थिति अत्यंत दयनीय थी । वसंता आदि सखियाँ बहुत आश्वासन तो देती हैं, परन्तु क्या हो सकता है ? पुरुष की जाति है । कुछ भी हो, पवनंजय पति है । उसके विरुद्ध स्त्री के बगावत करने से एकाध स्त्री को किसी प्रकार के सुख मिल भी जाएँ, तो भी उससे भविष्य में कैसी भयंकर हानि होगी, उसका भी तो विचार करना ही होगा न ?

अंजना का सूना संसार

वसंता के मिथ्या आश्वासनों का अंजना पर कोई प्रभाव नहीं होता है । अंजना की संसार की दृष्टि से सुहागन मानी जाने वाली रात्रियाँ बिल्कुल सन्नाटाभरी गुजरती हैं । उसके जीवन का मानो सारा सुख साफ हो जाता है । कृपाल पर से कुमकुम तिलक मिट गया है । माँग का सिंदूर चला गया है । देह पर से आभूषण हट गए हैं । हथेली व पैर के तलुओं से मेहंदी का रंग सूख गया है । आँख से अंजन ने विदा ले ली है । गाल बैठ गए हैं और होंठ सूख गए हैं ।

अब किसकी खातिर इस देह को सजाना ? पतिदेव तो कभी महल में पधारते ही नहीं हैं ! पति को दिखाने के लिए ही यह श्रृंगार है, परपुरुष को दिखाने के लिए नहीं । परायों को दिखाने के लिए स्त्रियों की देह नहीं है । अंजनासुंदरी विचारों में खो जाती है । उसके हाड़-मांस सूख गए हैं । मुँह पर नूर नहीं दिखता । बदन निस्तेज हो गया है ।

आर्यदेश की स्त्रियाँ कैसीं ?

कभी वसंततलिका जैसा-तैसा बोल जाती है : "इस पवनंजय के बारे में क्या सोचा था, क्या निकला ? तुझे इतने दुःख देकर उसे लज्जा भी नहीं आती ?" ऐसा लगता है कि उसके विरुद्ध संस्कारी अंजना तुरंत आपत्ति व्यक्त करती होगी और कहती होगी, "कुछ भी हो, आर्यपुत्र मेरे पतिदेव हैं । उनके विरुद्ध एक शब्द भी मत कहना ।

खबरदार है, आज के बाद आर्यपुत्र के खिलाफ कुछ भी बोली है तो ?"

आर्यदेश की नारी की पतिपरायणता का कैसा उच्चादर्श ! अपनी प्रिय सखी अंजना को तड़पता और अति दुःखी देख कर उसकी सखी वसंता क्या-क्या सोचती होगी और बोलती होगी और अंजना पति की बुराई के समक्ष उसका किस तरह बचाव करती होगी, यह तो हम केवल कल्पना ही कर सकते हैं ।

रावण का दूत द्वारा संदेश

अब हम अंजना के प्रसंग में आगे बढ़ेंगे ।

अंजना के जीवन का कुछ दुःखपर्ण काल गुजर रहा था । तभी एक बार राक्षसपति रावण के दूत ने आकर राजा प्रह्लाद से कहा, "वरुण नामक राजा रावण के साथ निरंतर बैर धारण करता था और रावण की आन स्वीकार नहीं करता था। फिर, रावण की आन को स्वीकारने की बात कहने पर वह जैसा-तैसा बोलने लगा। उसके कटुवचन सुन कर रावण ने क्रोधित हो चढ़ाई की, उसकी नगरी को घेर लिया और भयंकर युद्ध हुआ । इस महासंग्राम में वरुण के पुत्रों ने खर को बांध लिया और अपने नगर में ले गए हैं । इसीलिए अब रावण ने विद्याधर राजवियों को सैन्य सहित बुलाने के लिए भेजा है । तुम्हें भी मैं इसके लिए बुलाने आया हूँ ।"

www.yugpradhan.com

युद्ध के लिए पवनंजय का गमन

दूत की बातें सुन कर राजा प्रह्लाद रावण के साथ हो हमले के लिए तैयार हुआ। तभी प्रह्लाद के पुत्र पवनंजय पिता से कहते हैं, "पिताजी, आपको इसके लिए जाने की कोई जरूरत नहीं है । रावण का मनोरथ मैं पूरा करूँगा ।"

इस तरह आग्रहपूव्रक पिता की सहमति लेकर पनवंजय युद्ध के लिए निकल पड़ा । पति की इस युद्ध-यात्रा के समाचार लोकमुख से सुन कर अंजनासुंदरी उनसे मिलने के लिए अत्यंत उत्कंठित हो गई ।

अंजना के अंतर में ऐसी अभिलाषा थी कि आज तो मेरे स्वामीनाथ जरूर मुझसे मिलने आएंगे ही । युद्ध के मोर्चे पर जाने का मतलब मौत से लड़ने जाना । मानो अंतिम विदाई... कैसा भी बैरी, बैर भूल कर स्वजन के प्रति प्रेम दिखाता है, तो मेरे पतिदेव में पाषाण जैसी कठोरता तो नहीं ही है कि आज भी मुझे भूल जाएँ। आज तो जरूर मेरे पास आएँगे ।

परन्तु अंजना की यह आशा व्यर्थ गई । पवनंजय के मन में तो अंजना से मिलने का विचार तक नहीं आया । उसकी दुनिया में सभी थे; सिवाय अंजना के... अंजना का उसके हृदय में कोई स्थान नहीं था ।

पति को देखने अधीर अंजना की दशा

अपने पतिदेव पवनंजय के दर्शन को अधीर बनी अंजना महल से धड़ाधड़ नीचे उतर आई । मानो आकाश से देवांगना उतरी हो ! पति को देखने के लिए एक खंभे का सहारा लेकर पुतली की तरह स्थिर खड़ी रही ।

उसके अंतर में मानो अरमान होंगे, "कुछ भी हो, वे मेरे पतिदेव हैं । उन्हें मैं जरूर रोकूँगी । मैं उन्हें प्रियवचन सुनाना चाहती हूँ कि युद्ध में विजयी होकर लौटें। क्या एक पत्नी के रूप में मुझे इतना भी अधिकार नहीं है ?"

जैसे ही पवनंजय महल के निकट आया । उसने अंजना को देखा । अंजना अनिमेष नजरों से पनवंजय को देख रही थी । अस्वस्थता से उसका हृदय पीड़ित था । दूज के चांद के जैसी कृश उसकी देहलता थी । शिथिल केशलताओं से उसका ललाट ढँका हुआ था । ढीली पड़ चुकी भुजलताएँ लटकती थीं । उसके होठ पर तांबुल नहीं था । आँख के आँसू से उसका मुँह धुल रहा था और आंखों से अंजन तो कभी का चला गया था ।

ऐसी अंजना को पनवंजय ने देखा । देखते ही उसने सोचा : "अहा ! यह स्त्री कितनी निर्लज्ज व निर्भय है ! इस तरह बीच में आकर खड़ी है ! मैं इसके दुष्ट मन को पहले से ही जानता था, फिर भी क्या हो सकता है ? माता-पिता की आज्ञा के उल्लंघन के भय से ही मुझे इससे विवाह करना पड़ा !"

गाँव घुमाने की बजाए गाड़ी घुमाएँ

जब पापकर्मों के उदय होते हैं, तब सब कुछ नित-नया घटता है । आप शायद अपने माता-पिता के चौथे पुत्र हों और हो सकता है कि माता-पिता तीनों पुत्रों पर खूब स्नेह रखते हों, परन्तु आप पर बिल्कुल नहीं रखते हों ।

आपके पापकर्म आपको कहीं भी प्रिय नहीं होने देते । सभी ओर से शायद तुम्हें धिक्कार मिलता हो । तुम्हें कहीं यश-कीर्ति प्राप्त न होती हो । ऐसी स्थिति में भी आप किसी का अशुभ नहीं विचारें । आत्मा के अंदर अनुपम समाधि बनाएँ ।

अपने माता-पिता को दोष मत देना । उस समय आप सोचना, "मेरे ही पापकर्म इसमें कारण हैं । इसीलिए सभी के साथ मेरी लड़ाई आदि होती है । मेरा ही पुण्य कम है । इसके कारण मैं सभी को शत्रु जैसा लगता हूँ । इसीलिए अब मुझे ही मेरा पुण्य बढ़ाना चाहिए और यह पुण्य धर्म से ही प्राप्त होता है । अतः धर्मतत्व की शरण ही स्वीकार करनी चाहिए ।"

सभी हमारे लिए अच्छा विचारें, ऐसा मत सोचो । गाँव घुमाने की बजाए, गाड़ी घुमाना महत्वपूर्ण है । आप ही अपना पुण्य बढ़ा दो, तो सब अच्छा हो जाएगा।

अंजना की पनवंजय को विजयकामना

अंजना पवनंजय के चरणों में गिर जाती है और अंजलि जोड़ कर कहती है : "हे स्वामीनाथ ! तुमने सबकी सुध ली । सबके साथ हिले-मिले; परन्तु मेरी जरा भी सुध नहीं ली ? कोई बात नहीं... स्वामीनाथ ! आपको उचित लगा, वह ठीक। अब मेरी आपसे विनती है कि आप मुझे कभी भूलना नहीं है । आपका मार्ग सुखकारी बना रहे । युद्ध में आप विजयलक्ष्मी का वरण कर पुनः शीघ्र पधारें । आपकी यह अभागिनी दासी आपका यश चाहती है । पधारो... स्वामीदेव ! शिवास्ते पन्थानः सन्तु ।"

www.yugpradhan.com

सुषुप्त मन में पड़ते विचारों के प्रतिबिम्ब

पनवंजय सिर झुका लेता है । वह कुछ नहीं कहता, परन्तु एक बार उसकी दृष्टि ठीक तरह से अंजना पर पड़ गई थी । उसके सुषुप्त मन में अंजना के सूख चुके निस्तेज मुखारविंद का, उसके मिट चुके माँग के सिंदूर का और गहरी हो चलीं आँखों का प्रतिबिम्ब पड़ गया । उसके जीर्ण हो चुके शरीर का 'चित्र' मन में खिंच गया ।

व्यक्ति जो कुछ देखता है, सोचता है और सुनता है, उससे पहले जागृत मन में उपयोग रूप में आता है और बाद में ही दर्शन, चिंतन और श्रवण सुषुप्त मन में मन की अन्य प्रक्रियाओं के रूप में चला जाता है ।

अभी तुम जो व्याख्यान सुनते हो, वह बाहर निकल कर जब चप्पल खोजने लगोगे, उतने में ही व्याख्यान की ये बातें मन में रूपांतरित होकर चली जाएँगी ।

'स्टीम-रोलर' नहीं बनें

पनवंजय अंजना के प्रति तिरस्कार के साथ चला गया। आज के मौजूदा जीवन में भी बुजुर्ग कई बार बात-बात में दाँत पीसते हैं, क्रोध में आ जाते हैं, मानो (Steam-roller) बन कर जीते हैं। अपने ही परिजनों को तानाशाह रवैये से कुचल देना, वास्तव में अधम अपकृत्य ही कहलाएगा।

दूसरों को 'सम्मान' देने की कला सीखें

क्या यह सच्चे साहूकारों के जीवन हैं ? अपने ही घर का कोई सदस्य किसी योग्य वस्तु की मांग करे, उतने मात्र से ही आवेश में आ जाना चाहिए ? क्या दूसरों को घर में योग्य रूप से जीने का अधिकार नहीं होता ? (Reverence for life) दूसरों को सम्मान देने की नीति की तो मानो बात ही नहीं है ! कैसी क्रूरता !

एक स्त्री अपने माता-पिता के समग्र पीहर को छोड़ कर पति के घर आई। इसका यह मतलब है कि पति किसी भी तरह पत्नी से मारपीट कर सकता है ? बच्चों को बात-बात में तिरस्कृत कर सकता है ? दूसरो को सम्मान देने की कला यदि नहीं अपनाई जाएगी, तो उस घर के सभी स्वजनों को बुजुर्गों की तानाशाही के अधीन लाचार होकर जिंदगी पूरी कर देनी होगी।

www.vijayradhan.com

अभी-अभी तो बूढ़े हो गए पिता, पुत्रों को भी नहीं अच्छे लगते। घर के नौकरों और ड्राइवरों के मन में मालिक के प्रति सद्भाव नहीं रहा है।

अफसोस ! जो अपने मुनीमों को भी सुन नहीं सकते हैं; अपने घर को भी निर्दोष स्नेह से नहीं भर सकते हैं, वे यदि बनासकांठा के अकाल पीड़ितों में बड़ा दान देता हो, तो मुझे कहना होगा कि वह मात्र सस्ती लोकप्रियता कमा लेने निकला है ! उसका दया से कोई सरोकार नहीं है, वरना उसने अपने ही घर से इसकी शुरूआत की होती !

पीलिया होने पर सब पीला ही दिखेगा न

पनवंजय के प्रति अपार पतिभक्ति के कारण ही अंजना खड़ी रही, परन्तु पवनंजय के लिए यह भी उल्टा रहा। जब व्यक्ति को पीलिया हो गया हो, तो उसे सब कुछ पीला ही दिखता है।

इस समाज में कई लोग ऐसे होते हैं कि जो घर के बाहर सभी के साथ सभ्य बर्ताव रख सकते हैं । आइसक्रीम की पार्टियों में जाएँ या ऑबेरोय होटल में जाएँ, सभी जगह हँसते-खिलते रह सकते हैं, परन्तु घर के भीतर ऐसे व्यक्तियों को क्रोध और आवेश के सिवाय कोई भाषा नहीं आती है । यह कैसा दुर्भाग्य है ?

समाज के भीतर इस हद तक यह खराबी प्रवेश कर चुकी है कि इसीलिए मुझे इस रामायण के बीच भी तुम्हारी रामायणों को लेकर सफाई करनी पड़ती है और कुछ साफ-साफ बातें बतानी पड़ती हैं ।

मान-सरोवर पर पवनंजय का पड़ाव

पनवंजय के सुषुप्त अंतर में यह बात घर कर गई होनी चाहिए कि यदि अंजना वास्तव में कुलटा हो, तो उसके मुँह में पान चबा रही होती, हँसती व खिलती होती। खुश होती, परन्तु उससे उसकी देह पर बिल्कुल उलट दिखता था । लेकिन मानो पुनः पनवंजय का विचार मोड़ लेता होगा और वह कह उठता होगा..."परन्तु नहीं, इससे क्या ? कुलटा को तो सभी ढोंग करने आते हैं ।"

www.yugpradhan.com

पति द्वारा हुई अवगणना के कारण अंजना के दुःखों का कोई पार नहीं रहा । वह अंतःपुर में जाकर जमीन पर गिर पड़ी ।

पवनंजय मान-सरोवर पर आया और शाम के समय वहीं उसने अपना पड़ाव डाला। पनवंजय विद्याधर था । इसलिए विद्याशक्ति के बल से उसने एक प्रासाद खड़ा किया।

सूर्यास्त हो गया और मानो पवनंजय के जीवन को आमूल परिवर्तित करता एक परिवर्तन बिंदु प्राप्त हो गया ।

पवनंजय को प्राप्त हुआ परिवर्तन-बिंदु

अचानक पवनंजय के कर्णपटल पर किसी पक्षी की तीखी पुकार टकराती है । पवनंजय सोचता है : ये चीखें किसकी होंगी ?

पलंग पर बैठे पवनंजय ने देखा, तो एक चक्रवाकी उसकी निगाह में चढ़ी । अपने पति चक्रवाक के विरह की पीड़ा से उसका अंतर पीड़ित था । पूरे दिन चक्रवाक के साथ गुजारने के बावजूद जैसे सूर्यास्त हुआ कि तुरंत ही ये दोनों पंछी अवश्य अलग हो जाते हैं । मानो कुदरत का ऐसा कानून है ।

इसीलिए चक्रवाकी चीख रही थी । चक्रवाक के विरह से पीड़ित चक्रवाकी मृणाल लता को खाती नहीं है । शीतल जल से भी मानो परिताप प्राप्त कर रही है । चंद्र की ज्योत्सना भी मानो उसे झुलसा रही है ।

जहाँ-तहाँ भागती, टकराती, कुटती और करुण चीखें लगातीं चक्रवाकी को देखते ही पवनंजय के अंतर में एक विचार कौंध गया : "ये चक्रवाकियाँ पूरे दिन अपने-अपने पति के साथ क्रीड़ा करती हैं, फिर भी रात्रि मात्र में भी विरह को बर्दाश्त नहीं कर सकतीं... ओह ! तो उस अंजना का क्या होता होगा ? विवाह की पहली ही रात से मैंने उसका परित्याग कर दिया था । जैसे मेरे लिए वह परस्त्री हो! उसने कितना कल्पांत किया होगा ? उसके रोम-रोम में कितनी तीव्र व्यथाएँ होंगी? लाख-लाख डंख उसे कैसे चुभते होंगे ? अरे ! वह तो कुलटा थी... मैंने तो उसे परपुरुष की अनुरागिणी माना था... तो क्या मेरी भूल हो रही है ?"

हाँ... जरूर... ! वह कुलटा नहीं हो सकती । उसके हाथ में मेहंदी नहीं थी । माँग में सिंदूर नहीं था । वह हँसती-खिलती नहीं थी... जरूर कुलटा नहीं हो सकती; नहीं... । यह तो पतिव्रता के सुलक्षण हैं ।

www.yogpradhan.com

"हाय ! दुःख के बोझ से दबी, अकुलाई और अनाथ दशा में छोड़ी गई, मैंने उसकी सुध भी नहीं ली ! !"

"धिक्कार है मेरे अविवेक को ! उसकी हत्या का पाप करके अब मैं कहाँ जाऊँगा?"

पवनंजय का अंजना के महल में आगमन

अपने अंतर की बात उसने प्रहसित से बताई । प्रहसित तो वास्तव में खुश हो गया । उसने पनवंजय से कहा : "मित्र ! काफी समय बाद तुझे सही की पहचान हुई, बहुत अच्छा हुआ है । अंजना की दशा तो वियोगी सारसी पक्षी जैसी है । पति के विरह में तड़पती स्त्री के जो लक्षण होते हैं, वहीं अंजना में मुझे दिखते थे । मुझे उसमें कुलटा के लक्षण नहीं दिखाई दिए । धन्यवाद ! पवनंजय ! देर से ही सही, तुझे ब्रह्मज्ञान तो हुआ ! अब तो तुरंत उसके पास जाकर उसे आश्वासन देकर यहाँ वापस लाना ही उचित है ।"

पनवंजय और प्रहसित दोनों विद्या के बल से आकाश में उड़ कर अंजना सुंदरी के महल में लौटते हैं ।

अंजना ने कहा-परपुरुष को निकाल दो

प्रहसित सबसे पहले अंजना के घर में प्रवेश करता है। अंजना अल्पजल में रही मछली की तरह तड़पती पलंग पर पड़ी है। हृदय के अंतरताप से उसके हार के मोती फूटते जा रहे थे। असह्य पीड़ापूर्वक पछाड़ खा रही भुजाओं से मणि के कंगन टूट जा रहे थे। वसंता उसे बार-बार आश्वासन दे रही थी।

प्रहसित को अचानक अपने घर में प्रवेश करते देख अंजना बोली, "अरे, तुम कौन हो ? परपुरुष होने के बावजूद तुम यहाँ क्यों आए हो ? परस्त्री के घर से चले जाओ। ओ वसंता ! इस परपुरुष को पकड़ कर बाहर निकाल दे। मेरे स्वामी पनवंजय के सिवाय इस घर में किसी को प्रवेश करने का अधिकार नहीं है।"

नमस्कार कर प्रहसित बोल उठा, "देवी ! आपके स्वामी पवनंजय यहाँ पधार गए हैं। मैं उनका मित्र प्रहसित हूँ।"

अंजना कहती है, "अरे ! प्रहसित ! दुर्भाग्य ने ही मेरा मजाक किया है। अब तुम और क्यों मजाक कर रहे हो ? मेरे पूर्वकर्म का ही दोष है, नहीं तो मेरा कुलवान पति मेरा क्यों परित्याग करता ? विवाह के दिन से लेकर ही पति ने मेरा त्याग किया है। आज बाईस वर्ष बीत चुके हैं। तो भी मैं पापिनी आज भी क्यों जी रही हूँ? यही सवाल है।"

www.yugpradham.com

पनवंजय और अंजना का मिलन

अंजना के इन वचनों को सुन कर ही अतिदुःखी हुआ पनवंजय एकदम अंदर आ गया और गद्‌गद् वाणी से खुद को क्षुद्र बुद्धि वाला बताते हुए बोल उठा, "मुझसे भूल हो गई है, अंजना ! मुझे माफ कर। मेरे पाप से तेरी ऐसी दशा हो गई। मेरे भाग्ययोग से ही तू जी रही है। वरना, तो शायद मर गई होती।"

साक्षात् पति को देख कर, उन्हें पहचान कर, शर्माई अंजना पलंग की ईस का सहारा लेकर मुख नीचा कर खड़ी रही। बाद में अंजना ने कहा, "नाथ ! ऐसा न कहो। मैं तो तुम्हारी सदा से दासी हूँ। जो हुआ है, वह मेरे ही पापकर्मों का दोष है। आपका उसमें कोई दोष नहीं है। आपने मुझसे क्षमा मांग कर जरा भी उचित नहीं किया।"

अंजना और पवनंजय दोनों रात को साथ ही रहे।

अंजना को अंगूठी का प्रदान

सुबह तड़के पवनंजय से अंजना कहती है : "स्वामीनाथ, आप यदि मुझे जीवित देखना चाहते हैं, तो तुरंत लौट आना । फिर, आज ही मुझे शायद गर्भ रहे, तो मैं दुनिया से क्या कहूँगी ? शायद लोग मेरी निंदा करें ।"

पवनंजय ने कहा : "अंजना, मैं जल्द से जल्द वापस आऊँगा । फिर भी जरूरत पड़े, तो मेरे आगमन के प्रतीक के रूप में मेरे नाम से अंकित यह मुद्रिका बताना। फिर तुझ पर कोई लांछन नहीं लगाएगा ।"

पवनंजय इतना कह कर पुनः मान-सरोवर चला गया । पवनंजय गया और मानो अंजना के जीवन में सुख की एक छोटी-सी बिजली चमकी और फिर दुःख की काली अंधेरी रात शुरू हो गई ।

अंजना को तो उसी रात गर्भ रहा । उसके अवयवों में परिवर्तन होने लगा । गर्भ के चिन्ह उसके शरीर में धीरे-धीरे दिखने लगे ।

अंजना का गृह-बहिष्कार

www.yugpradhan.com

यह देख कर सास केतुमती चिढ़ गई । उसने तिरस्कारपूर्वक अंजना से कहा : "अरे ! पापिनी ! तेरा पति तो कब से देशांतर गया है और तू गर्भिणी कैसे हुई ? कुल को कलंक देने वाला यह कृत्य क्यों किया ? आज तक पनवंजय द्वारा होने वाली तेरी तर्जना को मैं उसका अज्ञान समझती थी । आज मैंने देखा कि तू वास्तव में सदाचारिणी नहीं है ।"

सास के अत्यंत आघातजनक शब्द सुन कर रो पड़ी अंजना ने पति के आगमन की सूचक अंगूठी दिखाई, तो भी केतुमती ने नहीं माना और कहा : "रे ! दुष्ट! तेरा पति तेरा नाम भी नहीं लेता था । वह तेरे पास कैसे आएगा ? कुलटा स्त्रियाँ धोखाधड़ी के सभी प्रकार जानती हैं । चल... तू अभी ही मेरे घर से बाहर निकल जा ।" और... रोते हृदय से, भीगी आँखों से अंजना वसंता के साथ रथ में बैठ कर मायके चली गई ।

केतुमती ने गहन जांच करे बगैर अंजना को निकाल दिया, यह उसकी भूल जरूर है । तो भी अंजना के प्रति व्यक्तिगत तिरस्कार से सास ने उसे निकाला नहीं था;

परन्तु अंजना के प्रति 'कुलटापन' की कल्पना के कारण ही सास से यह अकार्य हो गया ।

इससे सिद्ध होता है कि आर्य देश की सासें बहू के कुशील को बिल्कुल बर्दाश्त नहीं करती थीं । जिसके जीवन में शील नहीं है, ऐसी बहुएँ समग्र परिवार को बर्बाद करने का निमित्त बन सकती हैं । ऐसा कहने में अतिश्योक्ति नहीं होगा । इसीलिए बहू शीलविहीन जीवन जिए, इसकी बजाए वह कुएँ में छलांग लगा दे, उसे कम हानिकारक माना जाता था । एक तरफ एक व्यक्ति की मृत्यु होती है और दूसरी तरफ समग्र संस्कृति के शीलधर्म की सुरक्षा और अधिक स्थिर हो जाती है । दो में से एक चुनना हो, तो शील की सुरक्षा को प्राथमिकता देनी ही होगी । ऐसी विचारधारा केतुमती के अंतर में होगी । इसीलिए उसने अंजना को घर से निकाल दिया । यह अनुमान हम लगा सकते हैं ।

पिता द्वारा अंजना को दुत्कार

अंजना और वसंता अपने पिता के घर आकर खड़े रहते हैं । प्रतिहारी द्वारा घटी सही वास्तविकता वसंततिलका राजा को बताती है । यह सुन कर स्वयं सोच में पड़ गए, "स्त्रियों का चरित्र वास्तव में अचिन्त्य है । यह कुलटा अंजना मेरे घर को कलंकित करने यहाँ आई है ।" इतने में प्रसन्नकीर्ति नामक राजा का पुत्र आकर कहने लगा : "इस दुष्टा को तुरंत यहाँ से निकाल दो । उसने हमारे कुल को कलंकित किया है ।"

www.yugpradhan.com

आर्य देश में दया की तुलना में शील का अधिक महत्व आँका जाता था ।

इसीलिए प्रसन्नकीर्ति ने अंजना को निकाल देने का आदेश दिया, परन्तु राजा और राजा के पुत्र ने तथ्यों की जांच नहीं की । यह तो उनकी काफी गंभीर भूल ही कहलाएगी ।

महोत्साह नामक मंत्री राजा से कहता : "राजन् ! पुत्री को अंततः तो पिता की शरण है । सास ने शायद गलत तरीके से आक्षेप लगाया हो तो ? अतः साबित नहीं होने तक उसे गुप्त रूप से यहाँ रखो ।"

परन्तु मंत्री की बात राजा के गले नहीं उतरी । अतः राजाज्ञा से द्वारपाल ने अंजना को निकाल दिया । क्षुधा व तृषा से पीड़ित, श्रांत और क्लांत करती, आँसू

बहाती, कदम-कदम पर स्खलित होती और पेड़-दर-पेड़ विश्राम लेती अंजना निकल पड़ी ।

अंजना के आँसू सूखते नहीं हैं । उसके आक्रंद का कोई पार नहीं रहता । फिर भी वह किसी को दोष नहीं देती । सर्व का शुभ की अपेक्षा करते हुए वह आगे बढ़ रही है ।

वसंता का आश्वासन

वसंता उसे सांत्वना देते हुए कहती है : "अंजना ! चल... चल... हम दूर चले जाएँ। देख यह जंगल कैसा मजेदार है ! मानवजाति धोखा देगी, लेकिन यह कलकल बहती नदी का नीर और आकाश में उड़ते ये पंछी कभी दगा नहीं करेंगे । यह धरती कभी पैरों तले से नहीं सरकेगी और यह आभ कभी आकाश से टूट नहीं गिरेगा । इन तिनकों को एकत्र कर झोंपड़ी बना कर मौज से रहेंगे । तू चिंता मत कर । देख मैं तेरे साथ हूँ । स्वार्थी मानवों ने हमें भले छोड़ दिया । ये निर्दोष हिरन हमें नहीं छोड़ेंगे । हमारा पुण्य अच्छा आएगा, तब हमें कोई नहीं धिक्कारेगा ।"

www.yugpradhan.com

वसंता के शब्दों से कुछ शांति प्राप्त करती अंजना भटकती-भटकती एक गुफा के पास आती है । गुफा में प्रवेशते ही ध्यान में मग्न मुनि को उसने देखा । अमितगति नामक उस चारण मुनि को देखते ही खुश हो उठी दोनों सखियों ने नमस्कार किए और विनयपूर्वक उनके सम्मुख बैठीं । ध्यान पूर्ण होने पर मधुर वचनों से मुनि ने 'धर्मलाभ' का आशीर्वाद दिया ।

महात्मा का मिलन

वसंता ने जब अंजना के भाग्य की इस अवदशा का कारण पूछा, तो मुनि ने अंजना का पूर्वभव वर्णित किया : "उस भव में किए पाप के कारण ये कटु फल उसे भोगने पड़े हैं, परन्तु अब इन दुःखों का अंत निकट ही है । अंजना के मामा आदि अचानक आकर तुम्हें ले जाएंगे और शीघ्र पति के साथ उसका मिलन होगा। अब तुम कल्याणकारी जिनधर्म स्वीकारो ।"

दोनों सखियों ने मुनि की बात स्वीकारी । इसके बाद चारण मुनि वहाँ से चले गए और अंजना व वसंता उसी गुफा में रहीं । वहाँ मुनिसुव्रतस्वामी की जिनप्रतिमा बना कर रोज अंजना उसका पूजन करने लगी ।

हनुमान का जन्म

एक दिन अंजना ने शेर जैसे पराक्रमी पुत्र को जन्म दिया । वसंता ने उसका उचित किया । बालक के जन्म से आनंदित होने के बावजूद अंजना रोने लगी : "हे पुत्र ! तेरा इस घोर वन में जन्म हुआ । अत: अब तेरा जन्मोत्सव कैसे मनाऊँ ?"

इस प्रकार रोते हुए अंजना को, योगानुयोग वहाँ से गुजर रहे विद्याधर प्रतिसूर्य ने देखा और उसके दु:ख का कारण पूछा । वसंता ने सारी बात बताई । प्रतिसूर्य अंजना के मामा हैं, यह बात उजागर हो गई । प्रतिसूर्य दोनों सखियों और छोटे बालक को अपने नगर ले गया । जन्म के साथ ही यह बालक हनुपुर नगर में आया। अत: उसका नाम : 'हनुमान' रखा गया ।

पवनंजय को आघात

इधर... पवनंजय युद्ध से लौटा । आकर माता-पिता को प्रणाम कर अंजना के वासगृह में गया । वहाँ अंजना को नहीं देख कर उसने किसी स्त्री से पूछा, तो पता चला कि दुराचार की आशंका के कारण उसकी माता ने अंजना को निकाल दिया है ।

यह सुन कर प्रिया से मिलने को उत्सुक पवनंजय पवनवेग से अपने ससुर के घर आया । वहाँ भी उसे निकाल दिया गया है, यह जान कर पवनंजय वन-वन, पर्वत-पर्वत भटकने लगा । फिर भी उसे अंजना की कोई खबर नहीं लगी, तो पवनंजय ने अपने पिता को प्रहसित द्वारा संदेश भेजा : "यदि मुझे अंजनासुंदरी मिल जाती है, तो ठीक है, वरना तो मैं चिता में जल मरूँगा ।" यह संदेश सुनते ही केतुमती मूर्च्छित हो गई । वह करुणा कल्पांत करने लगी । स्वयं को निर्दोष बताने वाली अंजना को निकाल देने की भयंकर भूल करने के लिए आँसू बहाने लगी, और पवनंजय को इस तरह वन में अकेला छोड़ आने के लिए प्रहसित को फटकार लगाई ।

अंतत: अंजना-पवनंजय का मिलन

प्रह्लाद राजा पवनंजय की खोज में निकले । खोजते-खोजते भूतवन में आए । वहाँ पवनंजय को अग्नि में प्रवेश करने की तैयारी करते देखा । पवनंजय को आत्मदाह करने के लिए उतावला होता देख विह्वल हुए प्रह्लाद ने पवनंजय का हाथ पकड़ लिया और कहा : "तेरी माता ने अंजना को निकाल देने की जो जल्दबाजी की, तू भी वैसी ही गलती मत कर । स्थिर हो, बुद्धिमान हो । तेरी पत्नी को खोजने के लिए मैंने हजारों विद्याधरों को भेजा है । कुछ समय और प्रतीक्षा कर ।"

अंजना की खोज के लिए भेजे गए विद्याधरों में से कुछ हनुपुर आ पहुँचे । सारी बातें जानीं और तुरंत विमान में बैठ कर मामा प्रतिसूर्य तथा अंजना भूतवन की तरफ रवाना हुए । दूर से आते विमान को देख कर सभी उसकी तरफ देखने लगे।

विमान निकट आ गया । सभी ने नीचे उतर कर प्रह्लाद को प्रणाम किया और अंजना तथा पवनंजय का मिलन हो गया ।

अंजना ! कैसी महान् माता !

मुझे याद आती है, भीष्म को तैयार करती माता गंगा ।

मुझे याद आती है; स्वप्नियों में आसक्त पुत्र गोपीचंद के परलोक की चिंता कर रोज रोती राजमाता !

मुझे याद आती है; पालना झूलते बच्चे के शुद्ध स्वरूप को पालती माता अनसुया ।

मुझे याद आती है; पाँच-पाँच संतानों को संन्यासी बनाती और छठी संतान को : 'अजन्मा' बनने की प्रेरणा देती माता मदालसा ।

मुझे याद आती है; पुत्र की दुर्गति को जान कर संसार त्याग देने वाले पिता पाठक क्षीरकदंबक ।

मुझे याद आता है; राजा होकर नर्क जाने की आशंका पैदा करने वाले पुत्र का दाँत घिस कर उसे अराजा करता पिता चणक ।

मुझे याद आती है; पुत्र पर पड़ सकने वाले अपने असदाचरण के कुसंस्कारों के लिए जीभ कुचल कर मृत्यु को गले लगाने वाली चाँपराजवाला दिशावर की माँ।

हाय ! वह गांधारी; आजीवन आँख में पट्टी बांध कर सौ संतानों को वात्सल्य का अमीदान करती माता गांधारी !

हाय ! महात्मा गांधी ! तुम्हारे धिक्कार की आग में जल कर खाक हुआ ज्येष्ठ पुत्र हरिलाल !

हाय! कामासक्ति दीर्घकाल तक भोगने के लिए पुत्रों से दीर्घायु मांगता बाप ययाति!

हाय ! आज के वे तमाम मम्मी-पप्पा; संतानों के जीवन पर अपने दुराचरणों के कुसंस्कारों के थपेड़े मार कर उन्हें शैतान बना देते हैं।

कई कन्हैया कंस बन गए हैं; इन माता-पिताओं के बेरहम पापों के कारण ।

* * *

www.yugpradhan.com

(३) हनुमान

रामचंद्रजी के दो हाथ समान हनुमान और लक्ष्मण...

दोनों सत्वशिरोमणि ।

दोनों अत्यंत शीलवान् ।

रामचंद्रजी के परम भक्त थे; हनुमान ।

जिसके पास मन जैसी वस्तु का अस्तित्व ही न हो, वही भक्त कहलाता है । शेष तो टूटे-फूटे भक्त होते हैं ।

सागर में नमक की गाँठ जैसा विलीनीकरण हो; आत्मविसर्जन किया जाए; स्व के अस्तित्व का सर्वथा लोप किया जाए, इस तरह गुरु के मन में जो शिष्य अपने मन का विलीनीकरण करे, वही गुरुभक्त कहलाता है । शेष दंभी शिष्य हैं; उच्छृंखल हैं । वे दीक्षा लेकर दुर्गति में जाने की तैयारी कर रहे हैं । वे अपना ही नुकसान कर रहे हैं ।

www.yugpradhan.com

शिष्य के जीवन की सफलता का मंगल मात्र गुरुकृपा है ।

गुरुकृपा हि केवलं, शिष्यं परं मंगलम्

संबेग रंगशाला में कहा गया है कि उन शिष्यों को धिक्कार है; जिन्हें 'कुछ' कहने में गुरु को संकोच होता है ।

एकलव्य द्रोणमय थे ।

हनुमान राममय थे ।

गौतम गणधर महावीरमय थे ।

हम यहाँ छुएंगे हनुमान की परम-भक्ति को । एक बार वनवास के दौरान राम को किसी स्थल में अधिक दिन निवास करने की इच्छा हुई ।

उन्होंने हनुमान से कहा, "हमें यहाँ कुछ दिन रहना है । कुटीर की जरूरत पड़ेगी। तेरा मन कहे, यहाँ कुटीर खड़ी कर दे । लक्ष्मण, सीता तेरी सहायता करेंगे । जा... पहले जगह का चयन कर आ ।"

यह आदेश सुन कर हनुमान अस्वस्थ हो गए । दो किलोमीटर दूर जाकर बड़ी

शिला पर बैठ गए । जोर-जोर से रोना शुरु किया ।

तीन घण्टे गुजर गए । हनुमान नहीं लौटे, तो सीता ने खोज शुरु की । लक्ष्मण भी पीछे-पीछे आए । दोनों ने हनुमान को शिला पर बैठ कर फूट-फूट कर रोते देखा।

कारण पूछने पर हनुमान ने कहा, "भगवान राघवेन्द्र ने मुझे ऐसी आज्ञा की है कि जिसका मैं पालन नहीं कर सकूँगा । इसी कारण मैं बेचैन हो गया हूँ । भगवान की आज्ञा ऐसी है कि जहाँ मेरा मन करे, वहाँ उनके लिए कुटीर खड़ी कर दूँ । हाय! मेरे पास तो मन ही नहीं है । भगवान प्राप्त होते ही मैंने तो मेरा मन उनके मन में विलीन कर दिया है । अब मैं इस आज्ञा का पालन कैसे करूँ ?"

हनुमान की बात सुन कर उसकी प्रभुभक्ति-परमात्मा के साथ अभेद प्रणिधानरूप को देख कर सीता और लक्ष्मण ने अंतर से हनुमान को प्रणाम किया ।

जब राम को इस बात की जानकारी हुई, तो उन्होंने भी हनुमान की तरफ मधुर नजर कर उनका अभिवादन किया ।

जहाँ राम नहीं, उससे मुझे काम नहीं

www.yugpradhan.com

लंकापति रावण के साथ युद्ध में हनुमान का बड़ा योगदान था । समग्र अयोध्या विजय के आनंद से उल्लासित थी ।

रामचंद्रजी की अध्यक्षता में बड़ा दरबार भरा । युद्ध में उत्तम कार्य करने वाले सभी को आज रामचंद्रजी भेंट देने वाले थे । क्रमशः सभी को भेंट दी गई, परन्तु न जाने क्यों ? हनुमान भुला दिए गए ! (सबसे नजदीकी होंगे इसीलिए ?)

यह बात सीता से छिपी नहीं रही । दरबार का विसर्जन होने के बाद उन्होंने हनुमान को बुला कर कहा, "आर्यपुत्र तुम्हें भूल गए, उसका मुझे बहुत आश्चर्य हुआ है और दुःख भी हुआ है । फिर तुम बुरा मत लगाना । मैं और आर्यपुत्र हम एक ही हैं । मैं दूँ या वे, सब समान है । लो, यह नौसेरा हार भेंट में... ।"

कुछ भी कहे बिना हनुमान ने वह हार लिया । हार का एक-एक मोती बेर जितना था । कुछ भी बोले बिना हनुमान ने जोर लगा कर हार तोड़ दिया । सीताजी तो यह सब देख कर दंग रह गईं । फिर भी कुछ पूछे बिना, अब हनुमान क्या करते हैं यह देखने की आतुरता से मौन रहीं ।

हनुमान ने एक मोती हाथ में लिया । एक मुट्ठी मार कर उसके दो खड़े हिस्से

किए । दोनों हिस्सों में स्वयं कुछ खोजते हों, इस प्रकार देखा... फिर दोनों हिस्से बाजू पर रख दिए ।

दूसरा मोती लिया, उसकी भी यही गति ।

तीसरा मोती लिया, उसकी भी यही दशा ।

सभी मोतियों की यही स्थिति हुई ।

अब सीताजी से नहीं रहा गया । उन्होंने हनुमान से पूछा, "अरे, हनुमान ! यह कैसा खेल ? ऐसे मूल्यवान हार की ऐसी दशा ? ऐसी बालचेष्टा तू कर रहा है ?"

"माताजी ! शांत हो । पहले मेरी बात सुन लो ।"

"मैंने प्रत्येक मोती के प्रत्येक हिस्से में देखा । मुझे वहाँ राम को खोजना था। कहीं भी राम हैं या नहीं ? यह मुझे जानना था, परन्तु इसमें कहीं भी मुझे राम के दर्शन नहीं हुए । माताजी ! जहाँ राम नहीं, उसका मुझे काम नहीं । ये ले लो वापस आपका नौसेरा हार !"

हनुमान की इस राम-भक्ति को जान कर सीताजी भी क्षणभर दंग रह गईं !

www.yugpradhan.com

जिसका राम परित्याग करें...

एक बार राम और हनुमान वन में घूमते थे । घूमते-घूमते एक नदी आई । उस नदी के पास कई पत्थर पड़े थे । कौतुहल से राम ने हनुमान से पूछा, "हनुमान ! पत्थर कभी पानी में तैरता है ?"

रामचंद्रजी के प्रश्न का मुँह से उत्तर देने की बजाए हनुमान ने एक पत्थर हाथ में लेकर सीधे पानी में फेंका... और तुरंत बोले, "हे राम !" भारी आश्चर्य के साथ रामचंद्रजी ने उस पत्थर को पानी में तैरते देखा ।

तुरंत ही कौतुहल से प्रेरित होकर रामचंद्रजी ने एक पत्थर उठाया और जोर से पानी में फेंका... परन्तु अफसोस ! पत्थर डूब गया ! इससे रामचंद्रजी चौंक उठे । "अरे हनुमान ! ऐसा क्यों ? मैंने पत्थर डाला, तो वह डूब गया ! यदि राम के नाम पर पत्थर तैरता है; तो साक्षात् राम के हाथ से फेंका गया पत्थर क्यों नहीं ?"

खुल कर हँसते हुए हनुमान ने कहा, "भगवान् ! यही तो खूबी है न ? जिसका राम परित्याग करें, वह तो डूबेगा ही; कभी नहीं तरेगा ।"

रामराज्य की स्थापना होने के बाद एक बार राजा हनुमान चैत्री पूर्णिमा के दिन

शाश्वता चैत्यों का वंदन करने के लिए मेरुपर्वत पर गए । वहाँ अस्त होते सूर्य का और बिखरते संध्या के रंगों का उन्हें दर्शन हुआ । इस पर वे सोच में पड़ गए । संसार के सकल पदार्थ आरंभ में सुंदर और अंत में विनाशी दिखे । ऐसे संसार के प्रति उन्हें वैराग्य हुआ ।

अपने नगर जाकर स्वपुत्र को राज्यभार सौंप कर धर्मरत्न आचार्य से दीक्षा ली। उनके साथ साढ़े सात सौ राजाओं ने और हनुमान की अनेक रानियों ने दीक्षा ली। (साधना के अंत में हनुमान मोक्षगति को प्राप्त हुए)

हनुमान की दीक्षा के समाचार सुन कर राम को मन में हँसी आ गई । उनके मन में प्रश्न उठा, "इतना सुहाना संसार है । फिर भी उसे छोड़ कर हनुमान ने दीक्षा का कष्टमय जीवन क्यों पसंद कर लिया । गलत किया !"

इसी समय सौधर्मेन्द्र ने अवधिज्ञान के उपयोग में राम की इस चित्तस्थिति को देखा । उन्होंने देवों से कहा, "देखो कर्म की स्थिति कितनी विषम है कि इसी भव में मोक्ष में जाने वाले रामचंद्रजी को अभी दीक्षा लेने की बात पर हँसी आती है। वे भोगसुखों की प्रशंसा कर रहे हैं ! इसका कारण राम का लक्ष्मण पर अतिशय राग है । यह राग ही संसार पर वैराग्य नहीं होने देता ।"

www.yogpradhan.com

गुजराती कवि ने सच ही कहा है,

"न्यारी न्यारी नितान्त नकारी हो...
सखी ! मोहकरम गति न्यारी...'

अनेक स्त्रियों के साथ विवाह करके भी अनासक्त बन कर महाभिनिष्क्रमण के पंथ पर जा रहे; सकल साधना कर मोक्ष को प्राप्त करने वाले हनुमानजी को कोटि कोटि वंदन ।

* * *

(४) दशरथ

देवाधिदेव, तीर्थंकर परमात्मा जो इक्ष्वाकू वंश के थे । उनके अंतर्गत सूर्यवंश हुआ । उसके राजाओं की परम्परा में अयोध्या में अनेक राजा हुए । फिर नघुष राजा हुआ । उसके बाद अनेक राजा हुए । इसके बाद रघु नामक राजा हुआ । उसके बाद अयोध्या में अनरण्य राजा हुआ ।

ये समग्र राजा ऋषभ की राज-परम्परा में असंख्य राजा मोक्षपद को प्राप्त हुए।

अनरण्य राजा का सहस्त्रकिरण राजा मित्र था । रावण के साथ युद्ध में संसार के प्रति वैराग्य उत्पन्न होने पर सहस्त्रकिरण ने दीक्षा ली । जिगरजान दोस्ती होने के कारण राजा अनरण्य ने भी तुरंत दीक्षा ली ।

राजा अनरण्य के दो पुत्र थे : अनंतरथ और दशरथ । बड़े पुत्र ने भी पिता के साथ दीक्षा ली । इस समय दशरथ मात्र एक माह का बालक था । राजा अनरण्य ने उसका राज्याभिषेक किया । मंत्रियों को राज चलाने के लिए सौंपा ।

www.yugpradhan.com

एक ही माह का दशरथ 'राजा' बने, यह कैसा प्रचंड पुण्य था !

शालिभद्र का कैसा पुण्य कि स्वर्ग गए पिता गोभद्रसेठ देवरूप में रोज भोग-सामग्री भरी निन्यानबे पेटी पुत्र शालि को भेजते ।

जगत सेठ का कैसा पुण्य कि संन्यासी का दिया पारसमणि भी नदी में डाल दिया ।

पिता हुमायू की पीठ पर बांधा हुआ बाल अकबर । सैंकड़ों तीरों की बरसात शत्रुओं ने की । हुमायू की पीठ छलनी हो गई, परन्तु अकबर को एक भी बाण नहीं लगा । वह अणिशुद्ध सुरक्षित रह गया ।

जितने तारे गगन में, उतने शत्रु होय । कृपा भई रघुवीर पुण्य की, बाल न बाँका होय ।

पुण्य मरता है, तो भयंकर अंधाधुंधी अचानक हो जाती है ।

भारत की सर्वाधिक मजबूत प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी अंगरक्षकों की गोलियों से छलनी हो गईं ।

ईरान का शाह देखते ही देखते सिंहासन से बेदखल हो गया ।

महाराणा प्रताप से भिखारी की ओर से दी गई रोटी गिद्ध ने छीन ली ।

अरबोंपति अमरीकी विपुल धन-सम्पदा के बीच आधे गिलास पानी के अभाव में प्यासा मर गया ।

भारत की राजाशाही का मृत्युघंट बज गया ।

शाहआलम के सगों को मैंने भीख मांगते देखा ।

सम्राट नेपोलियन सेंट हेली के द्वीप में तड़प कर मरा ।

हिटलर ने आत्महत्या की ।

दशरथ युवा हुए । इधर लंका में एक घटना घटी । रावण ने स्वमृत्यु के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए राजसभा में आए नैमित्तिक से सवाल किया । जवाब में दशरथ पुत्र से और जनकपुत्री के निमित्त से मृत्यु की आगाही की गई ।

इससे अकुलाए विभीषण ने अभी बाप नहीं बने दशरथ और जनक की जड़ ही उखाड़ फेंकने का संकल्प किया । पहले दशरथ को मारने का निश्चय किया, परन्तु सावधान दशरथ भाग गया । कुशल मंत्रियों ने दशरथ की हूबहू निद्रारत् मूर्ति रख दी । विभीषण उस जाल में फँसा । मूर्ति की हत्या कर चला गया । जनक को मार देने की बात छोड़ दी ।

राजा द्रोणमेघ की कन्या कैकेयी के स्वयंवर मंडप में दशरथ गए । दशरथ ने उस समय वामन का रूप धारण किया था । फिर भी कैकेयी ने दशरथ के गले में वरमाला डाल दी । शेष अहंकारी राजा रुष्ट हुए । उन्होंने वहीं दशरथ के साथ युद्ध शुरू किया । उस समय रथ के सारथि के रूप में कैकेयी ने ऐसा अद्‌भुत कार्य किया किया कि विजय पाने में वही मुख्य निमित्त है, ऐसा मान कर अति प्रसन्न हुए दशरथ ने कैकेयी से वरदान मांगने को कहा । उसने कहा, "फिलहाल यह वरदान पूँजी की तरह रहने दो, योग्य समय पर मांगूँगी ।"

याचिष्ये समये स्वामिन् न्यासीभूतोऽस्तु मे वरः ।

उत्तरोत्तर अधिकाधिक बलवान बनने के बावजूद रावण के भय से राजा दशरथ ने लंका में जाना योग्य नहीं माना । वह मगधपति को जीत कर राजगृही में रहा।

जिनके साथ विवाह हो चुका था, उन रानियों कौशल्या, सुमित्रा और सुप्रभा

को राजगृही में बुला लिया ।

वहाँ कौशल्या ने राम (पद्म) को, सुमित्रा ने लक्ष्मण (नारायण को) जन्म दिया।

राम बलदेव बने हैं ।

लक्ष्मण वासुदेव हुए हैं ।

रावण प्रतिवासुदेव हुआ है ।

राम-लक्ष्मण की पराक्रमता देख कर दशरथ ने रावण से निर्भीक होकर अयोध्या में प्रवेश किया । वहाँ कैकेयी ने भरत और सुप्रभा ने शत्रुघ्न को जन्म दिया।

इधर दशरथ के मित्र मिथिलापति राजा जनक को रानी विदेहा से संतान युगल की प्राप्ति हुई, जो भविष्य में सीता और भामंडल के रूप में प्रसिद्ध हुए हैं ।

एक बार मिथिलापति जनक ने अपनी प्रजा को खूब त्राहित कर रहे आसपास के म्लेच्छ राजाओं को परास्त करने के लिए दूत के जरिए दशरथ से सहायता मांगी। दूत की बात सुन कर पिताजी को न भेजते हुए राम गए । राम ने कहा, "यदि पिताजी को यह काम करना पड़ेगा, तो राम-लक्ष्मण क्या करेंगे ?"

www.yugpradhan.com

तातो यास्यति चेद्राम: सानुज: किं करिष्यति ?

राम का युद्धगत प्रचंड पराक्रम देख कर जनक ने पुत्री सीता के लिए राम को मन ही मन पसंद कर लिया ।

स्वयंवर रचा । घोषणा हुई कि वज्रावर्त्त और अर्णवावर्त्त नामक महाधनुष्यों को जो उठाए, उसे सीता वरण करेगी । राम इसमें सफल हुए । सीता ने राम के कंठ में वरमाला डाली । उसके बाद लक्ष्मण ने भी उन दोनों धनुष्यों से ऐसा ही गगनभेदी टंकार किया । उससे चकित हुए अन्य उपस्थित राजाओं ने लक्ष्मण के साथ अट्ठारह राजकन्याओं का विवाह कराया । जनक ने समधी दशरथ को बुलाया । जनक के छोटे भाई कनकराज ने अपनी पुत्री भद्रा का विवाह भरत के साथ किया । लक्ष्मण का राजकन्या उर्मिला के साथ विवाह हुआ ।

पल इतिहास रचता है

रामचंद्रजी का सीता के साथ; लक्ष्मण का उर्मिला आदि के साथ और भरत का भद्रा के साथ विवाह होने के बाद सभी अयोध्या आ रहे थे, तभी पिता दशरथ ने नगरप्रवेश के साथ समस्त अयोध्या में परमात्मा भक्ति-महोत्सव का आयोजन किया ।

महाराजा दशरथ धर्मात्मा थे । उन्हें कभी भोगसुख नहीं मिले ।

विवाह कर नगर में प्रवेश करते वर-वधू के रूपंग के वर्णन में ही अयोध्या की प्रजा ओतप्रोत बन जाए, यह बात धर्मात्मा दशरथ को स्वीकार नहीं थी । इसीलिए उन्होंने जिनेन्द्र-भक्ति महोत्सव का आयोजन किया । धर्मीजन महोत्सव में शामिल हों, सद्गुरु के श्रीमुख से धर्मदेशना का श्रवण करें, दीन-दुःखियों को अनुकम्पा दान करें । इस तरह पूरा दिन धर्ममय गुजर जाए । उस मोहराजा के जाल में कोई न फँसे ।

भक्ति महोत्सव में अयोध्या की समस्त जनता ओतप्रोत हो गई । राजा दशरथ की रणनीति पूरी तरह सफल रही ।

भक्ति महोत्सव के अंतिम दिन बृहत्स्नात्र विधि हुई । परमात्मा की देह से स्पर्शित प्रक्षालजल की एक विशिष्ट महिमा है । भावुकजन उस प्रज्ञालजल को आँख, गले, पेट, ललाट पर लगाएँ और संकल्प करें, "इस पवित्रतम् प्रक्षालजल के पुण्य-प्रभाव से मेरे नयन निर्विकार बनें; ललाट निष्कलंक बनें आदि..."

www.yugpradhan.com

महाराजा दशरथ ने सोने की चार प्यालियों में प्रक्षालजल स्वयं भरा । चारों रानियों के अंतःपुर में पहरा देते कचुंकीओं (वृद्ध-कमजोर मानवों) को बुला कर कहा, "तुम्हारे रानीवास की रानियों को इस पवित्रतम् प्रक्षालजल को पहुँचाओ ।"

महाराजा की आज्ञा का स्वीकार करके कचुंकी रवाना हुए ।

कौशल्या को छोड़ कर तीनों रानियों को प्रक्षालजल प्राप्त हुआ । कौशल्या की दासियों ने बात आगे बढ़ा कर कौशल्या से कही, "रानी माँ ! तुम्हारे भाग्य में तुम्हारे भाग्य में यह पवित्रजल नहीं है न ? महाराजा साहब तो बात-बात में आपसे कहते हैं तू तो मेरे लाड़ले राम की माँ है ! मेरे हृदय में तेरा शीर्ष स्थान है !"

"छिट्... यह सब मायाजाल नहीं तो और क्या हो सकता है ? लाड़ले राम की माता ! और उसे पवित्र प्रक्षालजल भी भाग्य में नहीं मिला ? छिट्..." इस प्रकार दासियों ने कौशल्या के कषाय से छेड़छाड़ की और वह वास्तव में खिन्न हो गई ।

कुछ भी हो, वह राम की माँ... फिर भी जाति तो स्त्री की ही थी न ? तुलसीदासजी ने चौपाई में सच ही कहा है :

नारी स्वभाव सत्य कवि कह ऐ,
अवगुण आठ सदा उर रह है,
साहस, अनृत, चपलता, माया,
भय, विवेक, अशौच, अदाया ।

कौशल्या को स्त्रीसहज दोष ने घेर लिया । "यदि पति के हृदय में भी पत्नी का स्थान नहीं, तो उसे जीना किसके लिए ? क्यों ? फिर कोई भौतिक वस्तु की अपेक्षा हो, तो अलग बात है; परन्तु परमात्मा के स्नात्रजल की भी अपेक्षा नहीं रखें ? बस... मुझे जीना ही नहीं है; जीने का कोई अर्थ भी नहीं है ।

यह तो स्वाभिमान का प्रश्न है । सम्मान-अपमान की बात होती, तो मैं इतनी गंभीरता से नहीं लेती ।"

ऐसे अनेक प्रकार के विचारों के चक्रवात में कौशल्या का चित्त उलझ गया...

कौशल्या से ऐसा मानभंग नहीं सहा गया । उसने आत्महत्या कर लेने का भयंकर निर्णय ले लिया । कौशल्या की अधीरता ने ही ऐसा गलत निर्णय करवा दिया ।

www.yugpradhan.com

तीन उत्तम विचाररत्न

मानव को जीवन में सुखी होना हो, तो तीन दुर्गुणों का हमेशा के लिए त्याग करना चाहिए । (१) अपेक्षा (२) आवेश (३) अधीरता :

सुखी होना हो तो-

(१) अपेक्षा किसी (भौतिक पदार्थ) की रखना नहीं ।

(२) आवेश में कभी आना नहीं ।

(३) अधीर कभी होना नहीं ।

यदि जीवन में इन तीन वाक्यों पर अमल करोगे, तो तुम्हारे कई सारे दुःख स्वतः ही विलय हो जाएंगे ।

अपेक्षा किसी की रखना नहीं

कभी किसी की भी अपेक्षा मत रखना । 'यह तो ऐसा ही होना चाहिए... इसे इतना काम तो अवश्य करना ही चाहिए... कपड़ों में सल नहीं पड़ने चाहिए... सब्जी ऐसी ही होनी चाहिए... ' ऐसी अनेक अपेक्षाएँ ही जीवन के दुःखों की जड़

है । ये अपेक्षाएँ जीवन के सुख को कुचल डालती हैं ।

अपेक्षाओं के कीचड़ में फँस कर जीवन को खत्म कर देने से अब छुटकारा पाओ।

आवेश में कभी आओ नहीं

आवेश (क्रोध) भी अत्यंत भयंकर है । आवेश में आकर मानव ऐसे वचन बोल देता है कि मानो उससे दूसरे के हृदय के टुकड़े हो जाएंगे ! जिस पर व्यक्ति को अथाह प्रेम है, भावना है, जिसे वह महामूल्यवान व्यक्ति मानता है, उसी पर जब क्रोध का आवेश आता है, तो वह मूल्यवान माने जाने वाले व्यक्ति को भी दुत्कार देता है । तिरस्कृत कर देता है । आवेश में व्यक्ति के मस्तिष्क के सभी 'सेल' मानो खत्म हो जाते हैं । आवेश में दूसरों के साथ बैर के जानलेवा सम्बंध बन जाते हैं।

खंजर के घाव से भी आवेशपूर्ण वाणी के घाव कई बार जानलेवा बन जाते हैं। तीर से छूटे बाण की तरह वाणी के बाण छूटने पर वापस नहीं आते हैं । अत: आवेश को काबू में रखना चाहिए ।

आवेश में जो नुकसान है, वह आवेश नहीं करने से होने वाले नुकसान से कहीं अधिक है ।

www.yugpradhan.com

अधीर कभी बनो नहीं

तीसरा दुर्गुण है अधीरता । यह व्यक्ति के मन को ऊँचा-नीचा कर देती है । किसी भी कार्य में अधीरता करने की जरूरत क्या है ? भवितव्यता का जो निर्माण होगा, उसी प्रकार होने वाला है । उसमें ज्यादा हायतौबा मचाने से क्या लाभ ?

किसी भी कार्य का परिणाम आने में कुछ समय तो लगेगा ही । आज बीज बोएँ और आज ही फल मिलें, ऐसा कभी नहीं होने वाला ।

यदि जीवन से अपेक्षा, आवेश और अधीरता-तीन दूर कर दिए जाएंगे, तो अपूर्व शांति और समाधि प्राप्त होगी ।

इसीलिए इन तीन वाक्यों को heaven-sent sentences (स्वर्ग से अवतरित धरती के वाक्य) जैसे समझ कर जीवन में उतारना बहुत महत्वपूर्ण है ।

तीनों दोषों में फँसती कौशल्या

यह कौशल्या इन तीनों दोषों में एक साथ फँस गई और अपेक्षा खड़ी हुई,

"मुझे स्नात्रजल क्यों नहीं मिला ?" और इसी कारण उसमें आवेश आ गया । और वह स्नात्रजल प्राप्त करने के लिए अधीर भी हो गई ।

इसीलिए उसे जीना व्यर्थ लगने लगा । उसने अंदर के एक खंड में जाकर फाँसी लगाने का प्रयास किया । 'बस, मुझे मर जाना है । पति के हृदय में यदि मेरा स्थान नहीं है, तो मेरा जीना किस काम का ? नहीं देखना मुझे किसी का मुख, नहीं चाहिए मुझे कोई सुख ।'

कौशल्या को फंदे से मुक्त करते दशरथ

आवेश में उसने गले में फंदा डाल लिया । इतने में राजा दशरथ आ पहुँचे । उसके गले में फंदा देख कर राजा दशरथ चकित हो गए । अत्यंत आकुल-व्याकुल बने दशरथ ने तुरंत ही कौशल्या का फंदा निकाला । कौशल्या के मुख पर खून उतर आया था । उसके निकट सरक कर प्रेमपूर्वरक दशरथ ने पूछा : "देवी ! तुझे क्या हो गया ? किसने तेरा अपमान किया है ? किसने तुझसे अपशब्द कहे हैं ? कहीं मुझसे तो कोई ऐसी भूल नहीं हो गई ?"

www.yugpradhan.com

वास्तव में अपमान हजम करना बहुत कठिन है । शायद किसी मामले में तुम्हारा मान-सम्मान नहीं बना रहा हो, तो तुम अकुला जाते हो । सुयोग्य मान न मिलने पर तो तुम्हें वह अपमान लगता है । तुम्हारा मन तो कार्य से उठ जाता है । तुम्हें उसमें दिलचस्पी नहीं रहती है । तुम्हारे अपमान के विचारमात्र से तुम मानो गुमसुम बन जाते हो । यह सब मान-अपमान के मूल में अहंकार ही काम करता है ।

कौशल्या की पृच्छा और दशरथ का उत्तर

रुँधे गले से कौशल्या दशरथ से कहती है : "स्वामिन् ! क्या हुआ पूछते हो ? जैसे कुछ जानते ही नहीं ! सभी रानियों को शांतिस्नात्र जल तुमने भेजा और मैं तुम्हारी पटरानी होने के बावजूद मुझे नहीं मिला ? क्या अपराध है हमारा ? कहिए तो सही ? क्या कम अपमानजनक बात है ?"

महाराजा दशरथ यह बात सुन कर चकित हो गए, क्योंकि उन्होंने चारों रानियों को स्नात्र जल अवश्य भेजा था । फिर भी दूसरी रानियों को मिल गया और कौशल्या को ही क्यों नहीं मिला, यह बात राजा के समझ में नहीं आई ।

जहाँ रानी राजा से शिकायत कर रही थी, वहीं उसके साथ कौशल्या का

स्नात्रजल लेकर रवाना किया गया वह वृद्ध पुरुष आ पहुँचा ।

कंचुकी को अति वृद्धत्व के कारण आने में विलम्ब हुआ

हुआ यूँ कि अन्य रानियों के लिए स्नात्रजल पहुँचाने के लिए युवा दासियों को भेजा गया था । इसीलिए वे तो जल्दी-जल्दी अपनी-अपनी रानियों को स्नात्रजल पहुँचा आईं, परन्तु कौशल्य के लिए भेजा गया व्यक्ति अत्यंत बूढ़ा था । उसके शरीर में अब शक्ति नहीं रही थी । उसकी काया जर्जर हो गई थी । इसीलिए उसे आने में देर लगी ।

आर्यावर्त के घरों में और अंत:पुरों में नौकर-चाकर भी कई बार जान-बूझ कर वृद्ध आयु के ही पसंद किए जाते थे । इससे घर की स्त्रियों के शील आदि के विषय में साहजिक रूप से रक्षण रहता था । आज ऐसे सुंदर आयोजन किए जाते हैं या नहीं, यह आप सब सोचना ।

आर्यदेश के सुंदर रीति-रिवाजों को यदि घर-घर से नकारा जाएगा, तो शायद शीघ्र ही बहुत बड़ी अव्यवस्थाओं की आग चारों ओर फैल जाएगी ।

www.yugpradhan.com

राजा ने रानी से कहा, "देवी ! मैंने तुम्हें स्नात्रजल सबसे पहले भेजा है । देखो यह कंचुकी (वृद्ध पुरुष) स्नात्रजल लेकर आ रहा है ।"

फिर दरवाजे के पास आकर खड़े हुए उस कंचुकी की तरफ घूम कर दशरथ ने उससे कहा, "क्यों इतनी देर से आया ?"

कंचुकी को देखते ही कौशल्य के रोष का शमन

कंचुकी को स्नात्रजल लेकर आते देखते ही कौशल्य का नब्बे प्रतिशत रोष तो शांत ही हो गया । कौशल्य को सत्य समझ में आ गया, "वास्तव में राजाजी की भूल नहीं है, परन्तु इस कंचुकी को अत्यंत वृद्धावस्था के कारण ही आने में देर लगी।"

वृद्ध कंचुकी ने राजा को जवाब दिया, "राजन् ! आप मेरी तरफ तो देखो । इस विलम्ब में मेरी इस वृद्ध जर्जर काया का ही अपराध है ! !"

कंचुकी को देखते ही राजा दशरथ को वैराग्य

वयोवृद्ध कंचुकी को महाराज दशरथ देखते ही रहे । मानो मरने के लिए ही वह

जी रहा है ! वह कदम-कदम पर स्खलित हो रहा था । उसके मुख से लार गिर रही थी । उसके दाँत गिर गए थे । उसके मुख पर सल पड़ चुकी थी । उसके शरीर पर रक्तविकार के बड़े फोड़े हुए थे । उसके अंग की चमड़ी मुरझा गई थी । उसके हाड और मांस सूख गए थे... दरवाजे से निकट आते-आते तो वह बेचारा दो बार थकान उतारने के लिए रुका । लम्बे ताड़ जैसे, कमर से झुक गए, और हाँफते हुए, उसके हाथ में स्नात्रजल का पात्र था ।

महाराजा दशरथ टकटकी लगा कर कंचुकी को देखते रहे । यहाँ उनके जीवन का परिवर्तनबिंदु व्यक्त रूप में आ गया । कंचुकी की काँपती काया को देख कर दशरथ की आँख के सामने अपनी वृद्धावस्था का भीषण चित्र खिंच गया । जो कंचुकी पूर्व में पहलवान जैसा दिखता होगा, शायद दशरथ के भी निजी सैनिक के रूप में रहता हो, आज वही कालपुरुष का कोड़ा लगते ही वृद्ध बन कर कैसी कंगाल स्थिति में आ गया ! !

अविरत गति से इस विश्व में घूमता जाता कालपुरुष का हंटर

www.yugpradhan.com

कालपुरुष का हंटर घूमता है और एक आत्मा का जन्म होता है । वह बालक बनता है, सबका लाड़ला बनता है, दस वर्ष का होता है । कालपुरुष का हंटर आगे बढ़ता है और बच्चा किशोर होता है, युवा होता है । किसी युवती के साथ शादी करता है । अभी हंटर आगे बढ़ता ही जाता है । विवाहित युगल बच्चे को जन्म देता है । वह कल का किसी का बच्चा आज बच्चे का पिता बना है । ३५-४० वर्ष की उम्र होती है । व्यापार में बहुत अच्छी कमाई करने लगता है । अभी कालपुरुष सर्जन का अपना हंटर आगे घुमाता ही जाता है । अब तो वह प्रतिष्ठित व्यापारी बनता और ५०-५५ वर्ष की उम्र हो जाती है ।

परन्तु...कालपुरुष का हंटर अब उल्टा घूमता है । सर्जन की गह विसर्जन की तरफ आगे बढ़ता है । वह आदमी ५५ से धीरे-धीरे ६० वर्ष का होता है । शरीर रोगग्रस्त होता है । अशाताएँ चित्त को घेर लेती हैं । धीरे-धीरे कमर झुकने लगती है ।

कालराज का हंटर विसर्जन के अंतिम बिन्दु की तरफ वेग से बढ़ने लगता है । पूरे घर की चिंता के भार से वह त्रस्त हो जाता है । पुत्र की चिंता, पत्नी की चिंता, स्वास्थ्य की चिंता और सरकारकी भी चिंता-कई-कई टैक्स भरने हैं ? इन्कमटैक्स!

सेल्सटैक्स ! वेल्थटैक्स ! कर भर कर मरो । दौड़धाम करते जाओ । जीवन में कहीं शांति नहीं । कहीं रस नहीं । मानो चूसा हुआ आम ! अब तो बस मानो मात्र मरने के कसूर से ही जीवन पूरा कर देना शेष रहा है !

और एक दिन कालपुरुष का हंटर गति पकड़ता है । वह आदमी एक दिन मर जाता है ।

इस जगत में ऐसी सर्जन और विसर्जन की परिक्रमाएँ करता कालपुरुष का हंटर सदा घूमता ही रहता है ।

कंचुकी का प्रत्युत्तर और दशरथ का संकल्प

वह कंचुकी कहता है, "राजन् ! मेरा शरीर क्या आपको नहीं दिखता ? अब चलने की हिम्मत नहीं रही । इस पेट की खातिर ही हे महाराज ! यह सब करना पड़ता है । अब तो बस मौत की राह देखता दिन गुजारता हूँ ।" कंचुकी की ऐसी दशा देखते ही राजा दशरथ ने निर्णय किया कि,

"यावद्वयं इदृशा न स्मः तावदेव चतुर्थपुरुषार्थाय प्रतयामहे"

"जब तक इस शरीर में शक्ति है, तब तक चौथे मोक्ष पुरुषार्थ को मैं साध लूँ और उसके लिए दीक्षा के पुण्य मार्ग पर चला जाऊँ । अल्पकाल में ही वीतराग का मार्ग अपना कर जीवन का पंथ उज्जवल बना लूँ ।"

www.yugpradhan.com

राम के शब्दों में भी अहिंसा

कैकेयी पुत्र के मोह में फँस कर राम को वनवास देने में निमित्त बनी । यह बात बिल्कुल सही होने के बावजूद रावण का वध कर अयोध्या लौटे राम ने 'माँ कैकेयी' शब्द से ही कैकेयी को सम्बोधित किया है । इतना ही नहीं पश्चाताप से फूट-फूट कर रोती कैकेयी के मन को सत्य भी बोलने में आघात लग सकता है, यह सोच कर इतने अधिक प्रिय शब्द बोले हैं कि कैकेयी के हृदय को जरा भी ठेस न पहुँचे ।

दूसरों के हृदय को भी दुःख पहुँचा कर हिंसा नहीं करने का राम का कितना ऊँचा आदर्श !

राम ने उस समय कैकेयी से जो कृतज्ञता व्यक्त करते शब्द कहे थे, वह इस प्रकार हैं।

तातस्नेहो भरतमहिमा पौरुषं वायुसूनोः ।
सख्यश्चापि प्लवगनृपतेः क्वापि सौमित्रीभक्तिः ।।

सीता सत्यं निजभूजबलं वैरिणां वैरिभावः ।

ज्ञातं सर्वं तव चरणयो र्भक्ते रेकप्रसादात् ।।

ओ माँ ! तूने मुझे वन में चतुराईपूर्वक भेजने का पैंतरा रचा और मुझे इतनी महान् बातें जानने को मिलीं :

(१) पिताजी का मुझ पर अथाह स्नेह ।

(२) भरत की अनासक्ति की अपूर्व महिमा ।

(३) हनुमानजी की प्रचंड शक्ति ।

(४) वानरनरेश सुग्रीव की अपूर्व मैत्री ।

(५) लक्ष्मण की अपार शक्ति ।

(६) सीता के महासतीत्वरूप सत्य की झाँकी ।

(७) मेरा भुजबल ।

(८) शत्रुओं का कातिल बैरभाव ।

www.yugpradhan.com

ओ ! माँ कैकेयी ! इस जन्म में तेरे चरणों की मैंने जो सेवा की, उसके प्रभाव से मुझे यह सब जानने को मिला है ।

अहो मोहाधीनता !

"संसार की दुःखमयता का दर्शन कर मैं त्राहित हो उठा हूँ । सुखमय संसार भी मुझे अत्यंत डरावना लगता है, क्योंकि सुख की उस आसक्ति से दुःख और पाप का जन्म होता है । कैसा भयानक है यह संसार ! जिसमें हमारी इच्छा न हो, तो भी जन्म हुआ ही करें; पापभरे जीवन जीने पड़े; और अंत में तड़प कर मरना भी पड़ता है ।

भोगरस के मधुर मोह में जो उलझी, वह आत्मा व्यवहार में अच्छी नहीं हो सकती; उसे जीवन में शांति नहीं मिलेगी; सुख-सामग्री होने के बावजूद सुखी नहीं रहेगी; उसे मरण में समाधि नहीं, परलोक में सद्गति नहीं; मुक्ति की तो कल्पना भी नहीं हो सकती । ऐसे भोगरस से भरे इस संसार में अब मुझे एक पल नहीं रहना है । तुम सब मुझे छुट्टी दो; मेरी शेष जिंदगी में इस काया के जर्जर होने से पहले

मैं संभव हो उतने सुंदर ढंग से मोक्षमार्ग की आराधना कर लेना चाहता हूँ ।"

महाराजा दशरथ ने आज स्वजनों को एकत्र किया था और दीक्षा लेने के लिए संसार की भयानकता का वर्ण कर उपरोक्तानुसा प्रस्ताव किया ।

स्वजन सुनते ही रहे, परन्तु यह आर्यदेश था; उम्र होने पर आत्मकल्याण कर लेने की भूख सभी में जागती है । इसमें आश्चर्य नहीं था । घर के बड़ों ने अनुज्ञा देने में कोई हिचकिचाहट नहीं महसूस की ।

परन्तु संसार की भयानकता का वर्णन सुनते ही भरत को भी संसार पर वैराग्य जागा।

पिताजी को नमस्कार कर भरत ने कहा, "तात ! संसार की भयानकता का वर्णन आप कृपालु के श्रीमुख से सुन कर मुझे इस संसार से नफरत हो गई है । पुण्य के योग से संसार सुखमय मिले, तो भी पापमय है; और परिणाम दुःखमय है । यह बात मुझे बराबर समझ में आ गई है । फिर आपके बिना मैं यहाँ रह नहीं सकूँगा । आपके शेष-जीवन में और वह भी मुनिजीवन की घोर व उग्र साधना के समय में मुझे पुत्र के रूप में भी आपकी सेवा करनी चाहिए । पिताजी ! आपका हम सब पर असीम उपकार है, अतः मुझे आपकी सेवा का लाभ लेना ही है ।"

मैं आपका पुत्र ! और मैं आपका शिष्य ।

यदि आप मुझे साथ नहीं ले गए, तो मेरे लिए तो दोनों तरफ से मुसीबत ! आपका विरह ! और संसार का जंजाल ! नहीं... मुझे एक भी मंजूर नहीं है (नत्वा बभाषे भरतोऽहं, सर्वविरतिं प्रभो ! त्वयासमु पादास्येऽ ब्यस्थास्ये त्वां विना न हि! ममान्था; हि द्वेकष्टे, स्वामिन्नत्यन्तदुःसहे, एकं त्वत्पादविरहो, अपरंसंसारतर्पणम्)

भरत की बातें सुन कर सभी परिजनों के दिल बैठ गए ।

"युवावस्था ! हाल ही में विवाहित ! पिताजी की बात से वैराग्य ! कैसा साहस! कैसी पितृभक्ति ! कैसा अनुपम विराग !" सभी विचार में पड़ गए । महाराज दशरथ तो यह अनपेक्षित प्रस्ताव सुन कर स्तब्ध ही रह गए । माता कैकेयी को दिनदहाड़े आसमान में तारे दिखने लगे । वातावरण में कुछ पलों तक निःस्तब्धता छा गई

भारी मौन तोड़ते हुए महाराजा ने भरत से कहा, "वत्स ! असमय यह क्या कह दिया ! अभी तेरी उम्र छोटी है; भोग योग्य आयु में योग के विचार सुंदर नहीं लगते।

www.yugpradhan.com

मेरे जैसी आयु होने पर खुशी से तेरे आत्मकल्याण का रास्ता अपनाना ।"

"पिताजी ! आप यह क्या कह रहे हैं ? मरण की किसे खबर है ? माता के गर्भ में ही कई आत्माएँ मर गईं ? बच्चे कितने मर गए ? युवा कितने मरण के मुख में धकेल दिए गए ? कई नवोढाओं की माँग उजड़ी ? कई माताओं ने अपने लाड़लों को गँवाया ? क्या आप मेरी दीर्घायु को लेकर आश्वासन दे सकते हैं ? यदि मेरी मृत्यु को आप रोक सकते नहीं है, तो मुझे आप कैसे रोक सकते हैं ?"

"परन्तु बेटा ! तू गृहस्थ जीवन में रह कर ही धर्म कर । तारक परमात्मा ने मुनिधर्म की तरह श्रावकधर्म भी कहाँ नहीं दिखाया है ? वह भी मोक्ष का मार्ग ही है न ?", दशरथ ने कहा ।

"तो पिताजी ! आप क्यों मुनिधर्म को स्वीकारने को उत्सुक हैं ? अतः कृपा कर मुझसे ऐसी बात न करें", भरत ने कहा ।

"बेटा ! दूसरी सब बात जाने दे । यदि तू इस तरह दीक्षा के लिए हठ करेगा, तो मेरी दीक्षा में भी विघ्न पड़ेगा ।"

www.yugpradhan.com

"पिताजी ! उसमें विघ्न का कोई स्थान नहीं है । धर्मी परिवार में ऐसे विघ्न हो ही नहीं सकते", भरत बोले ।

सभी शून्यमनस्क हो गए । अभी यौवन की दहलीज पर जिसने पैर रखा है, वह भरत तलवार की धार जैसे मुनि जीवन के मार्ग पर पैर रखने को सज्ज बना है ! यह बात अभी अपने कान से सुनी गई है, यह बात कोई स्वीकारने को तैयार नहीं था ।

सबसे अधिक दुःखियारी कैकेयी बन गई थी । उसने सोचा, "मेरे लिए तो पति को रोकने में दुःख है... नहीं तो लोग मुझे ही पागल और वासनांध कहेंगे । भले उन्हें इस उम्र मं आत्मकल्याण की आराधना करनी हो, तो मेरा निषेध भी नहीं है, किन्तु इस भरत का क्या ? क्या मुझे पति व पुत्र दोनों खो देने ? अरे ! तो मैं एक क्षण भी नहीं जी सकूँगी... शायद जिऊँगी, तो भी अयोध्या में दर-दर भटकती पागल कैकेयी के रुप में... बेटा भरत ! वापस आ... तू कहाँ है ? अंततः कुत्ते की मौत किसी कोने में मरूँगी । गिद्ध ही मेरा क्रियाकर्म करेंगे ।"

"परन्तु... परन्तु... मैं भरत की माँ हूँ... मुझे उसकी माँ के रूप में जीना है। भरत को खो देना असहनीय होगा। मैं क्या करूँ ? क्या उपाय करूँ ?" सौ मीटर की रफ्तार से चलती ट्रेन के वेग से कैकेयी के मन में अनेक विचार कौंधने लगे। अनेक प्रश्न हंसिये की तरह उसके चित्त में जागृत होने लगे।

(न य मे पई न पुत्तो, दोण्णि वि दिक्खाहिलासिणो जाया, चिन्तेमि तं उवायं जेण सुयं न नियत्तेमि।)

नारी मात्र नारी नहीं है; वह मात्र स्त्री नहीं है... वह माता भी है; भिगनी भी है; भाभी भी है। अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए वह अबला और सबला भी है।

कुछ पल गुजरे। कैकेयी के मस्तिष्क में विद्युत वेग से विचार कौंधा। उसकी चमक देख कर वह आनंदविभोर हो गई।

एकदम गंभीर होकर बोली, "स्वामीनाथ ! आपको वह वरदान याद है ? मैंने आपके पास पूँजी स्वरूप रखा है वह... मेरे विवाह के स्वयंवर मंडप में हुआ युद्ध।" उदास मुख को ऊँचा कर महाराज दशरथ बोले, "हाँ... जरूर... सब कुछ जस का तस याद है। बोल, तुझे क्या चाहिए ? आज ही मांग ले... जो मांगे, वो दूँ... हाँ सर्वविरतिस्वरूप चारित्रधर्म के स्वीकार में बाधा डालने को छोड़ कर सब कुछ। (अथावदत् दशरथः प्रतिपन्नं स्मराम्यहं, याचस्व यन्ममाधीनं विना व्रतनिषेधनम्।)"

तुरंत कैकेयी ने कहा, "आप खुशी से चारित्र धर्म का स्वीकार करो, परन्तु अयोध्या के सिंहासन पर मेरे भरत को आरूढ़ करो।" (ततो ययाचे कैकेयी, त्वं चेत्प्रव्रजसि स्वयं, स्वामिन् ! विश्वंभरामेतां भरताय प्रयच्छ तत्)

ये शब्द सुनते ही सभी के अंतर में जोरदार झटका लगा ! राज्य की विरासत राम ! फिर भी भरत को गद्दी ! एक माता की मोहाधीनता के कारण ऐसा सरेआम अन्याय ! प्रत्येक अंतर कम्पन के साथ बोलता था।

परन्तु जरा भी हिचके बिना विद्युत वेग से महाराज दशरथ ने उत्तर दे दिया, "जा... दी पूरी अयोध्या की धरती; भरत को।" {(१) सुंदरि ! पुत्तस्स तुज्झ रज्जं ते दिन्नं मए समत्थं, गेण्हसु, मा चिरावेहि... (२) अद्यैव गृहयतामेषा मद्भूः}

www.yugpradhan.com

व्यर्थ लड़ाई

"बेटा राम !" दशरथ ने रामचंद्र को पुकारा । राम और लक्ष्मण दोनों "जी" कहते दौड़ते आए । पिताजी को नमन कर खड़े रहे ।

"वत्सों ! दोनों बैठो", दशरथ ने कहा । "बात ऐसी है कि काफी समय से पूंजी रूप रखे वरदान की आज कैकेयी ने मुझसे मांग की । मुझे संसार का त्याग करना है। इसीलिए सभी ऋणों से मुक्त हो जाना चाहिए; इसीलिए जैसे उसने वरदान के रूप में अयोध्या का राज्य भरत के लिए मांगा, मैंने तुरंत दे दिया । बेटा राम ! राज्य का अधिकारी तो तू है, परन्तु ऋणमुक्त होने के लिए यह राज्य मैं भरत को देता हूँ ।

वत्स ! तू सहमत है न ?", रामचंद्र के मुख के सामने देख कर एक-एक शब्द बोलते हुए महाराज दशरथ ने राम से पूछा ।

परन्तु राम का मुख उदास हुआ देखा । महाराज दशरथ के अंतर में असमंजस पैदाहो गया ! वह मन ही मन बोल उठे, "राम को दुःख क्यों नहीं होगा ? हकदार है राम ! और भरत को मैंने राज्य सौंप दिया ! अरे ! राम की सहमति लेने तक का विलम्बनहीं किया ! अब उसे दुःख नहीं तो और क्या होगा ?"

www.yogpradhan.com

टूटे शब्दों से दशरथ बोले, "बेटा राम ! तू दुःखी नहीं हो । यह तो ऋणमुक्त के लिए ही मुझे तेरा हक छीनना पडा !" इन शब्दों से और उदास हुए राम बोले, "पिताजी ! ओ पिताजी ! आप क्या कह रहे हैं ? मुझे यह समझ में नहीं आता कि आप क्यों हमारी सहमित मांग रहे हैं ? दिल की धड़कन से बात कर रहे हैं ? मुझे राज्य का सच्चा हकदार बता कर क्यों आश्वासन दे रहे हैं ?"

राम बोले, "आज मुझे समझ में आया कि मैं सच्चा पितृभक्त नहीं बन सका। अन्यथा पिताजी को ऐसी सहमति की औपचारिकता करने का विचार भी नहीं आता ।" "पिताजी ! आप मुझे राज दें या भरत को; यह तो सब एक ही है ! अरे ? भरत की भी कहाँ बात है ? आपको यदि लगता है कि मुझे अयोध्या के राजमहल पर पहरा देते पहरेदार को यह राज देना है, तो क्या हो गया ? इसमें कभी इस राम या लक्ष्मण बाधा बनेंगे भला ? नहीं... जरा भी नहीं ।"

"पिताजी ! आप जो करें, वह भगवान के किए बराबर । लो, आप भरत को

राज्यारूढ़ करो; और मैं उस अयोध्यापति भरत का छड़ीदार बनूँगा ।"

"तो पिताजी... मेरी भी बात सुन लो । बड़े भाई अयोध्यापति भरत के छड़ीदार, तो यह लक्ष्मण अयोध्यापति भरतेश्वर का चामरधर बनेगा", लक्ष्मण ने कहा ।

इन शब्दों को सुनते ही खंड में प्रवेश करते शत्रुघ्न ने कहा, "तो फिर यह शत्रुघ्न अयोध्यानरेश महाराजा भरत का छत्रधर बनेगा ।"

तीनों पुत्रों की बात सुनते ही महाराज दशरथ की आँखों से धड़ाधड़ हर्ष के आँसू बहने लगे ।

आँसू पोंछते हुए दशरथ बोले, "शाबाश ! पिर्य पुत्रों ! शाबाश ! आर्यदेश के सुपुत्र ऐसे ही होते हैं ।"

परन्तु... एक तरफ बैठे भरत से यह सब सुना नहीं जा रहा था । उसका अंतर फूट-फूट कर रो रहा था ।

"हाय ! माता की मोहदशा ने मेरा सत्यानाश कर दिया", उसका मन बोल रहा था।

जरा स्वस्थ होकर भरत ने कहा, "परन्तु... राज चाहिए किसे ? बृहद बंधुओं! क्यों तुम ऐसी बात करते हो ? आप स्पष्ट रूप से जान लो कि भरत संसार से विरक्त हो चुका है । उसे राज नहीं चाहिए । वह पिताजी के साथ दीक्षा ही लेगा और पिताजी-गुरुजी की सेवा करके उसका जीवन धन्य बनाएगा । अयोध्या के महल के वैभवी सुख भरत के लिए पिताजी की सेवा और सर्वविरति धर्म की आराधना के रसास्वाद के सामने बेचारे हैं; कंगाल हैं; बौने हैं । कृपा करके अब यह बात मत करना नहीं । अरे ! राजेश्वरी तो नरकेश्वरी है ! नहीं... मुझे दुःखविभोर संसार बिल्कुल नहीं चाहिए ! (सो भणई नत्थि कज्जं रज्जेणं, महं करेमि पव्वज्जं; मा तिव्वदुक्खपऊरे, ताय ! भमिस्सामि संसारे ।)"

भरत के ये उद्‌गार सुन कर दशरथ दुःखमग्न हो गए । अब क्या करें ? भरत की अत्यंत स्पष्ट बात से सभी के मुँह सिल गए !

कुछ देर बाद महाराज दशरथ ने मौन तोड़ा । वे बोले, "बेटा ! भरत ! यह तू क्या कर रहा है ? यदि तू अयोध्या का राज नहीं स्वीकारेगा, तो मैं किस तरह तेरी माता के ऋण से मुक्त होऊँगा ? और फिर कैसे दीक्षा ले सकूँगा ? अतः तू कुछ

भी करके मुझे इस आपत्ति से बाहर निकाल ।"

"पिताजी !" आँख में आँसू के साथ भरत बोले, "मैं इस संसार कारागार में फँसा हूँ । मुझे अपने साथ ले जाकर इससे मुक्त करो; मुझसे इस संसार में नहीं रहा जाएगा ।"

भरत की आँख में आँसू थे; परन्तु दिल में कठोरता दिख रही थी; शब्दों में दृढ़ संकल्प उजागर हो रहा था ।

सभी उलझन में पड़ गए । सभी अवाक् बन गए । अब क्या किया जाए ?

रामचंद्र गहरे विचार में मग्न हो गए । उनके दिल में दो विचार मंथन बन कर परेशान कर रहे थे ।

पहली बात : पिताजी की दीक्षा लेने की इच्छा पूरी करने में रुकावट आई ।

दूसरी बात : पिताजी ऋणमुक्त नहीं हो रहे थे ।

राम ने सोचा; दोनों बातें तभी संभव होंगी, जब भरत राज्य का स्वीकार करे। 'हं... अब याद आया', राम मन ही मन बोले । "भरत विरक्त बना है । अतः राज्य नहीं ले रहा है, यह बिल्कुल सही है; परन्तु यह भी तो सही है कि बड़ा भाई हाजिर हो, तो भी भरत राज्य नहीं ही लेगा ।"

यदि मैं यहाँ से चला जाऊँ तो !... हाँ... तो वह राज्य स्वीकारेगा; अरे ! फिर तो उसे राज्य स्वीकारना ही पड़ेगा... और यदि ऐसा हो जो, तो पिताजी दीक्षित हो जाएं और ऋणमुक्त हों... दोनों काम हो जाएं...

"बस... तो फिर... मुझे यहाँ से हट जाना चाहिए; इसके अलावा कोई विकल्प नहीं दिखाई देता है ।"

स्वगत विचार करते हुए राम यकायक खड़े हुए ।

"पिताजी ! प्रणाम करता हूँ । जब तक राम-भरत का बड़ा भाई-अयोध्या में है, तब तक विनीत शिरोमणि भरत अयोध्या के राज्य पर आरूढ़ नहीं होगा, यह बिल्कुल स्वाभाविक बात है ।"

"अतः पिताजी ! आपकी दोनों भावनाएँ पूर्ण करने के लिए राम वनवास स्वीकारता है । (रामो राजानमित्युचे भरतो मयि सत्यसौ, राज्यं नादास्यते, तस्माद्वनवासाय

याम्यहम्)"

इतना कह कर तुरंत राम खंड से बाहर निकल गए ।

(पौद्गलिक सुखों की खातिर अधिकार की ही नहीं; हराम की भी मारपीट करने से नहीं लज्जित होने वाले आर्यों ! व्यर्थ लड़ाई कर रहे दशरथ-पुत्रों का रोज स्मरण करना; उनकी पितृभक्ति का आदर्श जीवनसात् करना । भोगों के पलीत से तुरंत बाहर निकलाने का संकल्प करके ही रहना ।)

राम वन में जाते हैं

पिताजी को नमस्कार कर राम राजमहल से निकल गए ।

परन्तु महादेवी सीता का क्या ? उसे पूछना भी नहीं ?

नहीं... रामचंद्रजी के मन में ऐसा कोई सवाल पैदा नहीं हुआ ।

वे तो सीधे माता कौशल्या के पास गए । उन्हें नमस्कार करके वनगमन की बात कही । माँ से वनगमन की आज्ञा मांगी ।

www.yugpradhan.com

उस समय वन के प्रति जाने को उतावले हुए राम से कौशल्या ने कहा, "ओ पुत्र ! उतावला मत बन । एक क्षण खड़ा रह । इस दौरान इस विनाशी देह से मैं ही निकल जाऊँ और फिर तू वन में जहाँ जाए, वहाँ मेरी यह आत्मा तेरे आगे-आगे चलती रहे; तेरे मार्ग को निर्विघ्न बनाती जाए । यदि मैं ऐसा करूँ, तभी बेटा! तेरी सच्ची माँ कहलाऊँ ।" (ताताज्ञया तात ! वनं प्रयाहि, व्याजेन बाल ! क्षणमत्र तिष्ठ, पन्थानमावेदयितुं मदीयाः, प्राणा बहिर्भूय पुरस्सरन्तु-उद्भटसागर)

राम के विरह की कल्पना को कौशल्या बर्दाश्त नहीं कर सकीं । प्राणत्याग करने तक की सोच में वह पड़ गईं । उनका आघात जानलेवा था, परन्तु रामचंद्रजी ने एक ही बात कह कर उन्हें संभाल लिया : उनके हृदय में साहसभर दिया । उन्होंने कहा, "माँ ! ऐसी निर्माल्यता के वचन तेरे मुख में कभी शोभा नहीं देते । तू यानी कौन ? अयोध्या नरेश महाराजा दशरथ की पत्नी ! तेरा गांभीर्य; तेरी धीरता, तेरी दीर्घदृष्टि-सब बेजोड़ होनी चाहिए । पिताजी की अंतिम इच्छा पूरी करने के लिए और उन्हें माँ-कैकेयी के ऋण से मुक्त कर देने के लिए मैं वन में जा रहा हूँ; क्या मुझे एक सच्चे पुत्र के रूप में पिताजी की इच्छापूर्ति की भक्ति का धर्म नहीं निभाना

चाहिए । माँ.... चल, आशीर्वाद दे ।"

और... कौशल्या ने सिर पर हाथ रख कर राम से कहा, "शिवास्ते पन्थानः सन्तु।"

राम वहाँ से निकल गए ।

इधर महादेवी सीता को आर्यपुत्र रामचंद्रजी की विदाई के समाचार मिले । "पति के कदम पर कदम रखे; सुख-दुःख में संगिनी बने वही पत्नी ।" इस चिंतन से महादेवी को आत्मसात् हुआ था । इसीलिए वे तुरंत ही पहने कपड़े अपने खंड से बाहर निकल गईं । दूर से ही ससुरजी को प्रणाम कर सास कौशल्या के पास गईं।

सीता को देखते ही कौशल्या बोलीं, "बहू ! तू भी वन जाना चाहती है ? नहीं... नहीं... ओ जानकी ! तू तो गुलाब की कली है ! नजाकत नारी ! कोमल तेरी काया! राजपरिवार के लाड़-भरे माहौल में तेरा पालन हुआ ! सूर्य की तेज किरणें भी तेरी नाजुक काया को कभी छू नहीं पाईं । कुछ भी हो राम पुरुष हैं; तू स्त्री है । वन में तेरा काम नहीं है । पुत्री ! नहीं... तुझे नहीं जाना है । अहो ! वन में तो दुःखों का पार नहीं होगा; सभी कुछ सहना होगा; खाने-पीने का ठिकाना नहीं होगा... नहीं... बेटा! तुझे अनुमति नहीं दूँगी", एक ही साँस में सास कौशल्या बोल गई ।

www.vadpradhan.com

सीताजी ने कहा, "सासुजी ! आपकी सभी बातें सही हैं, परन्तु ऐसे भयानक वन में आर्यपुत्र को किसका साथ रहेगा ? ऐसे समय में तो मुझे उनकी सेवा में साथ ही रहना चाहिए न ? मुझे तो आर्यपुत्र मिले तो जंगल में भी मेरे लिए तो वह महामंगल ही है । उनके बगैर यह महलभी मेरे लिए तो जेल है । सासुजी ! मुझे आज्ञा दीजिए ।"

परन्तु ऐसे तो कौशल्या भला कैसे सीता को आज्ञा देतीं ? सीता के सामने देखते ही वह निःस्तब्ध बन गईं ।

पुनः सीताजी ने कहा, "सासुजी ! वन में दुःखों की कल्पना से आप काँप उठती हैं न ? परन्तु लो... मुझे आप अंतःकरण से ऐसा आशीर्वाद दो कि दुःख मेरे लिए गुलाब की सेज बन जाएं । लो, जल्दी करो... आर्यपुत्र आगे बढ़ रहे हैं ।" ऐसा कह कर सासु की गोद में बहू ने सिर रख दिया... कौशल्या के हर्ष और शोक के बह रहे आँसू से बहू का सिर बिल्कुल भीग गया । सीता को सीने से लगा कर, उसका

सिर सूँघ कर कौशल्या ने गदगद् कंठ से आज्ञा देते हुए कहा, "बेटा ! जा... खुशी से जा... यही तेरा पतिधर्म है; तू उसे अचूक निभा... मेरा तुझे लाख-लाख आशीर्वाद है ।"

और... तुरंत ही सीता वहाँ से निकल गईं । उसकी पीठ देख कर कौशल्या की आँखों से हर्ष-शोक के सावन-भादौ बह रहे थे ।

उसे हर्ष था; दुःख में भी पति की जीवन-साथी बनने वाली सीता की सास बनने का सौभाग्य मिलने का ।

उसे शोक था; वन के दाहक दुःखों में उस निरपराधिनी को खुद को झोंकना पड़ा, इसका ।

राम तो ठीक-ठीक आगे बढ़ गए थे । वायुवेग से अयोध्या में सारे समाचार फैल गए । हजारों स्त्री-पुरुषों की भीड़ घरबार छोड़ कर राजपथ की तरफ दौड़ी आ रही थी।

आकुल-व्याकुल बनी सीता, आर्यपुत्र तक पहुँचने की कोशिश करती तेजी से चलने लगीं । हजारों स्त्रियाँ उसे देख कर स्तब्ध बन गईं । अवाक् हो गईं । सीता को देख कर सभी के मुँह से एक ही शब्द निकल रहा था ।

"अहो महासती !"

"अहो महासती !"

"अहो पतिव्रता-नारी !"

"अहो सुख-दुःख में समान जीवनसंगिनी !"

"महल के सुखों में भी तू नहीं लिपटी ! वन के दुःखों से भी तू नहीं घबराई।" सभी के मस्तक सीता के समक्ष झुक जा रहे थे ।

लक्ष्मण का प्रिय भाई राम

लक्ष्मण को समाचार मिले, "राम वन की तरफ विदा हो चुके हैं ।" और मानो लक्ष्मण के सिर पर वज्राघात हुआ । पैर से सिर तक लक्ष्मण क्रोध से जलने लगे। शैय्या पर से खड़े होकर अस्वस्थ बने लक्ष्मण खंड में व्याकुल हृदय से चक्कर लगाने लगे । कभी क्रोध से मुट्ठियाँ पीसते; कभी दाँत पीसते; कभी उनकी आँखें लाल हो जातीं । उनका मस्तिष्क बहुत ही वेग से विचार करने लगा ।

"क्या कर डालूँ ? राम को वनवास ! रे ! यह तो स्वप्न है या सत्य ! ओह, यह सब कारगुजारी उस कैकेयी की ही है, सौतेली माँ और क्या करेगी ? परन्तु इतनी हिम्मत से एक स्त्री अपने पति से पुत्र के लिए राज मांगने की चेष्टा करे, यह क्या संभव है ? जरूर... इसके पीछे उस नालायक भरत का ही बल हांगा । उसी ने माँ से राज की मांग की होगी । भले... भले... उस भरत से तो मैं निपट लूँगा। अब उसका मैं साक्षात् काल हूँ । पिताजी ने तो उस माँ-बेटे को राज दे दिया यानी पिताजी ऋणमुक्त हो ही गए, अत: यह फिक्र तो रहती ही नहीं है कि पिताजी की ऋणमुक्ति का क्या होगा ?"

"तो अब मैं और भरत... हम दोनों ही हमारा फैसला करें । बड़े भाई राम को जंगल में धकेल कर राज करना है न भरत को ? देर है देर ! यह लक्ष्मण उसे कुछ ही पलों में यमलोक भेज देगा । बस... अभी ही जाता हूँ; द्वंद्व युद्ध के लिए उस भरत का आह्वान करता हूँ और एक ही मुष्टि में रक्तरंजित कर उसे ध्वस्त कर देता हूँ; मौत के मुख में धकेल देता हूँ ।"

www.yugpradhan.com

"फिर ?...फिर क्या ? युद्ध की नीति से सीना दिखा कर लड़ाई करके-जीता अयोध्या का राज बृहद बंधुओं के चरण में रख दूँगा ! बस... मेरा काम वहीं पूर्ण होता है ।"

इतना सोच कर, भरत की तरफ जाने के लिए लक्ष्मण ने पैर उठाया, तभी उनके मन में एक विचार कौंध गया, और एकदम रुक गए ।

उन्होंने मन में सोचा, "भरत से इस तरह लड़ाई कर राज छीन लूँ, तो पिताजी को भयंकर आघात लगेगा ? वे सोचेंगे कि मेरे दो पुत्र परस्पर लड़े ! भौतिक सुख की खातिर ! छोटी सी धरती के विनाशी टुकड़े की खातिर लड़े ! हाय ! मेरे कुल को कलंक लगाया ! मेरी ७१ पीढ़ी को कलंकित किया ! पौद्गलिक सुखों की खातिर आर्यों ने कभी क्लेश नहीं किया ! क्लेश करो वह आर्य कहलाएगा ?"

लक्ष्मण ने आगे बढ़ कर सोचा कि इससे तो पिताजी को जानलेवा आघात लगेगा । यह तो जले पर नमक छिड़कने जैसा होगा ।

फिर इससे बड़े भाई भी क्या आनंदित होंगे ? राज्य का स्वीकार करेंगे ? नहीं...

रे... नहीं... इस बात में कोई दम नहीं है । पिताजी और बृहद बंधु-दोनों ही कितनी उन्नत स्तर के धर्मात्मा हैं ? इस बात से मैं कहाँ अनजान हूँ ?

"तो क्या करूँ ? भरत से लड़ाई नहीं करूँ ? जाने दूँ ? सही है... जाने दो सब कुछ ! मुझे इस विवाद में पड़ना ही नहीं है । मुझे तो बड़े भाई चाहिए । वे मिले, तो मेरे लिए स्वर्ग के दरबार खुले । चलो; बड़े भाई के साथ चला जाता हूँ । वन में उनकी सेवा करने का ऐसा लाभ मुझे कहाँ मिलेगा ? रात-दिन उनकी सेवा... सिर्फ सेवा... वे काया तो मैं उनकी छाया...

इससे ज्यादा मुझे चाहिए भी क्या ? उनकी सेवा का आनंद मिलता हो, तो वन में कष्टों के दुःख भी मेरे लिए तुच्छ हैं ।

मुझे यदि राम का दासत्व मिलता हो, तो तीन जगत का स्वामित्व भी मेरे लिए दो बादाम जैसे हैं । कहाँ दासत्व का अपार आनंद ! और कहाँ अयोध्या के स्वामित्वभाव का तुच्छ सुख ! बस । तो अब मैं भी चला ।"

इस तरह मन ही मन संकल्प कर भरत की तरफ उठाया कदम लक्ष्मण ने कौशल्या की तरफ उठाया ।

www.yugpradhan.com

कुछ ही पलों में लक्ष्मण कौशल्या के पास पहुँच गए । उसे देखते ही सब कुछ समझ चुकी कौशल्या बोलीं, "बेटा ! राम तो गया; परन्तु तू भी - मेरा पुत्र - जाएगा ? अरे ! तेरी इस माता की तुझे भी चिंता नहीं है ! नहीं... नहीं... मेरी सांत्वना की खातिर-राम के विरह में तेरा दर्शन तो मुझे आश्वासन देगा ही । इसलिए भी तू रह जा ।"

लक्ष्मण ने पैरों में गिर कर कहा, "माँ... राम के बगैर यह लक्ष्मण एक दिन भी जीवित नहीं रह सकेगा । फिर बड़े भाई और भाभी-दोनों ही सेवा करने का ऐसा अवसर मिला है । मैं उसे जाने नहीं दे सकता । बस माताजी ! जाता हूँ", इतना कह कर कौशल्या का आशीर्वाद लेकर लक्ष्मण स्व-माता सुमित्रा के पास गया ।

लक्ष्मण को देखते ही सुमित्रा ने कुछ आवेश में आकर कहा, "ओ मूर्ख लक्ष्मण! पुत्र ! अभी तू यहीं भटक रहा है ? तुझे पता नहीं है कि राम कितने ही आगे निकल गए होंगे ? एक कदम भी उनसे दूर कैसे रहा जा सकता है ? जा पुत्र ! जल्दी कर!

और देखना... भाई और भाभी की सेवा के इस अनमोल अवसर को गँवाना मत । थोड़ा सहन करके भी सेवा करना, जीवन में ऐसे सुकृत कवचित ही मिल जाते हैं ।"

उत्साह के साथ माता ने लक्ष्मण को आशीर्वाद दिए । लक्ष्मण वहाँ से तुरंत निकले । वे मन ही मन बोले, "पुन: जन्म लेना ही पड़े, तो ऐसी माता की कोख से ही मिले ।"

सुमित्रा के खंड से निकलते ही उन्होंने एक कोने पर खड़ी अपनी प्रियतमा उर्मिला को देखा । आँख की भाषा से उर्मिला ने पूछ लिया, "मैं भी साथ ही आऊँ न ?"

लक्ष्मण ने कहा, "उर्मिला ! तेरा मनोभाव बिल्कुल यथार्थ है, परन्तु यदि तू भी मेरे साथ आएगी, तो माता कौशल्या और माता सुमित्रा की सेवा कौन करेगा ? यहाँ रहने से तुझे दो-दो सासों की सेवा का लाभ मिलजाएगा । फिर तू मेरे साथ वन में आई, तो बड़े भाई और भाभी की सेवा करने में मेरे लिए विघ्न पैदा होगा।"

और... उर्मिला के मन का भाव "वन में आपका कौन ? आपकी सेवा कौन करेगा ?" जान कर लक्ष्मण ने कहा, "उर्मिला ! मेरी तो जरा भी चिंता नहीं करना। जो राम का दास बने, उसकी समग्र प्रकृति दास बन जाती है । बोल, अब तुझे मेरी भी चिंता नहीं करनी है ।"

www.yogpradhan.com

ठीक है... अब चलता हूँ... दोनों सासों की बहुत सुंदर सेवा करना ! इतना कह कर रामचंद्रजी को पकड़ने के लिए लक्ष्मण तेजी से चलने लगे ।

राम का साहचर्य सीता को मिला... इससे उसके मन में मानो स्वर्ग उतर आया !

लक्ष्मण का साहचर्य उर्मिला ने खोया । उसके लिए राजमहल भी भूत महल बना।

सीता स्वर्ग में रही... और

उर्मिला ने तो दु:ख कितना अधिक झेला ? पति का साहचर्य पाने वाली सीता ने ? या पिता की आज्ञा पर पति का वियोग स्वीकारने वाली उर्मिला ने ?

तो कौन महान ? सीता या उर्मिला ? सभी सोचना ।

आर्यदेश के ऐसे थे आदर्श !

आज ये कब्र में सो गए हैं !

सुमित्रा ने सोचा, "इस समय कौशल्या कैसी दुःखी होगी ? चलो वहाँ जाऊँ और उसे आश्वासन दूँ !"

सुमित्रा कौशल्या के पास गईं । उसकी कल्पना के अनुसार ही कौशल्या फफक-फफक कर रो रही थीं ।

सुमित्रा, "निराधार का आधार" बन गईं । उन्होंने कौशल्या से कहा, "रोओ मत ।"

"सूर्य का दर्शन भी नहीं हो, ऐसे घने वन में राम गए हैं; परन्तु उनके अंतर में रही परार्थरसिकता, स्वार्थिलोपन, निष्कलंक चारित्र, गांभीर्य आदि गुण ही ऐसे हैं कि उसे देख कर सूर्य भी उन्हें तपन नहीं देगा, बल्कि उनका सम्मान करेगा; वायु भी अनुकूल होकर चलेगी, ऋतुएँ अनुकूल बन कर रहेंगी, मर्यादा पुरुषोत्तम राम जब वन में सोते होंगे, तो पृथ्वी माँ बन जाएगी और उन्हें शांति से सुला देगी । झरने उन्हें पानी पिलाएंगे; तिनके उन्हें घर बना देंगे; हिरन उनके साथ मस्ती कर आनंद देंगे । जिसके पीछे ईशसत्ता अडिग खड़ी है, उसका तो ईश्वर भी बाल बाँका नहीं कर सकता । अतः आप सर्वथा चिंतामुक्त हो जाओ ।"

ग्रीष्म की धधकती दोपहर हो ! धरा मरुभूमि हो ! वह एकदम तप गई हो ! चारों ओर लू चल रही हो ! आग... आग... वातावरण बन गया हो, उसी समय वहाँ अवनि से गंगोत्री के शीतातिशीत जल का प्रवाह छूटे और सर्वत्र बहने लगे तो?

सुमित्रा के शब्दों ने कौशल्या के लिए गंगोत्री के कलकल बहते जल प्रवाह की कमी पूरी की ।

(दोनों शौक्य ! फिर भी कैसा प्रेम ! आज दोनों सगी बहनों में ही ऐसा प्रेम होगा ?)

रामचंद्रजी और सीता के बीच का अंतर लगभग खत्म हो गया । तभी लक्ष्मण ने वन का रास्ता पकड़ा । तेजी से आगे बढ़ने लगे ।

जैसे-जैसे नगर में यह आघातजनक समाचार फैलते गए, लाखों नागरिक वन की तरफ दौड़ते चलने लगे । मानो यह रास्ता जनसैलाब से उभर गया ।

राम रहित नगर की कल्पना भी राम-प्रिय नागरिकों के लिए असंभव थी । यदि

राम नहीं; तो हम भी नहीं... सभी राम के पीछे चलने लगे । पूरा नगर तेजी से खाली होने लगा ।

इधर महाराजा दशरथ राम के विरह की व्यथा से अधिकाधिक व्यग्र बनते गए। इस व्यथा ने मस्तिष्क पर अत्यंत जोरदार झटका दिया । और... यकायक पहने कपड़ों में महाराज दशरथ भी राजमहल से दौड़े...."बेटा राम ! ओ, पुत्र राम ! बेटा! वापस आ ! वापस लौट ! तेरे बिना मैं जी नहीं सकूँगा । बेटा राम ! ओ राम!"

महाराज दशरथ सिसक-सिसक कर रोते जाते हैं; दौड़ते जाते हैं और करुण स्वर में "बेटा राम ! ओ राम ! हे राम !" पुकारते जाते हैं । प्रजा भी रोती है; राजा भी रोते हैं । कौन नहीं रो रहा ? यही सवाल बन गया है ।

अरे ! जो हाहाकार मचाने में अनजाने भी निमित्त बन गई, वह कैकेयी भी झरोखे में बैठ कर फफक-फफक कर रोती है ।

उसने राम को जाते देखा ।

www.yugpradhan.com

सीता को जाते देखा ।

लक्ष्मण को जाते देखा ।

लाखों नर-नारियों को भागते देखा ।

अरे ! अंततः अर्धपागल जैसी दशा में, रोते, बिलखते 'राम ! राम !' का चीत्कार करते राम के पीछे जा रहे महाराज दशरथ को भी देखा... नहीं थी उनके पैरों में स्वस्थता... पैर काँप रहे थे...

नहीं थे उनके हाथ स्थिर... वे दोनों तरफ मानो लटक रहे थे ।

उनकी आँखें अनावरत आँसू बहा रही थी । उनकी करुणा से भी करुण अति करुण दृश्य देख कर 'धड़ाम' से कैकेयी झरोखे से फसक पड़ी ! बेहोश होकर धरती पर लगभग अचेत बन कर गिर गई । कैकेयी के अंतिम शब्द थे, 'हे राम ! मुझे क्षमा कर ।'

किसी नागरिक ने दौड़ते हुए पहुँच कर रामचंद्रजी से कहा, "पिताजी पीछे आ

रहे हैं ।"

यह सुनते ही रामचंद्रजी को मानो बिजली का झटका लगा ! वे वहीं खड़े रह गए; पीछे मुड़े । पिताजी के पास पहुँच गए । बहुत समझा कर दशरथ को लौटाया। बेमन से दशरथ लौटे, परन्तु फिर भी राम को और समझा कर अयोध्या वापस लाने के लिए दशरथ ने मंत्रियों को भेजा । परन्तु रामचंद्रजी ने उन्हें भी समझा कर लौटा दिया ।

इधर भरत माता कैकेयी को अति कठोर शब्दों में फटकार लगा रहा था । अपने प्रति काली मोहदशा ने राज्य के सच्चे अधिकारी, महामानव बड़े भाई राम का वनवास होने में कैकेयी निमित्त बन गई ।

अजैन रामायण में भरत का आक्रोश आसमान छूने वाला कहा गया है । उसे यहाँ तक सोचा कि मुझे धिक्कार हो । मैंने कितने जन्मों के पापक्रम संचित किए होंगे कि ऐसी पापिनी, डाकिनी, शाकिनी माता के पेट से मेरा जन्म हुआ !

धिङ्मां जातोऽस्मि कैकेय्यां, पापराशि विधानतः ।
मन्निमित्तामिदं कलेशं रामस्य परमात्मनः ।

www.yogpradhan.com

कहते हैं कि भरत ने माँ को माँ कहना बंद कर दिया था । उसका कैकेयी को बहुत आघात लगा । जब रावण वध कर राम अयोध्या लौटे, तो माँ कैकेयी के चरणों में गिरने के बाद राम से उसने यह शिकायत की थी । राम ने भरत से पूछा था, "भरत ! क्या तू अपनी माँ को माँ नहीं कहता !"

भरत ने जवाब दिया, "ऐसी पापिनी मेरी माँ को मैं माँ कैसे कहूँ ?"

भरत का यह वाक्य सुनते ही कैकेयी प्रसन्न होकर कह उठी, "हे प्रिय राम ! मेरा काम हो गया । अभी-अभी उसने मेरी माँ शब्द प्रयोग किया ।" अस्तु ।

जब राम वापसनहीं लौटे, तब महाराज दशरथ ने भरत को अयोध्या का राज स्वीकार कर स्वयं दीक्षा लेने का मार्ग प्रशस्त करने को कहा । भरत ने कहा, "पिताजी ! मैं कभी राज्य ग्रहण नहीं कर सकूँगा । मैं स्वयं जाता हूँ और बड़े भाई को ले आता हूँ ।"

इस पूरे समय के दौरान कैकेयी को अपनी भयानक भूल का पूरा-पूरा एहसास

हो गया था । घोर पश्चाताप से वह तड़पती थी । उसने महाराज दशरथ के पास आकर भरत का प्रस्ताव से खुद को जोड़ते हुए कहा, "सभी पाप का मूल मैं ही हूँ । मैं ही भरत के साथ राम के पास जाऊँगी । पैर पकड़ कर क्षमा मांगूँगी । भारी आग्रह करके लाड़ले राम को वापस लाऊँगी । उसे वापस लौटना ही होगा । तो मुझे अब जाने की अनुमित दो ।"

दशरथ की अनुमति मिलते ही भरत, कैकेयी, मंत्रीगण आदि निकले । छह दिन में राम के पास पहुँच गए ।

लक्ष्मण ने भरत को देखा । उसे अभी भी किसी षडयंत्र की बू आई । वह तिलमिला उठा, परन्तु सीता ने उसे शांत किया । भरत और कैकेयी ने राम को वापस लौटने के लिए बहुत समझाया । राम का एक ही सवाल था, "मैं वापस लौटूँ, तो ऋणमुक्त होने के लिए पिताजी द्वारा भरत को दिए राज्य के मामले में क्या होगा? पिताजी की ऋणमुक्ति करना मेरा परमधर्म है । उनकी प्रतिज्ञा का उल्लंघन मुझसे नहीं होगा ।"

www.yugpradhan.com

इतना कह कर राम ने वहीं भरत का राज्याभिषेक कर दिया ।

खाली हाथ भरत आदि अयोध्या लौटे । पिता दशरथ आदि की आज्ञा से भरत ने राम के सेवक के रूप में अयोध्या का कारभार संभाला ।

दशरथ ने सत्यभूति नामक मुनि से बड़े परिवार समेत दीक्षा ली ।

* * *

(५) राम

रावण, अंजनासुंदरी, हनुमान और दशरथ के पात्रालेखन में प्रसंगत: राम के बारे में भी कुछ विवरण दिया गया है । उदाहरण के तौर पर राम का जन्म, राम का विवाह, राम का वनगमन, राम-रावण युद्ध आदि...

अब इस प्रकरण में राम के जो विशिष्ट प्रसंग हैं - राम का सीतापहरण के समय विलाप, राम द्वारा सीतात्याग, राम का पश्चाताप और विलाप, लवकुश के साथ युद्ध, सीता की अग्निपरीक्षा, लक्ष्मण की अकालमृत्यु से राम को आघात और राम की दीक्षा आदि - उसे ही यहाँ लेंगे ।

चलिए अब उन प्रसंगों को क्रमश: देख लें ।

सीता-परित्याग

अयोध्या में आ जाने के बाद कुछ समय में महासती सीता गर्भवती हुई । अपने मुख में दो अष्टपदों को प्रवेशते देखा । कुछ दिनों बाद उनका दायाँ अंग फड़कने लगा । एक दिन आर्यपुत्र रामचंद्रजी के साथ वे उद्यान में बैठी थीं । तब उन्होंने अष्टापद के मुखप्रवेश के स्वप्न की चर्चा की और बाएँ अंग की स्फूरणा की बात कही ।

रामचंद्रजी ने कहा, दो अष्टापद के मुखप्रवेश से तुझे दो पुत्रों की प्राप्ति होगी; परन्तु अष्टापद का स्वप्नदर्शन और बाएँ अंग की स्फूरणा किसी अमंगल की आगाही करता है । अस्तु । तुझे इसकी चिंता नहीं करनी है । ऐसे अमंगल के निवारण के लिए और धर्मध्यान करना चाहिए । तब से सीता ने प्रभुभक्ति आदि में विशेष चित्त लगा दिया ।

परन्तु अमंगल भूमिका निभा कर ही रहे ।

सीता के अंत:पुर में अन्य तीन स्त्रियाँ थीं । ईर्ष्या का अवतार ही देख लो ।

सीता के उत्कर्ष में वे सभी जल कर खाक हो गई थीं । इसमें सीता के माता बनने की खबर से तो पैर से सिर तक सुलग गईं । किसी भी तरह सीता को प्रताड़ित करने का उन्होंने निश्चय किया । एक षड्यंत्र रच डाला ।

एक दिन वे तीनों स्त्रियाँ सीता के पास गईं । उन्होंने सीता से रावण कैसा था? सवाल पूछा । सीता ने कहा कि जिसका मुँह ही जिसने कभी देखा नहीं है, उस रावण का वर्णन कैसे कर सकती थी ? उन स्त्रियों ने कहा कि रावण के पैर तो उसने देखे ही होंगे न ? उसका चित्र खींच कर बता ।

भोली सीता ने कहा, हाँ... वह मुझे जब समझाने के लिए आता, तो धरती पर लगी रहने वाली मेरी नजर में उसके पैर जरूर आए हैं । लाओ चित्र खींच दूँ।

इतना कहने के बाद सीता ने एक बड़े ताड़पत्र पर रावण के दो पैरों की आकृति खींच दी ।

बस... बात का बतंगड़ बन गया । इस आकृति को उन स्त्रियों ने पूरे गांव में घुमाया और उसके साथ यह चर्चा भी चला दी कि सीता रात-दिन रावण के इन चरणों का ध्यान धरती थी ।

लोक यानी भेंड़ों की टोली । उनसे अच्छी अपेक्षा रखना ही मूर्खता ।

एक कान से दूसरे कान तक बात फैलती गई; एक हाथ से दूसरे हाथों में चित्र घूमता गया ।

www.yugpradhan.com

पूरी अयोध्या में एक ही बात होने लगी... निश्चित, सीता कुलटा है; और हमारा अयोध्यापति पत्नी के प्रति आसक्त है; नहीं तो ऐसी कुलटा को अंत:पुर में रखे भला?

एकांत स्थान हो; रावण जैसा सुंदर पुरुष हो; सत्ता और सम्पत्ति से भरपूर हो; याचनापूर्वक भोग की याचना करता हो, फिर स्त्री कैसे अडिग रह सकती है ? स्त्री, कुछ भी हो, है तो अबला जाति ! टक्कर झेलने का साहस उसमें कितना होगा ?

सब कुछ अनुकूल मिलने के बाद भी पतन न हो, वह तो भगवान ही कहलाएगा ।

इस तरह लोग बेलगाम बोलते जाते हैं; और बात फैलती जाती है ।

यह बात अयोध्या की प्रजा के अग्रणी स्थान पर रहे महाजन से सही नहीं गई।

अयोध्यापति राम ने उन्हें कह रखा था कि प्रजा के सुख-दु:ख की सभी बातें उनके ध्यान पर लाई जाएँ । मध्य रात्रि में भी आकर उठाएंगे, तो भी राजा राम नाराज नहीं होंगे ।

इन महाजनों में विजय सेठ अग्रणी थे । उनकी अध्यक्षता में राजा राम को सभी

घटनाओं से अवगत करने का निर्णय हुआ ।

दूसरे दिन महाजन दरबार में गया । राजा का काम निपटने के बाद विजय सेठ खड़े होकर रामचंद्रजी से नतमस्तक होकर बोले, कहने को जीभ नहीं चलती; परन्तु कहे बिना चलेगा नहीं । दिल कहता है कि ऐसा इन कानों से सुनने से तो भगवान हमारे प्राण ले ले !

रामचंद्रजी ने कहा, जाओ, तुम्हें मेरा अभयवचन है । तुम जरा भी डरे बिना मुझे प्रत्येक बात से अवगत करो । तुम्हारा तो यह दायित्व है । और तुम्हारे सहयोग से ही मैं राज्य का भार उठा सकता हूँ । यह राजसत्ता तो वास्तव में लोकसत्ता है। अत: जरा भी डरे बिना मुझे प्रत्येक बात बताओ ।

इतना आश्वासन मिलने के बाद विजय सेठ ने कहा, राजन ! पूरी अयोध्या एक ही चर्चा कर रही है कि महादेवी सीताजी लंका में शील से भ्रष्ट बन चुकी हैं और आपने ऐसी स्त्री को; मोहांध होकर अंत:पुर में रखा है ।

"हमसे ये शब्द सुने नहीं जाते हैं । ऐसा कहने से हमारी जुबान हिचकती है, परन्तु ओ प्रजापालक राजा राम ! आपको सूचित करने का हमारा सेवक धर्म निभाए बिना हमारे पास कोई विकल्प नहीं था । इसीलिए हमने आपको यह जानकारी दी है ! अब इस विषय में क्या करें ? यह तो आपको ही सोचना है ।"

महाजन की बात सुन कर क्षणभर तो रामचंद्रजी चकरा गए ! मानो बिजली टूट पड़ी ! परन्तु दो ही पल में स्वस्थ हो गए और उन्होंने कहा, "तुमने मुझे इस बात से अवगत कराया, यह बहुत ही अच्छा किया । अब तुम जा सकते हो । इस बारे में उचित कार्यवाही करने का आश्वासन देता हूँ ।"

नमस्कार कर महाजन विदा हुआ ।

शाम ढली । अंधकार होते ही रामचंद्रजी वेश परिवर्तन कर नगरचर्या के लिए निकले । जन-जन में, जगह-जगह एक ही चर्चा चल रही थी, सीता शुद्ध नहीं है; राजा राम मोहांध हैं । देर रात रामचंद्रजी राजमहल आए । पूरी रात शैय्या में करवटें बदलते रहे; नींद नहीं आई । उनके अंतर में एक ही विचार चल रहा था, सीता कभी कुलटा हो सकती है ? कैसे मूर्ख हैं लोग ! परन्तु अब क्या किया जाए ?

दूसरे दिन शाम को गुप्तचरों को भेजा । सारी जांच करके जो सूचना मिले, उसे दूसरे दिन राजदरबार में पेश करने का आदेश दिया ।

दूसरे दिन सुबह राजकाज निपटाने के बाद गुप्तचरों को बुलाया गया और उन्होंने जो कुछ देखा-सुना हो, वह सब उसी स्वरूप में पेश करने को कहा गया ।

लक्ष्मण, हनुमान, सुग्रीव आदि को आज दरबार में उपस्थित रहने का विशेष आदेश था अत: सभी हाजिर हो गए थे ।

रामचंद्रजी ने गुप्तचरों को सारी जानकारी अक्षरश: देने को कहा । गुप्तचरों ने वही नगरचर्चा सुनाई । यह सब सुनते ही राजसभा में सन्नाटा छा गया ।

लक्ष्मण क्रोध से आगबबूला हो काँपने लगे । तलवार की मू पर हाथ रख कर खड़े हुए । उन्होंने कहा, आ जाए मेरे सामने; अयोध्या की वह जनता कि जो मेरी भाभी को कुलटा कहने को तैयार हुई है ! कैसी नमकहराम प्रजा है !

इतना कह कर रामचंद्रजी से लक्ष्मण ने सीधा सवाल किया, "बृहद बंधु ! महादेवी के जीवन के बारे में आपका अपना क्या अभिप्राय है !"

'सम्पूर्णत: महासती !', राम ने कहा ।

तो बंधु ! अयोध्या की प्रजा से मैं निपट लूँगा । उसका मैं साक्षात् काल बन कर रहूँगा । जो महासतीजी को कुलटा कहती है, उसका सिर और मेरी तलवार !, क्रोध से दांत पीसते लक्ष्मण बोले ।

www.vidyadhan.com

परन्तु... रामचंद्रजी ने लक्ष्मण का मुँह बंद कर दिया । उन्होंने कहा, लक्ष्मण ! एक अक्षर आगे मत बोलना, बैठ जा ।

राजसभा में फिर सन्नाटा व्याप्त हो गया । सार्वजनिक रूप से प्रियतम् लघुबंधु लक्ष्मण को राम ने इस तरह कभी नहीं डाँटा था ।

लक्ष्मण चुप होकर बैठ गए । सामने ही बैठे कृतांतवदन सेनापति को राम ने आदेश देते हुए कहा, कृतांतवदन ! जाओ, महादेवी से हो कि कुछ समय से उनकी तीर्थयात्री की अभिलाषा जागी है, तो रथ में बैठ जाओ । आर्यपुत्र ने आपको तीर्थयात्रा पर जाने का आदेश दिया है ।

और... कृतांतवदन ! रथ में बैठा कर महादेवी को भर जंगल में ले जाना; वहीं उन्हें उतार कर वापस आ जाना ।

राम की आज्ञा में लक्ष्मण को - सभी को जल्दबाजी दिखाई दी । लक्ष्मण को लगा कि लोगों के अवर्णवाद के कारण या स्वयं को मिल रहे अपयश के कारण एक बिल्कुल निर्दोष स्त्री को गर्भावस्था में इस प्रकार भयानक वन में बेसहारा छोड़ देने

की सजा दे देना, बिल्कुल अनुचित है, परन्तु लक्ष्मण अब कुछ कर सकने की स्थिति में नहीं थे; अतः मन मसोस कर अपने स्थान पर बैठे रहे ।

रामचंद्रजी स्पष्ट रूप से जानते थे कि निर्दोष व्यक्ति के सुख को वे शिकार कर रहे हैं, परन्तु ऐसा किए बिना कोई उपाय नहीं था । वे मानते थे कि व्यक्ति से राष्ट्र महान है; राष्ट्र से प्रजा और प्रजा से उसकी जीवनडोर रूपी संस्कृति महान है ।

संस्कृति रक्षा की खातिर प्रजा को, राष्ट्र और व्यक्ति को - सभी को अपना भोग देना चाहिए ।

राम मानते थे कि यदि सीता को सजा नहीं दी गई, तो आर्यावर्त की संस्कृति खतरे में पड़ जाएगी ।

घर-घर में लोग चर्चा करने लगेंगे कि जिस कुलटा स्त्री को भी अयोध्या नरेश जैसे सहन कर लेते हैं, तो हमारे घर में भी ऐसा करने में क्या आपत्ति ? जैसा राजा, वैसी प्रजा ।

इसका परिणाम यह होगा कि घर-घर से शील का नाश होगा; मर्यादाएँ लोप होंगी; हाहाकार मच जाएगा ।

www.yugpradhan.com

लोक तो अंततः अज्ञानी है; अबू है, जड़ है... उसे सब सच्चाई समझाई नहीं जा सकती है और सच्चाई को समझ सकने का उसका स्तर भी नहीं है । एक असत्य का निवारण बहुत ही मुश्किल होता है । उसका उपाय एक ही है कि सीता के सुख का भोग लेना । इससे सभी पर धाक बनेगी और अनर्थ परम्परा रुक जाएगी ।

ऐसा नहीं कहा जा सकता कि मात्र लोकापवाद से डर कर रामचंद्रजी ने सीता का त्याग किया । उसके पीछे ऐसे मनोवैज्ञानिक कारण पर भी विचार करना चाहिए। अस्तु ।

सेनापति कृतांतवदन सीताजी के समक्ष गया । रामचंद्रजी की आज्ञा बताई । सीता ने तत्काल अमल किया । यात्रा और वह भी बिल्कुल अकेले ! इतना विकल्प मन में जागा, परन्तु उन्होंने मन मार कर उस विकल्प का शमन कर दिया ।

भयानक वन में रथ आ पहुँचा । शाम ढल चुकी थी ।

रथ से उतर कर कृतांतवदन महादेवी के समक्ष आया । हाथ जोड़ कर मौन खड़ा रहा।

सीताजी को आशंका हुई । कृतांतवदन से पूछा, "यहाँ रथ क्यों रोक दिया ?"

इस प्रश्न के उत्तर के रूप में कृतांतवदन की आँख से आँसू उभर आए । वह

फूट-फूट कर रोने लगा । रोता जाए और रामचंद्रजी की आज्ञा का वर्णन करता जाए।

आज्ञा बताता जाए और फूट-फूट कर रोता जाए ।

सारी बात सुन कर सीताजी क्षणभर के लिए स्तब्ध हो गईं, परन्तु एक ही पल में वे स्वस्थ हो गईं ।

उन्होंने पूछा, "कृतांतवदन ! यह सब कुछ हुआ, तब मेरे देवर लक्ष्मण वहाँ नहीं थे ?"

अरे ! महादेवी ! उन्होंने काफी आवेश में प्रतिकार किया, परन्तु सभी विफल रहा । जब लक्ष्मणजी जैसे कुछ नहीं कर सके, तो वहाँ उपस्थित हनुमानजी आदि के तो एक शब्द भी उच्चारित करने की कहाँ संभावना थी ?

सारी स्थिति का कयास सीताजी ने निकाल लिया ।

ऊपर आकाश और नीचे धरती ! नहीं... धरती भी पैरों तले से सरकती लगी! एक ही पल में चक्कर खा कर सीताजी रथ से धरती पर निढाल हो गईं ।

कृतांतवदन को लगा कि महादेवी ने प्राण त्याग दिए !

www.vuoprabhari.com

और... वह घोर रुदन करने लगा । काफी समय इसी तरह गुजर गया । इतने में सीताजी के अंग में हलन-चलन की क्रिया हुई । यह देख कर कृतांतवदन की मानो जान में जान आई ।

कुछ पल बीते । सीताजी स्वस्थ होकर बैठीं ।

अब इस अकल्पनीय आघात को पचा लेने जितनी शक्ति प्राप्त कर चुकी थीं।

कृतांतवदन ने उनसे कहा, "सेनापति ! तू मुझे यहाँ छोड़ कर सुखपूर्वक अयोध्या जा। तू तेरे स्वामी की आज्ञा का पालन करता है; तेरे हाथों कुछ गलत नहीं हुआ है ।"

"महादेवीजी ! पापी पेट की खातिर ही अयोध्यापति के यहाँ नौकरी करनी पड़ी न ? और इसीलिए एक महासती को मेरे हाथों वन में भटकता छोड़ देने का कलंक मेरे ललाट पर लगा न ? यह पेट पहले ही फूट क्यों नहीं गया ?" कृतांतवदन ने कहा ।

सेनापति ! यह चिंता तू मत कर । अब तू जा । और मेरा इतना संदेश आर्यपुत्र को देना ।

उनसे कहना, हे आर्यपुत्र ! आपको यदि लोकापवदा का भय था, तो स्त्री-जाति

के शील की कसौटी करने के लिए आपको शास्त्र में पाँच-पाँच उपाय बताए हैं, उनमें से किसी एक कसौटी पर मुझे चढ़ा सकते थे ।

खैर... आप को जो उचित लगा, वही सही । मेरे ही पापोयद से आया यह दुःख वन में भी जरूर भोग लूँगी । परन्तु आपके विवेक और आपके कुल को शोभे, ऐसा काम आपने नहीं किया है, यह मुझे स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है ।

आर्यपुत्र ! अंतिम एक बात कह दूँ । आपने जिस तरह अयोध्या की प्रजा की बातें सुन कर मेरा परित्याग कर दिया, उसी तरह नास्तिक लोगों की बातें सुन कर आपके हृदय में विराजित धर्म-तत्व का परित्याग मत कर देना । इस दासी की यह एक ही विनती है ।

(यदि निर्वादभीस्तत्वं, परीक्षां, नाकृथाः कथं ।
शंकास्थाने हि सर्वोऽपि, दिव्यादि लभते जनः ।।
अनुभोक्ष्ये स्वकर्माणि, मन्दभाग्या वनेऽप्यहं !
नानुरुपमकार्षीस्त्वं, विवेकस्य कुलस्य च ।।
यथा खलगिरा त्याक्षीः स्वामिन्नेकपदेऽपि मां ।
तथा मिथ्यादशां वाचा, मा धर्मं जिनभाषितम् ।।)

www.vuppraman.com

'कृतांतवदन ! मेरा यह संदेश आर्यपुत्र को दो । मुझे चिंता एक ही बात की हो रही है कि मैं तो मेरे पापकर्म के उदय का विचार कर दुःखों को सहन कर लूँगी; परन्तु मेरे वियोग के दुःख को आर्यपुत्र किस तरह झेल पाएंगे ?'

भारी हृदय से कृतांतवदन ने रथ मोड़ा ।

जब उसने रामचंद्रजी को सीताजी का संदेश सुनाया, तो रामचंद्रजी एक तीखी चीख निका कर धरती पर गिर गए । अनेक उपचारों से उन्हें स्वस्थ किया गया । 'सी... ते..., सी.... ते....' की चीख-पुकार करने लगे । लक्ष्मण आदि वहाँ दौड़े आए। 'सीता को अभी ढूँढ लाओ', राम ने कहा । और... चारों तरफ घुड़सवार निकल पड़े। रथ में बैठ कर राम भी सीता की खोज में निकले । कृतांतवदन उस स्थान पर ले गया, जहाँ उसने सीताजी को छोड़ा था । राम स्वयं चारों ओर घूमे। गुफाओ और नदी तटों पर-सभी जगह छान मारी । कहीं सीता का पता नहीं लगा। बाघ और शेर की गर्जनाएँ अच्छे-अच्छों की छाती चीर दे, इतनी भयानक थी । रामचंद्रजी ने मन ही मन निश्चय कर लिया कि सीता किसी जंगली पशु के जबड़े में स्वयमेव समा गई है । भारी हृदय

से, करुण विलाप करते हुए राम अयोध्या वापस लौटे ।

"पउमचरियं" में राम की विरहवेदना का अद्‌भुत वर्णन

जब रामचंद्रजी को सीता नहीं मिलती हैं, तो राम सीता के विरह में कैसे तड़पते रहे थे, उसका 'पउमचरियं' में हूबहू वर्णन किया गया है । रावण ने सीता का अपहरण किया, उसके बाद जब राम "सीते ! सीते !" कह कर सीता को वन में ढूँढ रहे थे, तब सामने से दौड़े आए हाथी को देख कर राम एकदम उसके सामने दौड़ते हैं और उस हाथी से पूछते हैं : "अरे ओ हाथी ! बता तो, तूने मेरी प्राणप्रिये सीता को कहीं देखा है ?" वृक्षों को सम्बोधित कर राम कहते, "हे ऊँचे-ऊँचे वृक्षों ! तुम बहुत ऊँचे हो, तो क्या तुमने ऊँचाई से इस जंगल में मेरी सीता को देखा ?"

राम वन में ऊँची आवाज से पूछते हैं : "हे वनदेवता ! तुमने सीता को देखा?" राम के इस प्रश्न का ऐसी प्रतिध्वनि वन में होती है कि सामने से ऐसा जवाब मिलता है, 'तुमने देखा ?' विरह में पागल हुए राम को इस 'तुमने देखा' की प्रतिध्वनि से यह भ्रांति होती है, 'हमने देखा' ।

इसीलिए राम जिस दिशा से आवाज आती है, उसी दिशा में तुरंत दौड़ते हैं, परन्तु उन्हें सीता नहीं मिलती । प्रतिध्वनि सुन कर चारों दिशा में दौड़ते राम जब थक गए, तो बेहोश होकर धरती पर गिर पड़े ।

नीलकमल और अशोकवृक्ष में सीता को लेकर राम को भ्रांति

मूर्छाविह्वल राम जब पुनः स्वस्थ हुए, तो 'हा सीता ! हा सीता !' शब्दों का उच्चारण करने लगे । वनदेवी से पूछे लगे, 'हे वनदेवी, मुझे तू क्यों क्षण-क्षण परेशान करती है ? मेरा अपराध क्या है ? तूने यदि सीता को देखा हो, तो मुझे बता दे ।'

कभी राम तालाब के अंदर रहे नीलकमलों को देख कर दौड़ते हैं । वह समझ बैठते हैं कि यह तो मेरी प्रियतमा की ही दो आँखें हैं ! जब वे नीलकमल के पास पहुँच जाते हैं; तब उनका भ्रम टूट जाता है !

कभी अशोकवृक्ष की डोलती डालियों में उन्हें सीता के हाथ का भ्रम होता है। राम मानते हैं, 'देखो... देखो... यह तो सीता ही खड़े-खड़े मुझे बुला रही है ! वाह! मेरी सीता मुझे मिल गई' और... राम जब उस अशोकवृक्ष के पास पहुँच जाते हैं,

तो पुनः भ्रम टूट जाता है । इस तरह जंगल में चारों तरफ सीता की शोध कर के थके-हारे राम लौट आते हैं । एक सुंदर लताकुंज में वे पहुँचे और अपने धनुष्य और बाण एक तरफ रख दिए । पुनः चीत्कार करते धरती पर बेहोश होकर गिर पड़े। यह वर्णन 'पउमचरियं' और 'पउमचरिउ' जैन रामायणों में आता है ।

मोहकर्म की गति नितांत निठल्ली

बेशक, रामचंद्रजी का सीता के प्रति यह मोहभाव बिल्कुल अच्छा नहीं है । जो तद्भव मोक्षगामी है, वही भव में सिद्ध भगवान होने वाला है, ऐसे रामचंद्रजी भी कैसी मोहदशा का शिकार बन गए ! एक गुजराती कवि ने सच ही कहा है :

'न्यारी न्यारी हो... नितांत नठारी हो गति मोह करमनी न्यारी' यह मोहदशा कैसी भयंकर है ! ! उसने अच्छे-अच्छों को खत्म कर दिया है !

नंदिषेण जैसे को भी उसने एक गणिका द्वारा पछाड़ दिया !

सिंह गुफावासी मुनि को भी उसने रूपकोशा के रूप ने मुग्ध कर दिया ! और एक हजार वर्ष का मुनिजीवन पालने वाले कंडरिक मुनि को भी रसना की मोहदशा ने पतित कर सातवें नर्क में धकेल दिया ।

www.yugpradhan.com

सीता की मरणोत्तर क्रिया की । राम अत्यंत बेचैन हो गए । लक्ष्मण अवाक् जैसे हो गए । हनुमान निष्प्राण दशा की अनुभूति करने लगे ।

पूरी अयोध्या शोक में डूब गई ।

अग्निपरीक्षा

सीताजी को भाग्य के भरोसे वन में छोड़ कर कृतांतवदन लौटा ।

सीताजी ने अयोध्या छोड़ी थी; परन्तु पुण्य तो साथ लेकर आई थीं । कुछ ही देर में पुंडरिक नगर के राजा वज्रजंघ वहाँ से गुजरे । उम्दा हाथियों का संग्रह करने का उन्हें बड़ा शौक था । इस वन में उनकी शोध के लिए ही वे आए थे । निराधार, अकेली स्त्री को देख कर उनका हृदय दयार्द्र बन गया । उन्होंने महादेवी से कहा,

ओ बहन ! ऐसे भयानक वन में अकेली क्या कैसे ?

'बहन' शब्द सुनते ही सीता को भरपूर आश्वासन मिल गया । वन में मिले भाई को इस बहन ने पूरी आपबीती बताई । राजा वज्रजंघ को राम जैसे अयोध्यापति की नीति-रीति पर सखेद आश्चर्य हुआ ।

'बहन ! सीता ! चल मेरे साथ; जब तक तू इस आपत्ति से मुक्त न हो, तब तक मेरे साथ ही रहना । मुझे अपने मांजना भाई ही समझना ।'

सीता को लेकर वज्रजंघ नरेश का रथ पुंडरिक नगर की तरफ बढ़ा ।

समय बीतने पर सीताजी ने एक युगल को जन्म दिया । एक बालक का नाम लव रखा; दूसरे का नाम अंकुश । पराक्रमी राम के दो बालक थे । शीलवी सीता की वे संतानें थीं । शेर के ये बालक थे । शेर ही होंगे न !

समय बीतते देर नहीं लगती है ! लवण और अंकुश के राजकन्याओं के साथ विवाह हुए ।

एक दिन की बात है । नारदजी पधारे । बातों-बातों में उन्होंने इन दोनों नवयुवकों से कहा, 'वज्रजंघ नरेश उनके वास्तविक पिता नहीं है, परन्तु पालक पिता हैं । उनके वास्तविक पिता अयोध्यापति राजा राम हैं ।'

फिर तो बात आगे बढ़ी । दोनों युवकों के अनेक प्रश्नों के उत्तर के रूप में निरपराधी माता के वन में परित्याग तक की बातें सामने आईं ।

बस... मातृभक्त युवक एड़ी-चोटी तक सुलग गए । उनकी नजर में अब राम पिता की तुलना में अपराधी के रूप में स्थिर हो गए । माँ की दुर्दशा करने के लिए उन्हें सख्ता दंड देने का उन्होंने निर्णय किया ।

और... देखते ही देखते युद्ध की दुंदुभि बज गई । मां की विनतियाँ विफल रहीं! राम का महापराक्रमी के रूप में सीता का वर्णन हास्यास्पद बना ।

दोनों युवक राम से युद्ध को तैयार हुआ । राम और लक्ष्मण सैन्य सहित सामने आ गए ।

परन्तु आश्चर्य ! राम लक्ष्मण तो दोनों युवकों को देख कर ठंडे पड़ गए । राम के दिल में तो वात्सल्य की धारा फूट पड़ी । आँख में उग्रता की बजाए अमीधारा बरसने लगी । इसीलिए धनुष पर बाण तो चढ़ता है; परन्तु छूटता नहीं है । छूटता है, तो वेग नहीं आता है ।

सामने से लव और कुश तो युद्ध को अधिकाधिक गर्म बनाते गए । अधिक जोरदार रणनीतियों के साथ आक्रमण करने लगे ।

राम ने लक्ष्मण से कहा, 'बंधु ! पता नहीं क्यों ? परन्तु इन दोनों युवकों के प्रति मेरे मन में अपार स्नेह उमड़ रहा है । ऐसे नररत्नों को धरती से नष्ट करने की बात

से ही मेरा दिल बेचैन हो जाता है ।'

इधर सीता अपने भाई भामंडल को लेकर विमान में युद्धभूमि पर उतरीं । भामंडल और सीता ने लव-अंकुश को रोकने के लिए खूब याचना की । माँ ने कहा, 'जान-बूझ कर मरना क्यों चाहते हो ? उस पराक्रमी राम के आगे तुम मच्छर जैसे हो, पल भर में ही मसल दिए जाओगे ।'

माँ की बात सुन कर दोनों खिलखिला कर हँस पड़े; और बोले, "देखे... देखे... इनके पराक्रम ! ताकत तो है नहीं; ठीक से तीर चलाना भी तो नहीं आता है । तू यहाँ से रवाना हो, तेरा यहाँ काम नहीं है । निरपराधी माता को वन में छोड़ देने वाले इस राम को आज सबक सिखाना चाहते हैं, ताकि दोबारा ऐसी भूल नहीं हो ।"

पुत्रों के ऐसे पराक्रम पर वारी जाती सीता युद्ध भूमि से लौट गई, परन्तु उसका दिल धड़क रहा था; क्योंकि राम के सामने खड़े रहने में भी ये युवक बौने थे ।

युद्ध में लव - कुश ने अब आक्रमण तेज कर दिया । बाणों की जोरदार वर्षा होने लगी । लक्ष्मण अकुला गए । उन्होंने रामचंद्रजी से कहा, 'हम खेल खेलने नहीं आए हैं; युद्ध करने आए हैं । यहाँ स्नेह की बातें नहीं होतीं । यहाँ तो जान की बाजी लगा कर खेल खेलने हैं । बंधु ! देखो चारों ओर से बाणों की अगनवर्षा हो रही है । इतना कह कर अकुलाए लक्ष्मण ने सुदर्शन चक्र हाथ में लिया । उसे देखते ही लव की सेना में हाहाकार मच गया । कुछ ही देर में आग उगलता चक्र छूट गया।

सभी की जान साँसत में पड़ गयी । परन्तु... चक्र तो लव और कुश की प्रदक्षिणा कर वापस लौट गया ।

राम और लक्ष्मण स्तब्ध रह गए । उसी समय नारदजी आकाश से उतरे । राम ने पूछा, नारदजी ! सुदर्शन चक्र वापस क्यों आया ? क्या ये दोनों युवक हमारे स्वजन हैं ?'

हाँ... राम ! तुम्हारे ही पुत्र हैं; लवण और अंकुश ।

ये शब्द सुनते ही रामचंद्रजी रोमांचित हो गए । उनका आनंद अंतर में समा नहीं रहा था । पिता दौड़े; पुत्रों की तरफ ! सारी लज्जा, मर्यादा को ताक पर रख कर भेंट पड़ने के लिए ।

यह देख कर पुत्र दौड़े; पिता की तरफ ! उनकी गोद में समा जाने के लिए; क्षमा मांगने के लिए ।

पिता-पुत्रों का स्नेहमिलन हुआ । सभी की आँखों में हर्षाश्रु थे । ऐसे पराक्रमी पुत्रों के पिता होने का सत्य रामचंद्रजी के लिए अभूतपूर्व आनंदप्रद था ।

सभी का अयोध्या में प्रवेश हुआ । एक दिन सुग्रीव ने रामचंद्रजी से कहा, 'भगवन् ! महासती सीताजी को कब बुलाओगे ?'

'सुग्रीव ! परन्तु उस लोकापवाद का क्या ? महादेवी भले पधारें; परन्तु उसे दिव्य कर लोकापवाद का निवारण तो करना ही पड़ेगा । वह बात तो आज भी वहीं खड़ी है । तू महादेवी के पास जाकर सारी बात कर ।'

सुग्रीव तुरंत रवाना हो गए । पुंडरिक नगर में जाकर महासतीजी को सारा वृतांत सुनाया । सीताजी ने कहा, 'दो पुत्र मेरे पास थे, उसे भी आर्यपुत्र ले गए । मेरे पास कुछ नहीं रहने दिया और अब तो मुझे इस संसार से विरक्ति हो गई है । कर्म के नाच पर नाचना तो अनंत शक्तिसम्पन्न आत्मा का खुला मजाक है । मुझे आत्मा के सभी प्रदेशों से उस कर्मसत्ता के डेरा-तम्बू को उखाड़ना ही है । अत: आर्यपुत्र को मेरे प्रणाम के साथ कहना कि उन्हें (सीता को) अब अयोध्या आने में कोई दिलचस्पी नहीं है ।'

www.yugpradhan.com

सुग्रीव काफी चतुर था । उसने कहा, 'महादेवीजी ! आपकी बात बिल्कुल सही है । परन्तु लोगों में जो अनर्थकारी चर्चाएं फैली हैं, उनका निवारण तो आपको इसी जीवन में कर देना चाहिए न ? आप दिव्य करने के लिए तो पधारो ।'

सीताजी ने कहा, 'सुग्रीव ! तेरी बात सही है, परन्तु मुझे वन में भटकते छोड़ा और फिर भी सुरक्षित जीवित हूँ, क्या यह दिव्य नहीं है ! परन्तु जाने दे उस बात को... मुझे मेरी शुद्धता तो साबित कर ही देनी है । इस कलंक को लेकर तो मैं मरना भी नहीं चाहती । इसीलिए दिव्य करने के लिए मैं अयोध्या आऊँगी ।'

सुग्रीव का पासा सटीक पड़ा । सीताजी को लेकर रथ में रवाना हुआ ।

दिव्य के रूप में अग्नि का दिव्य करने का निश्चय हुआ । अयोध्या के बाहर दो सौ हाथ लम्बा-चौड़ा और गहरा गड्ढा तैयार किया गया । चंदन के काष्टों से उसे भर दिया गया । धृत, केसर कर्पूरादि का प्रेक्षप हुआ । सीताजी रथ से नीचे उतरीं। रामचंद्रजी ने उनका स्नेह से स्वागत किया । क्षेम-कुशल की बातें हुईं । सीता उदासीन भाव में रमती हैं । उसके हृदय में राग का उबाल नहीं है । और रोष का गुबार भी नहीं है । वह अत्यंत उदासीन भाव से व्यवहार धर्म को निभाती है ।

रामचंद्रजी ने सीता से कहा, 'महादेवी ! लोकापवाद बहुत ही खराब वस्तु है। उसे दूर करने के लिए तुम्हें अग्निपरीक्षा का दिव्य करना है ।'

सीताजी ने कहा, 'मुझे मंजूर है । मात्र इतना ही खेद है कि यह अग्निपरीक्षा पहले भी हो सकती थी, परन्तु अपराधी का अपराध सुने बिना ही उसे सजा दे दी गई !'

'फिर वन में भटकती छोड़ी गई स्त्री जीवित रही ! यही क्या दिव्य नहीं है ? परन्तु मुझे अब उन बातों को नहीं दोहराना है । मैं अग्निपरीक्षा देने को तैयार हूँ, आज्ञा करो ।'

सीता के शब्दों से राम शर्मिंदा हो गए । उन्होंने अग्निपरीक्षा के लिए आज्ञा दी।

धू-धू कर आग की ज्वालाएँ उठीं । उस समय पूरी अयोध्या वहाँ जुटी । आग की गगनस्पर्शी ज्वालाएं देख कर लोग बोलने लगे, 'अहो ! महासती ! अरे... रामचंद्रजी क्या कर रहे हैं ? ऐसी महासती की तो कहीं अग्निपरीक्षा होती होगी ?'

लोगों की इस सुगबुगाहट को सुन कर रामचंद्रजी अकुला उठे । लोगों की तरफ रुख करते हुए उन्होंने कहा, 'ये वही आप लोग हैं, जिन्होंने महादेवी को कुलटा कहा था । अब अचानक वह महासती कैसे बन गई ? मुझे तुम्हारी बात नहीं सुनी है । सीता दिव्य करेगी ही ।'

सभी एकदम शांत हो गए; वातावरण अत्यंत गंभीर बन गया ।

दिव्य करने के लिए सज्ज सीता अग्नि के सामने आकर खड़ी हुईं । दो हाथ जोड़ कर उन्होंने कहा, 'हे लोकपालों ! मेरे इस समग्र जीवन में आर्यपुत्र राम के सिवाय मनसा, वाचा, कर्मणा में किसी का भी चिंतन आदि किया हो, तो इस अग्नि द्वारा मुझे जला देना और यदि मैं शुद्ध हूँ, तो इस अग्नि को जल बना देना।'

इतना कह कर सीताजी अग्नि के समक्ष सरपट चलीं; और उस ज्वाला में समा गईं।

उसी क्षण अग्नि शांत हो गई । उस गड्ढे में पानी भरा दिखने लगा । बीच में स्वर्णकमल बन गया । उस पर सीताजी को बैठे सभी ने देखा । रामचंद्रजी का शीश झुक गया । अयोध्या की जनता ने 'महासती सीतादेवी की जय हो' के गगनभेदी नारे लगाए । सभी उन्होंने वंदन किया ।

लवण और अंकुश ने पानी में छलांग लगाई । तैरते-तैरते माँ के पास पहुँच गए। उनकी दोनों भुजाओं पर दोनों पुत्र बैठ गए ।

www.vyoraadhan.com

पानी बढ़ता चला गया । ऐसे जोश के साथ बढ़ने लगा कि लोगों में भगदड़ मच गई । समय की जानकार सीताजी ने पानी को वापस लौटा कर शांत कर दिया।

सीताजी की दीक्षा

रामचंद्रजी सीता के पास आए । उन्होंने कहा, 'देवी, मेरे अपराधों के लिए मुझे क्षमा करें । मैंने कई भूलें की हैं ।' राम की आँखें आँसू से डबडबा गईं ।

सीता ने कहा, 'अपराध आपका तो बिल्कुल नहीं है । अपराध तो मेरे उन पापकर्मों का है, जिसने मुझे जन्म देते ही भाई से अलग कर दिया; किशोरावस्था में भाई को ही मुझ पर कामराग जागा । विवाह के बाद वन में भेजा; वन से अपहरण कराया । परपुरुष ने त्रास दिया । प्रजा ने कलंक लगाया; पतिविहीन अवस्था में पुन: वन में फेंका । पुत्रों से जुदा किया...

यह सब उन कर्मों ने किया है । अत: सभी अपराध कर्मों का है; आपका नहीं।'

'महादेवी ! अब अयोध्या चलो । रथ तैयार खड़ा है', राम ने कहा ।

'आर्यपुत्र ! मुझे अब संसार में कोई दिलचस्पी नहीं रही है । मुझे अब आत्मसाधना ही करनी है । आप उसमें बाधक नहीं बनना ।' इतना कह कर सीता ने वहीं से आत्मकल्याण की राह पकड़ ली ।

www.yugpradhan.com

रामचंद्रजी बेहोश हो कर धरती पर गिर पड़े । साध्वीजी सीता वहाँ से विदा हो गईं ।

होश में आए राम ने लक्ष्मण से कहा, 'अभी कि अभी सीता को हाजिर करो।' लक्ष्मण ने कहा, 'वह तो साधक बन गईं । अब यहाँ नहीं आएँगी ।'

ये शब्द सुनते ही तलवार खींचते हुए राम, लक्ष्मण के सामने हो गए । 'क्या कहता है ? मैं यह सुनना नहीं चाहता । तू तुरंत सीता को हाजिर कर ।'

लक्ष्मण ने रामचंद्रजी को बहुत आश्वासन देते हुए सारी स्थिति समझाई । राम शांत हो गए ।

राम का सवाल : मैं भवी या अभवी !

दीक्षादाता केवलज्ञानी गुरु जयभूषण केवली के पास राम गए । सीता को साध्वी स्वरूप में देख कर आश्चर्यचकित बने, परंतु अंतत: बहुत आनंदित हुए । उनके दीक्षा लेने का रोष लक्ष्मण के बोधदान से शांत हो गया ।

राम ने केवली भगवंत के समक्ष लगातार सताती आशंका का निराकरण करने के लिए सवाल किया, "भगवंत ! मैं भवी हूँ या अभवी हूँ ?"

जवाब मिला, "तुम निश्चित भवी हो ।"

राम ने फिर पूछा, "अनंत संसारी भवी या परित्त (कुछ) संसारी भवी !"

जवाब मिला, "तुम परित्त संसारी भवी हो ।"

दोनों जवाबों से राम को बहुत राहत हुई ।

अब उसने अंतिम सवाल पूछा, "परित्त संसार में इसी भव में मोक्षगामी या संख्याता भव में ?"

उत्तर मिला, "इसी भव में मोक्षगामी ।"

तुरंत राम ने पूछा, "मेरे प्रभु ! मुझे तो मेरे भाई लक्ष्मण पर तीव्र रागदशा है। रागी का इस भव में कभी मोक्ष हो सकता है?" भगवंत ने कहा, "यह बात सही है कि रागी का रागदशा में मोक्ष नहीं हो सकता, लेकिन हे राम ! तुम्हारा यह राग इसी भव में खत्म होने वाला है । फिर मोक्ष होने वाला है ।"

www.yugpradhan.com

यह अंतिम वाक्य सुन कर राम के साढ़े तीन करोड़ रोंगटों से आनंद की लहर गुजर गई ।

इसमें स्पष्ट दिखता है कि राम को लक्ष्मण पर बहुत राग था, परन्तु उसके राग पर तो बिल्कुल राग नहीं था । उल्टे तीव्र धिक्कार था । वस्तु पर का राग मामूली वस्तु है । उस वस्तु के राग पर का राग ही संसार की जड़ है । राग पर राग नहीं हो, विराग हो, तो उसे-वस्तु पर राग हो, तो भी - सम्यग्दर्शन कहा जाता है । राम का सम्यग्दर्शन कितना निर्मल था ! इसीलिए राग खत्म होने वाला है, यह सुन कर राम को आनंद हुआ; क्योंकि लक्ष्मण पसंद होने के बावजूद उसका राग उन्हें पसंद नहीं था । यदि उसके लक्ष्मण पर राग था, उसेमां उसके राग पर भी राग होता, तो इस राग के जाने की बात सुनते ही; ऐसा कहने वाले पर क्रोध आ जाता ।

धन आदि वस्तु पर राग होने से मिथ्यात्वी नहीं बना जाता । वह तो धनादि के राग पर राग आए, तभी मिथ्यात्व जागृत हुआ कहा जाता है ।

'धन अच्छा', इतना ही नहीं; 'धन पर का राग अच्छा':'धन पर राग करना ही चाहिए' । ऐसा तीव्र आग्रह ही मिथ्यात्व है ।

राम लक्ष्मण के रागी थे; उसके राग के रागी नहीं थे, बल्कि तिरस्कारी थे । इसीलिए राम महान् सम्यग्दृष्टा थे ।

राम का लक्ष्मण-प्रेम

किसी देवता ने इंद्र से पूछा, "देवेन्द्र ! इसी भव में मोक्ष में जाने वाले रामचंद्रजी को कौन रोक सकता है ?"

"लक्ष्मण के प्रति अपार राग... के अलावा कोई नहीं", इंद्र ने कहा ।

"ओह ! राम को लक्ष्मण के प्रति इतना अधिक राग है ?", देवात्मा को इस राग को जानने के लिए कौतुहल जागा ।

वैक्रिय शक्ति से राम की मृत्यु घोषित की । लक्ष्मण के अंतःपुर में यह समाचार पहुँचे । रानियाँ चीख पड़ीं । उनका करुण कल्पांत सुन कर लक्ष्मण ने किसी से पूछा, "ऐसा करुण कल्पांत क्यों ? क्या कोई मृत्यु को प्राप्त हुआ है ?"

"जी । हाँ... "

"कौन ?"

www.yugpradhan.com

"राम..."

और... उसी क्षण लक्ष्मण के प्राण वास्तव में चले गए ! उस देवात्मा को अपने कौतुहल का भारी रंज हुआ, परन्तु मृत को कौन जिला सकता है ? भगवान की शक्ति से भी बाहर की बात है ।

लक्ष्मण और अंकुश को यह आघातजनक समाचार मिलते ही जगत से विराग हो गया । लक्ष्मण के शव के पास ही बैठे रामचंद्रजी करुण विलाप करते थे । उनके पास जाकर दोनों भाइयों ने दीक्षा की अनुज्ञा मांगी । रामचंद्रजी ने स्पष्ट इनकार कर दिया । परन्तु विरागिवभोर बने भाई संभले नहीं संभल रहे थे । लक्ष्मण के विरह में विलाप करते पिताजी को उसी स्थिति में छोड़ कर लवण और अंकुश ने साधना के मार्ग पर प्रयाण किया ।

विराग की चिंगारी ही काफी तेज होती है । उसकी तपन के बारे में तो विरागी को ही पता चलता है । दूसरों को तो उसकी झांकी होना भी मुश्किल है ।

लक्ष्मण की मृत्यु को स्वीकारने के लिए राम किसी तरह तैयार नहीं हैं । सभी

ने समझाया; परन्तु राम किसी भी तरह नहीं माने । सभी को उन्होंने तिरस्कृत कर कहा, "मृत तुम होंगे; मेरा वीरा तो वैसे का वैसा ही जीवित है । हाँ... शायद रूठ गया होगा ।"

छह माह का समय बीत गया । लक्ष्मण के शव को कंधे पर उठा कर राम भटकते हैं । वन में भटकते हैं; नदी-नाले पार करते हैं । "भैया ! लक्ष्मण ! बोल... वीरा! अब तो बोल ! यह रूठना कब तक ? ले ये बेर खा... ले ये जामुन... " बस ऐसे आग्रहों में दिन पूरो हो जाता है । सेनापति कृतांतवदन विरक्त होकर दीक्षित हो गए थे । कुछ ही समय में ब्रह्मलीन होकर देव हुए । अपने स्वामी रामचंद्रजी की इस स्थिति को देख कर वे बहुत व्यग्र हुए । रूपपरिवर्तन कर मर्त्यलोक में आए । कंधे पर किसी स्त्री का मृत शरीर लिया । राम के सामने चलते हुए वे भटके ।

राम ने कहा, "ओ विप्रवर ! मृतक को कंधे पर लेकर क्यों घूम रहे हो ?"

"अरे ! इसे कौन मृतक कहता है ? यह तो मेरे प्राणों से भी प्यारी जीवित पत्नी है", विप्र रूपधारी देवात्मा ने कहा ।

रामचंद्रजी ने मृतक के लक्षमण बताए और वे सभी लक्ष्मण उस स्त्री की देह में विद्यमान कर दिखाए ।

www.yugpradhan.com

उस समय विप्र ने राम से कहा, "तो तुम्हारे कंधे पर भी मृतक नहीं, तो और क्या है ? उसके सभी लक्षण विद्यमान हो जाते हैं ।"

रामचंद्रजी ने देखा, तो बात बिल्कुल सही निकली । और...उसी क्षण उनके अंतर में विराग की आग भभक उठी ।

राम ने लक्ष्मण के मृत शरीर की अंत्येष्टि की ।

राम-दीक्षा और मोक्ष

राम ने दीक्षा ली । उनके साथ शत्रुघ्न समेत सोलह हजार राजाओं और सैंतीस हजार स्त्रियों ने दीक्षा ली ।

एक बार मुनिवर राम कोटिशिला पर ध्यानस्थ थे । उसी समय उन्होंने क्षपकश्रेणी की तैयारी की ।

उसी समय अच्युतेन्द्र बनी सीताजी का जीव पूर्वभवीय स्नेह के कारण राम का ध्यानभंग करने आ पहुँचा । उसका आशय इतना ही था कि यदि राम संसार में ही

जन्म लें-मोक्ष नहीं पाएं-तो उसके साथ ही संसार सुख भोगना ।

राम मुनि को चलित करने के तमाम प्रयास विफल रहे ।

महा सुद बारस की रात को अंतिम प्रहर में राम भगवान बने : वीतराग हुए । सर्वज्ञ हुए । इसके बाद २५ वर्षों तक इस धरती पर विचरण किए । कुल १५ हजार वर्ष की आयु पूर्ण कर मोक्षपद को प्राप्त हुए ।

* * *

www.yugpradhan.com

(६) सीता

रामायण में सर्वाधिक दुःखियारी स्त्रियाँ अंजनासुंदरी और सीतादेवी थीं ।

दोनों पर दुःख देने वाले कर्मों के घातक हमले हुए थे । दोनों बिल्कुल निष्पाप होने के बावजूद अंत्यंत दुःखमय स्थिति में थीं ।

अंजना उसके कुमारिका काल में तो मौज करती थी, सीता की तो जन्म से ही दशा बैठी थी ।

हुआ यूँ कि उसका जन्म जुड़वा के रूप में हुआ था । उसके साथ एक बालक था: जिसका भविष्य में भामंडल नाम पड़ा था । इस बालक की आत्मा को उसके पूर्वभव के देवलोक में किसी देव के साथ बैर हुआ था । उस देव को पता चला कि उसका बैरी जीव सीता के भाई के रूप में अभी ही जन्मा है । अभी तो जुड़वे की माता विदेहा बेहोश थी, वहीं देव तुरंत बालक को उठा ले गया । उसका अपहरण किया । जागृत होने के बाद माता विदेहा का बालक के अभाव का करुण रुदन असह्य था । पिता जनक बिल्कुल बेचैन हो गए थे ।

www.yugpradhan.com

नवजात सीता ने जन्म के साथ ही अपना भाई को धिया । दुःख दे वाले कर्मों का यह कैसा घातक हमला !

कैसी बैर की तीव्र विभावना ! मुझे वह अग्निशर्मा, चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त और वह स्कंदकसूरिजी का देव बना जीव याद आता है ।

जिनशासन को प्राप्त जीव कभी ऐसा बैरभाव नहीं रखता । भूल के बदले उसे मिच्छामि दुक्कडं देने में देर नहीं लगाता और शर्म भी नहीं अनुभव करता ।

उस देव ने भावी भामंडल के जीव-बालक को किसी पत्थर की शिला से पछाड़ कर चूर-चूर कर देने का संकल्प किया था; परन्तु सौभाग्य से उसे अच्छा विचार आया, "इस बालक ने मेरा क्या बिगाड़ा है ? इसके जीव ने देव के रूप में मुझे परेशान किया है, तो मैं इसे क्यों मारूँ ?"

ऐसा सोच कर उस पर दया कर उसे अच्छे आभूषण पहना कर रथनूपुर नगर के उद्यान में घास में खेलने छोड़ दिया ।

देव की करुणा ने काम किया, तो भामंडल की पुण्यता ने भी काम किया । एक हाथ से कभी ताली नहीं बजती ।

रथनूपुर नगर के राजा की नजर में यह बच्चा आया । उसे संतान नहीं थी । इसीलिए वह इस बाल को घर ले गया । रानी पुष्पावती को भी देव का दिया यह बालक बहुत अच्छा लगा । नगर में घोषणा हुई की गूढ़ गर्भवाली रानी पुष्पावती ने बालक को जन्म दिया है । उसका भामंडल नाम रखा गया ।

इस तरफ विदेहा का कल्पांत करुणता की पराकाष्ठा पर पहुँचा । पुण्य से मिला पुत्र इस तरह छीन जाने पर उसे भारी आघात लगा ।

भाई ! ज्ञानदशा से यदि मालूम हो कि यह पुण्यकर्म उस महिला की तरह होता है, जो किसी भी पल पति का घर छोड़ दूसरे घर चली जाती है तो पुण्यकर्म की एकाएक विदाई होने से मन को जरा भी आघात नहीं लगता ।

सुख और दुःख दोनों को मित्र मानो । सुख जाए, तो द्वार तक छोड़ने जाना और भारी प्रेम से विदाई देते हुए कहना, "भाई ! आना फिर कभी । अच्छा लगेगा।"

दुःख घर में आता हो, तो उस मित्र (कर्म खपाने में वह बहुत सहायक है, इसीलिए मित्र) से कहना, "पधारो... पधारो... पधारो... मेहमानजी !"

www.yugpradhan.com

भारत का आतिथ्यसत्कार विश्वविख्यात है । रवीन्द्रनाथ ने इस बात को अंग्रेजी में इस प्रकार कहा है :

Salute the life that goes.

Salute the life tha comes.

दुःख का निवारण दिन हैं । धीरज रखना । दिन गुजारेंगे, तो दुःख बिल्कुल कम लगेगा । फिर दुःख की दूसरी दवा यह है कि उसका भार मन पर नहीं लेना चाहिए।

दुःख की तीसरी दवा है कि हमसे अधिक दुःख वालों को ध्यान में लाएं ।

यह दुःख मुझे फलाने ने दिया है । ऐसी बुद्धि को कुबुद्धि कहा जाता है, क्योंकि दुःख तो पूर्वभव (या इस भव के काले पाप बांध कर हमने ही खड़ा किया है । वह 'फलाना' तो उसमें मात्र निमित्त बना है । उसे कैसे दोष दिया जा सकता है!

कहते हैं :

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता ।
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा ।।

दिन, बरस निकलते गए । माता-पिता पुत्र का दुःख भूलते गए । अब उनके लिए पुत्र या पुत्री, अत्यंत लाड़ली सीता ही थी ।

यौवन की दहलीज पर पैर रखने के साथ ही माता-पिता को सीता के विवाह की चिंता होने लगी । उसका रूप अप्सरा को टक्कर मारे ऐसा था । उसमें संस्कारों का भंडार था । वह गुणों का सागर थी । दो, उसके में ढूँढे नहीं मिलता था । ऐसे कुसम को किसी भी ऐरे-गैरे को नहीं थमाया जा सकता ?

जनक और विदेहा इस विषय को लेकर काफी चिंतित रहते थे । वहाँ सीमा पर मलेच्छ राजवियों के प्रतिकार के लिए जनक ने मित्र दशरथ की मदद मांगी । दशरथ ने राम को भेजा । राम ने अपना अपूर्व पराक्रम दिखा कर जबर्दश्त शत्रु-विजय प्राप्त की ।

जनक को शांति मिली ।

जनक को सीता का वर मिल गया ।

अब हम उस पालक पिता चंद्रगति और पुत्र भामंडल की तरफ नजर करें ।

www.yugnirdhan.com

युवा हो चुके भामंडल के हाथ में एक दिन जानकी (जनक की पुत्री) का अति मोहक चित्र आ गया । वह जानता नहीं कि वह उसकी सगी बहन सीता है । चित्र देख कर उसने उसके साथ विवाह करने का मन ही मन निर्णय किया, परन्तु यह बात पिताजी से खुद पुत्र करता, तो नालायकी कहलाती । चयन तो माता-पिता ही करते हैं । पुत्र केवल मुहर लगाता है ।

ऐसी चित्तस्थिति में भामंडप की खाने-पीने से रुचि उठ गई । इसका तीव्र प्रभाव उसके शरीर पर दिखा, तो राजा चंद्रगति ने मंत्री द्वारा जांच करवा कर सारी हकीकत जानी ।

एक दिन भोजन करते पिता ने पुत्र को लाड़ करते हुए कहा, "बेटा ! तेरे मन की भावना पूरी करना मेरे बाएँ हाथ का खेल है, क्योंकि मेरी अपेक्षा के मुताबिक जनक तो बहुत सामान्य स्तर का राजा है । उसे उठा कर मेरे सामने खड़ा करने का मुझमें सामर्थ्य है ।" चंद्रगति ने वास्तव में ऐसा ही किया । चपलगति विद्याधर द्वारा रात को गोपनीय ढंग से जनक का अपहरण करवा कर अपने सामने खड़ा कर दिया ।

चंद्रगति ने नारद के जरिए पहले ही यह जानकारी पा ली थी कि वह चित्रगत कन्या सीता है ।

इसमें एक बात जानने जैसी है कि सीता अति शुद्ध शील के पालन की आग्रही थी । अत: जब उसके अपूर्व लावण्य का दर्शन करने के लिए निर्विकारी नारद अंत:पुर में गए, तो राजपुरुष के रूप में नारद को सीता ने दासियों से धक्का-मुक्की करवा कर बाहर निकलवा दिया । नारद को यह अपना अपमान लगा । नारद अपमान कभी नहीं भूल सकते थे । यह उनकी बड़ी कमजोरी थी । सगे भाई को सगी बहन सीता पर कामुक बना कर 'बड़ा तूफान' खड़ा करके सीता को बड़े संकट में डाल देने का नारद ने मंसूबा किया । इस कार्य को पूरा करने में उसने बड़ी भूमिका निभाई ।

इधर वासना की तीव्र आग में जल रहा भामंडल शरीर से बिल्कुल दुबला हो गया । अत: राजा चंद्रगति ने जनक से पुत्री सीता का हाथ मांगा ।

राजा जनक बहुत असमंजस में पड़ गए, क्योंकि उन्होंने सीता की राम के साथ व्यक्तिगत रूप से सगाई कर ही दी थी । यह बात राजा जनक ने राजा चंद्रगति को बताई । राजा चंद्रगति बहुत चतुर राजा था । उसने रास्ता निकाला कि वज्रावर्त्त और अर्णवावर्त्त धनुष उठा कर उसका टंकार यदि राम करे, तो सीता उसका वरण करे। अन्यथा भामंडल का वरण करे ।

दोनों पक्षों ने इस बात को स्वीकार कर लिया, परन्तु विदेहा को यह उचित नहीं लगा । उसे बहुत आघात लगा । यदि राम विफल जाएं, तो क्या सीता का विवाह भामंडल से करना पड़ेगा ! एक ही भव में उसके दो पति !

एक पुत्र तो जन्मते ही विदेहा ने खो दिया था । अब क्या पुत्री को भी इस प्रकार खो देना पड़ेगा ! इस विचार से विदेहा की आँखों से आँसू सूख नहीं रहे थे ।

जनक ने विदेहा से राम के प्रचंड बल का वृतांत सुनाया । वह निश्चित ही धनुषों को खेलते-खेलते उठा लेगा, ऐसा विश्वास दिलाया ।

काम फतह हुआ ।

राम के उठाए धनुष लक्ष्मण ने भी उठा लिए, तो उपस्थित राजाओं ने अपनी अट्ठारह कन्याएँ लक्ष्मण को दीं । इससे क्रुद्ध चंद्रगति और भामंडप स्वयंवर मंडप छोड़ कर सरपट विदा हो गए ।

जनक के संदेश से दशरथ फौरन रथ लेकर पहुँच गए । राम सीता का विवाह हुआ । लक्ष्मण का अट्ठारह कन्याओं के साथ विवाह हुआ । जनक के भाई कनक की पुत्री भद्रा का भरत से विवाह हुआ ।

सभी अयोध्या आए ।

इधर सीता विरह से भामंडल अत्यंत आर्तध्यान रहने लगा । पिता चंद्रगति ने इसके निवारण के लिए उसे अनेक तीर्थों की यात्राएँ कराईं । इसमें एक बार विमान से चंद्रगति ने धरती पर किसी मुनि को छोटे से समूह को देशना देते देखा । तुरंत विमान नीचे उतारा । वहाँ देखा, तो दशरथ, राम, सीता आदि पूरा परिवार देशना सुन रहा था । सत्यभूति नामक चार ज्ञान के स्वामी देशना दे रहे थे । मुनि महाज्ञानी थे अतः प्रवचन में ही प्रसंग-अनुप्रसंग से सीता-भामंडल के पूर्वभव लाए । और चालू भव में सीता-भामंडल को सगे भाई-बहन के रूप में वर्णित किया ।

मानो धरती पर बिजली गिरी । यद्यपि यह सुखद था । यह बात सुनते ही सीता के प्रति उसकी कामसंज्ञा खत्म हो गई । बहन के पैरों में जा गिरा । बहन ने भाई को आशीष दिया । ताबड़तोड़ जनक-विदेहा को बुलाया गया । रहस्योद्घाटन जान कर विदेहा के दिल में भामंडल के प्रति अथाक वात्सल्य उमड़ पड़ा । स्तन से दूध की धार छूट गई । भामंडल को चुंबन कर माँ तृप्त हुई ।

संसार की ऐसी विचित्रता का दर्शन कर राजा चंद्रगति ने मुनि सत्यभूति से संयम का अंगिकार किया ।

दशरथ के आग्रह से मुनि ने दशरथ को पूर्वभव सुनाया । इसमें चंद्रगति के पूर्वभव की बातें भी जुड़ी थीं । अपना पूर्वभव सुन कर दशरथ के मन में जल्द से जल्द प्रवज्या लेने की भावना हुई । इस भावना का बीज प्रक्षालजल वाले कंचुकी के प्रसंग में ही पड़ गया था ।

दशरथ अयोध्या पहुँचे । अयोध्या का राजा होने के लिए ज्येष्ठ पुत्र राम निर्विरोध पात्र था । अतः उसे राजभार सौंप कर दीक्षा लेने की भावना दशरथ ने व्यक्त की।

दशरथ के हृदय से वह कंचुकी और उसकी जर्जर काया अभी तक हट नहीं रही थी । विशेष जीवंत बनी थी । ऐसी हालत स्वयं की हो, इससे पहले ही मोक्षमार्ग की साधना का घोर पुरुषार्थ कर लेने की उसकी भावना थी । वृद्धावस्था के बाद मृत्यु का स्मरण भी उन्हें सतत होता था ।

परिवार को एकत्र कर संसार की असारता का बोध देकर दशरथ ने प्रवज्या की सहमति मांगी ।

बस... इसी में से रामायण का सर्जन हुआ । परिवार में मानो बड़ा धमाका हुआ। कैकेयी ने बम-विस्फोट किया ।

यह पूरा प्रसंग हमने पूर्व के दशरथ के पात्रालेखन में देखा है अत: यहाँ पुरवार्तन नहीं करता । पुन: हम सीता का पात्रालेखन करते हैं ।

सीता को रावण लंका उठा ले गया । उसे देवरमण उद्यान में अशोक (आसोपालव) के वृक्ष के नीचे रखा । चारों ओर राक्षसी रक्षिकाओं का कड़ा पहरा रखा ।

जैन रामायणी कहते हैं, "सीता सतत अरिहंत... अरिहंत का जाप करती थी । शीलरक्षा के लिए जिनभक्ति-नामजपादि-अत्यंत सहायक होते हैं । इससे वासनाओं का जोर नहीं जागता और भारी पुण्यवृद्धि होती है कि आपत्तियों के बादल बिखर जाते हैं ।"

विधवा-त्यक्ता बनी स्त्रियों को अखंड शीलपालन करना हो, तो रस त्याग, विभूषा त्याग, परपुरुष संग त्याग करना चाहिए । धर्ममय जीवन जीना चाहिए । जिनभक्ति तो उत्कृष्ट करनी चाहिए ।

www.yugpradhan.com

एकाध साड़ी मिल जाने पर कुमारिका कन्या परपुरुष की तरफ आकर्षित हो जाती हैं; टीवी आदि ससुराल में भी मिलने की संभावना से नारी तनावपूर्ण हो जाती है । मर्दानगी की छोटी-सी कृत्रिम झाँकी देख कर नारी, नर की तरफ खिंची जाती है । सीता को लंकापति रावण मिला है । पैरों तले गिरा है । देवरमण उद्यान में तैयार हुए काम के अद्‌भुत और अपूर्व क्रिडांगण रावण ने उसे दिखाए हैं । दूसरी तरफ पति राम वनवासी हैं, खाने के ठिकाने नहीं हैं, ताड़-पत्तों के वस्त्रों से देह की लाज ढँकी है । जीवन जैसी कोई वस्तु उसमें नहीं है । इतनी बेढंगी हालत है ।

इस प्रकार 'प्लस' बहुत है । 'माइनस' का तो पार नहीं है । फिर भी देवी सीता के रोम में भी रावण का स्नेह जागृत नहीं हुआ है । शील के विषय में इतिहास की यह कैसी अमर पात्र है !

मैं राम बन जाऊँगी तो ?

देवरमण उद्यान यानी स्वर्गलोक के देवों को भी जहाँ भोगक्रीडाएँ करने की

लालसा हो, ऐसा भोगविलासी अत्याधुनिक साधनों से लैस उद्यान ।

उसे तैयार कराने में रावण ने अथक परिश्रम उठाया था; सारी बुद्धि काम में लगाई थी : विपुल सम्पत्ति का व्यय किया था ।

विश्व में बेजोड़ ऐसे यहाँ क्रीडांगण थे । चित्रशालाएँ थीं, इत्र के हौज थे... अरे! क्या नहीं था ? यही प्रश्न था ।

रावण ने इस उद्यान में विमान उतारा । उतरते ही विमान द्वारा सीता को प्रत्येक स्थान दिखाता गया और उसकी मोहकला का वर्णन करता गया ।

परंतु... रावण तो वासना का दास बन कर 'बेचारा' बन गया था, जबकि 'राम' की रट लगाती सीता उसका एक भी कामुक शब्द सुनने के लिए बिल्कुल बहरी बन गई थी ।

अंततः विमान उतरा । रावण ने सीता को एकांत स्थान पर स्थित अति भव्य कुटीर में उतारा था । राक्षसियों (दासियों) को सीता की तैनाती में और चौकी में लगा कर रावण राजमहल में चला गया ।

www.yugpradhan.com

दूसरे दिन से सीता को समझाने के सभी प्रयत्न रावण ने शुरू कर दिए । अरे! निर्लज्ज बन कर अपनी पटरानी मंदोदरी को भी रावण ने सीता के पास भेजा और रावण की इच्छा पूर्ण करने का आग्रह करवाया । मंदोदरी ने कहा, "यदि मेरे स्वामीनाथ की इच्छा को तू पूर्ण करे, तो मैं मेरा पटरानी पद तुझे सौंप दूँ और आजीवन तेरी दासी बन जाऊँ ।"

परन्तु जिसके हृदय में और होठ पर 'राम' हैं, वह सीता ऐसे प्रलोभनों के वश कहाँ होती ? उसने तो मंदोदरी को भी दुत्कारते हुए कहा, "तेरे जैसी स्त्री को ऐसे हल्के शब्द बोलना शोभा देता है ? लेकिन ठीक है । तुम दोनों पति-पत्नी समान मिले हो । किसी की स्त्री के जीवन को बर्बाद करने निकले हो, परन्तु पापियों को उनका पाप ही मारता है, यह बात भूलना नहीं ।"

सीताजी के दुत्कार को सुन कर मंदोदरी बिलख कर वहाँ से चली गई ।

इस तरह राजा रावण के सभी प्रयास विफल जाने लगे ।

एक दिन की बात है । दोपहर का समय ता । राक्षसियाँ सीताजी से दूर बैठी थीं । कोई आराम करती थी; कोई गप लगा रही थी; कोई कपड़े सिलती थी ।

तभी यकायक सीताजी जोर से चीखीं और तुरंत ही बेहोश हो गईं ।

सभी राक्षसियाँ उनकी तरफ दौड़ीं । मुँह पर पानी का छिड़काव कर सीता को सचेत किया; कुछ देर में वे स्वस्थ हुईं ।

राक्षसियों ने पूछा, "महासतीजी ! एकाएक क्या हुआ ? क्यों बेहोश हो गईं ?"

गंभीर मुद्रा के साथ सीता ने कहा, "इस सामने वाले वृक्ष की तरफ देखो । एक भ्रमरी ने उसके थड़ पर मिट्टी के ढेर का कीचड़ ला कर उस पर घर बनाया है। उसमें गहरे छेद किए हैं । हरी वनस्पति में होने वाले लम्बे कीड़ों को भ्रमरी पकड़ती है; उसे डंख मार कर मूर्छित करती है और फिर उठा कर अपने घर के छिद्र में घुसा देती है और घर को मिट्टी का लेप कर बंद कर देती है । इस प्रकार कई कीड़ों को अपने घर में उसने बंद किया । इसके बाद वह घर के चारों ओर घूमती गई और गुंजन करती गई ।"

"मैं जब मेरे मायके में थी, तब मैंने एक बात सुनी थी कि इस तरह भ्रमरी का गुंजन सुन कर; अंदर के कीड़े होश में आने के बाद एकदम भयभीत होकर बावरे बन जाते हैं । अभी भ्रमरी आएगी और मुझे मार डालेगी, ऐसा प्रत्येक कीड़े को संवेदन होता है,परन्तु इस तरह भय से भ्रमरी का ध्यान धरने वाले सभी कीड़े वास्तव में भ्रमरी बन जाते हैं; कीटे नहीं रहते हैं ।"

राक्षसियों ने कहा, "तुम्हारी बात बिल्कुल सही है । हम भी यह जानते हैं, परन्तु तुम चीखी क्यों ? यह नहीं समझ में आया ।"

सीताजी ने कहा, "सुनो । यह दृश्य देख कर मुझे मेरा विचार आया । मुझे ऐसा लगा कि आर्यपुत्र राम का ही अहर्निश ध्यान धरती हूं, तो मैं राम तो नहीं बन जाऊँगी न ? यदि मैं राम बन जाऊँ, तो मेरा संसार कैसे चलेगा ? नहीं... मुझे राम नहीं बनना है । मुझे तो राम की दासी सीता बन कर ही रहना है ।

तो क्या मुझे राम का नाम लेना बंद कर देना चाहिए ? ओह ! यह तो हो ही नहीं सकता; क्योंकि यह नाम तो मेरा श्वास-प्राण है । मेरा आधार है ; मेरा सर्वस्व है ।"

"इस असमंजस में ही मैं जोर से चीखी थी ।"

उस समय एक वृद्ध राक्षसी जोर से हँस पड़ी । उसने सीताजी से कहा, "आज तक तो मैंने आपकी अत्यंत विलक्षण कल्पना की थी, परन्तु आप ऐसी नहीं

निकलीं। अन्यथा आपकी यह स्थिति नहीं होती ।"

"लो, सुनो मेरी बात ।"

"क्या सीता को ही राम पर अथाह प्रेम है ? और उस राम को सीता पर ऐसा प्रेम नहीं है ?"

"महादेवी ! आप ऐसा मानती हैं ?", राक्षसी ने पूछा ।

मुस्कुराते हुए सीता ने कहा, "नहीं... आर्यपुत्र को मेरे प्रति जो अनुराग है, उसकी तो कोई सीमा ही नहीं है ।"

"बस... तो फिर छोड़ दो चिंता कि मैं राम बन जाऊँगी, तो राम-सीता का यह संसार कैसे चलेगा ? क्योंकि जिस क्षण राम... राम... राम... का रटन करती सीता, राम बन जाएगी, उसी पल सीता... सीता... का रटन करते राम, सीता बन जाएंगे! बोलो अब कोई आपत्ति है ?"

राक्षसी के शब्दों को सुन कर हर्षविभोर बनी सीता उसे भेंट पड़ीं ।

**कीटोऽयं भ्रमरी वत्यतिनिदिध्यासे यथाऽहं तथा ।*

स्यामवें रघुनन्दोऽपि त्रिजटे ! दाम्पत्य सौख्यंगतम् ।।

खेदं मा वहं मैथिलेन्द्रतनया, तेनापि योग कृतः ।

सीता सोऽपि भविष्यतीति सरले ! तन्नो मतं जानकि !

-रामायण प्रमाणिता

www.yugpradhan.com

क्या चुनें ?

लाखों विधवाएँ; करोड़ो कुलटाएँ ?

रामचंद्रजी के विरह में सीताजी देवरमण उद्यान में एकाकी दिन गुजार रही थीं। रावण आजीवन सीता का दास बन कर रहने की प्रतिज्ञा करने को तैयार हुआ, तो भी सीता सहमत नहीं हुई; बल्कि उसकी कंगाल याचनाओं को दुत्कार दिया । रावण की कड़े शब्दों में खबर ले ली ।

इस तरफ रामचंद्रजी को सीता का पता चल गया । प्राथमिक प्रयासों में सफलता नहीं मिली, तो रामचंद्रजी ने लंका पर युद्ध की तैयारियाँ शुरु कर दीं । लंका में चारों ओर युद्ध की बातें शुरु हो गईं । लंका के कई नर-नारी इस अधर्म

के युद्ध से नाराज थे, परन्तु सभी कहते, "स्वामी को कौन समझाए ? स्वामी का कोई स्वामी नहीं होता ।"

देवरमण उद्यान में पहरा दे रही राक्षसियों को युद्ध के समाचार मिले । सभी गमगीन हो गईं । व्यर्थ का युद्ध क्यों थोपा जा रहा है ? यह किसी के समझ में नहीं आ रहा था ।

युद्धोतर विनाश के करुण दृश्यों की कल्पना से एक राक्षसी काँप उठी थी । वह स्वयं सीता के पास गई । युद्ध और उसके परिणामों की भीषणता का हूबहू वर्णन किया । उसने बिना पूछे कह दिया, "महादेवी ! इस युद्ध में दोनों पक्षों से भयानक तबाही होगी । इससे हजारों माताएँ अपने लाड़लों को खो कर महीनों तक दिन-रात रुदन करेंगी और लाखों पत्नियाँ अपने प्रियतमों को खो कर विधवाएं बनेंगी; उनकी मांग के सिंदूर मिट जाएंगे ।"

"हे देवी ! आप स्त्री हों, फिर भी स्त्रीजाति के प्रति आपको हमदर्दी नहीं है? क्या लाखों स्त्रियों के वैधव्य की आप आराम से कल्पना कर सकती हैं ?"

गंभीर होकर सीता बोलीं, "वृद्ध माताजी ! यह सब मेरे ख्याल में नहीं हो, ऐसा हो सकता है ? मेरा तो इतना ही प्रश्न है कि आप मुझसे क्या चाहती हैं ? मुझे स्पष्ट बताओ ।"

राक्षसी ने कहा, "हालाँकि कहा तो मुझसे भी नहीं जा रहा, फिर भी हिम्मत करके मेरा अभिप्राय स्पष्ट शब्दों में कहती हूँ कि यदि युद्ध से लाखों स्त्रियाँ विधवा होती हैं, तो उससे बेहतर है कि आप लंकापति की दासी बन जाओ और युद्ध को टाल दो । भले इसमें आपका सतीत्व हनन होगा, परन्तु लाखों विधवाओं की समस्या तो हल हो जाएगी ! बड़े अनर्थ का निवारण करने के लिए छोड़ा अनर्थ को चुन लेना चाहिए । यह आपत्ति धर्म के रूप में स्वीकृत मार्ग है या नहीं ?"

सीताजी ने कहा, "माताजी ! तुम्हारी समझ काफी स्थूल है । इसीलिए तुम्हें ऐसा विचार आया है, परन्तु इसमें तुम्हारा दोष नहीं है; तुम्हारे देश का बौद्धिक विकास जैसा होगा, ऐसा ही तुम्हें समझ में आएगा । अस्तु ।"

"अब मेरी बात सुनो । तुमने जो लाखों विधवाओं के नुकसान की बात कही, वह मुझे स्वीकार्य है, परन्तु अब आगे बढ़ कर मैं तुमसे सवाल पूछती हूँ कि तुम्हारी

सूचना के अनुसार मैं मेरा सतीत्व खत्म करूँ, तो जब-जब जो स्त्रियाँ मेरे जैसी स्थिति का शिकार होंगी, वे सभी स्त्रियाँ इसी उदाहरण को लेंगी और कहेंगी कि राजा राम की महासत्वशालिनी सीता भी यदि लंकापति की शरण में चली गई, तो हमारा क्या सामर्थ्य ? ऐसा विचार करके वे कन्याएँ व स्त्रियाँ परपुरुष के अधीन होने लगेंगी तो ?

इससे तो करोड़ों स्त्रियाँ इस देश में कुलटा बनेंगी ।

अब आप ही कहो कि लाखों को विधवा बनाने वाला विकल्प स्वीकारा जाए या करोड़ों को कुलटा बनाने वाला ? मैं तो चाहती हूँ कि किसी भी विकल्प को चुनने की स्थिति ही न पैदा हो, क्योंकि दोनों विकल्प अच्छे नहीं हैं, परन्तु कोई चारा नहीं है, तो क्या करना चाहिए । मुझे मार्गदर्शन दीजिए ।"

राक्षसी ! बेचारी ! क्या कहे ? सीताजी की इस दूरदर्शिता से उसका सिर झुक गया । सीताजी को प्रणाम कर बिना कुछ कहे वह वहाँ से चली गई ।

आज इस दूरदर्शिता का तत्व नष्टप्राय: हो चुका है । मानव की संकीर्ण दृष्टि ने भारतीय संस्कृति के महाविनाश में बड़ा योगदान दर्ज किया है ।

www.yaspradhan.com

बेचारा मानव ! फटते सिर का दर्द कोई गोली पाँच मिनट में खींच ले, तो रुतं गोली मुँह में डाल लेता है । फिर कहता है, "भले न उसका एक प्रतिशत हिस्सा भी हेमरेज कर मेरी जान लेने में शक्ति लगाए । मर जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु सिर दर्द तो जाना ही चाहिए ।"

"विषाक्त खीर मैं पीकर ही रहूँगा । कड़ाके की भूख लगी है । भले फिर आधे घण्टे बाद रामशरण होना पड़े, कोई आपत्ति नहीं !" कैसी मूर्खतापूर्ण मान्यता ! कैसी संकीर्ण दृष्टि ! कैसी जीवन की नीरसता !

एक बार सीताजी को मुख में प्रवेश रहे दो अष्टापद का स्वप्न आया । रामचंद्रजी से उन्होंने बताया और राम ने इससे दो वीर पुत्रों के जन्म तथा किसी अनिष्ट की भविष्यवाणी की । सीताजी ने कहा : "स्वामी ! धर्म के प्रभाव से सब अच्छा होगा ।"

सीताजी रामचंद्रजी को पूर्व में भी अत्यंत प्रिय थीं । इसमें भी गर्भधारण के बाद तो अत्यंत प्रिय बन गईं ।

सीताजी के प्रति सौतनों की चालबाजी

सीताजी को गर्भवती जान कर रामचंद्रजी के अंत:पुर में रहने वाली अन्य स्त्रियों को सीता के प्रति अत्यंत ईर्ष्या उत्पन्न हुई । उन कपटी स्त्रियों ने येनकेन प्रकारेण सीताजी को रामचंद्र की नजर में गिराने का षड्यंत्र रचा ।

उन्होंने एक बार सीता से कहा, "सीताजी ! बताओ तो सही तुम जिसके घर इतना समय रह आईं, उस रावण का रूप कैसा था ?" तो सीता कहती हैं : "रावण का रूप कैसा था, यह तो नहीं जानती, क्योंक मैंने कभी उसका मुख नहीं देखा। हाँ... वह मेरे पास अनेक बार आकर खड़ा रहता । इसीलिए उसके चरण कैसे हैं, यह जानती हूँ ।"

उन कपटी स्त्रियों ने तुरंत ही इस बात को पकड़ लिया और बोलीं : "हाँ... हाँ बस तो हमें यही बता दो कि रावण के पैर कैसे थे । तुम उनके पैर का चित्र बना दो ।"

सरल हृदयी सीता ने रावण के पैरों का चित्रांकन कर दिखाया । संयोग से यकायक रामचंद्रजी वहाँ पहुँचे ।

www.yogpradhan.com

उन स्त्रियों ने इसका लाभ उठा लिया । तुरंत ही बाहर चली गईं और राम को रावण के पैरों का चित्र बताते हुए कहा, "स्वामीनाथ ! देखो तो सही ! जो तुम्हें अत्यंत प्रिय है, वह तुम्हारी सीता भी रावण को याद करती है और उसकी इच्छा करती रावण के चरणों का ध्यान धरती हैं ।"

उनकी बातें सुन कर राम कुछ नहीं बोले । उन स्त्रियों की नादानी पर विचार करते-करते, बहुत गंभीरता से बड़ा मन करके राम वहाँ से तेज से निकल गए, जिससे सीता को इस बारे में कुछ पता नहीं चले । यदि सीता जान ले कि उस पर गंभीर आरोप लगाया गया है, तो उसकी आत्मा कितनी दु:खेगी ?

सौतनों द्वारा सीताजी के लिए लोगों में झूठा प्रचार

रामचंद्रजी चले गए और उन स्त्रियों को कोई दाद नहीं मिला । अत: सीता के प्रति राम के हृदय का प्रेम तोड़ने के लिए उन्होंने नवा पैंतरा आजमाया । अपनी दासियों द्वारा रावण के पैरों का वह चित्र लोगों में पहुँचाया और ऐसी बातें फैला दीं, "देखो तो सही इस महासती को ! अभी भी उस रावण के चरणों का ध्यान

धरती है ! सीता अभी भी आँसू बहाती है कि मुझे कब फिर से रावण मिलेगा ? देखो इस महासती (!) के लक्षमण !"

ऐसे झूठे प्रचार का भयंकर परिणम आ गया । लोग सीताजी के शील को लेकर अनर्गल चर्चा करने लगे । किसी के बारे में जब कुछ भी कहना हो, तो दोनों पक्षों को सुनना चाहिए । एकपक्षी बात सुन कर आरोप लगाने उचित नहीं हैं । यदि दोनों पक्षों को नहीं सुना जाए, तो कभी-कभी किसी के साथ भयंकर अन्याय होने की आशंका रहती है ।

सीताजी की दाईं आँख का स्पंदन

एक बार वसंत ऋतु का समय आया । तब राम और सीता उद्यान में गए । दोनों ने वहाँ वसंतोत्सव को देखा । उस समय सीताजी की दाईं आँख फड़कने लगी ।

सामान्यत: स्त्रियों की दाईं आँख फड़के और पुरुष की बाईं आँख फड़के, तो अनिष्ट का प्रतीक माना जाता है ।

सीता ने शंकाभाव से राम को बताया, "मेरी दाईं आँख फड़क रही है ।" राम ने कहा, "यह शुभ चिन्ह नहीं है । किसी अमंगल की आशंका है । फिर भी देवी! खेद मत करना । जो कर्म के अधीन है, ऐसी आत्मा को सुख-दु:ख भोगने ही पड़ते हैं । धर्म के प्रभाव से सब कुछ ठीक ही होगा । आपत्ति में शरणभूत एकमात्र धर्म ही है ।"

इसके बाद सीता ने धर्मप्रवृत्ति में चित्त लगा दिया । सीता कुछ भी हो धर्म शासन को समर्पित, महाश्राविका थी । आपत्ति आए, तो आए; उस समय धर्मध्यान का मजेदार अवसर मिलता है । वैसे तो जो निर्माण हुआ है, वह तो अवश्य होता ही है । सीताजी के अदर्धर में यह मंथन चलता था ।

विजय सेठ आदि का राम के समक्ष आगमन

कुछ समय में ही विजय आदि आठ मुख्य नगर सेठ रामचंद्रजी के पास आ पहुँचे। राम ने इनसे नगरचर्या की जानकारी देने के लिए अधिकारी के रूप में नियुक्त किया था ।

आर्यावर्त की राजाशाही भी लोकशाही का स्वीकार करती थी; यद्यपि कुछ तरह से; राजा भी लोगों के प्रति आदर रखते, उनके सही सुझावों को स्वीकारते, शिष्ट

लोगों के विरुद्ध जाने से बचते, मनमाने ढंग से शासन नहीं चलाते थे ।

राम ने विजय आदि से कह रखा था, "जब भी तुम्हें मेरे लिए कुछ कहना जरूरी लगे, तो निःसंकोच कहना । मेरी भूल होगी, तो जरूर सुधारूँगा ।"

विजय आदि रामचंद्र के समक्ष खड़े रहे और थर-थर काँपने लगे । राम ने कहा, "तुम किसी भी तरह का भय मत रखो । जो तुम्हें कहना है खुशी से कहो ।"

सीता को लेकर लोकापवाद की जानकारी देते विजय सेठ

राम की ऐसी सुंदर वाणी सुन कर मुख्य नायक विजय ने कहा, "स्वामिन् ! मैं तुम्हें एक बात जरूर कहना चाहूँगा, अन्यथा मुझसे आपका द्रोह हो जाएगा, परन्तु दुःख की बात है कि मुझे जो कहना है, शायद आपको सुनना अच्छा नहीं लगेगा।"

"बात ऐसी है कि पूरे नगर में सीताजी को लेकर एक अपवाद चल रहा है । लोग कहते हैं कि कामवासना के कारण ही रावण ने सीताजी का अपहरण किया। उन्हें अपने घर में दीर्घकाल तक अकेले रखा । तो सीता भले विरक्त हो, परन्तु वह शुद्ध नहीं रह सकती ।"

www.yugpradhan.com

"राजन् ! लोग कहते हैं कि यदि ऐसी कुलटा स्त्री को भी अपने मोह के कारण राम घर में रखे, तो राम भी पत्नीमोही ही कहलाएंगे न ? मोह के कारण ही उसने सीता को घर में रखा है न ? राजन् ! नगर में सनसनी फैली है । लोगों का कहना है कि यदि राम इस तरह उसे घर में घुसाएँगे, तो उसका संक्रमण सर्वत्र फैलेगा और इसका परिणाम बहुत भयंकर आएगा । राजन् ! हम यह सब सुन नहीं सकते । फिर भी हमारा दायित्व निभाने के लिए हम यह कठिन कार्य कर रहे हैं ।"

विजय कहते हैं : "राजन् ! एक-दो या पाँच-पचास नहीं, मेर हजारों लोग एक ही बात कर रहे हैं कि सीता कुलटा है और राम पत्नीमोही राजा हैं ! हमसे भी ऐसा कड़वा जहरनुमा लोकापवाद सुना नहीं जाता । आप ऐसे लोगों को कारागार में डाल दो ।"

राम समझते हैं कि यह तो विजय आदि की सज्जनता है । इसीलिए मेरा मन बड़ा रखने के लिए मेरे पक्ष में बोलते हैं । वे भी यही कहना चाहते हैं कि ऐसी स्त्री को आप, राम ! घर में क्यों रखते हो ? उच्च स्तरीय ये लोग हैं, इसीलिए ऊँचे शब्द कह गए ।

राम का विजयादि को प्रत्युत्तर और गुप्तवेश में नगरचर्या-निरीक्षण

फिर धीरज धर कर राम कहते हैं : "हे महापुण्यवानों ! तुमने मुझे जो बताया, अच्छा किया है । तुम्हारा दायित्व तुम्हें जरूर निभाना चाहिए । सच्चे राजभक्त ऐसे मामलों में उपेक्षा नहीं करते । फिर भी अब मैं एक स्त्री की खातिर ऐसा अपयश सहन नहीं कर सकूँगा ।"

विजय आदि अधिकारियों को राम ने विदा किया और उसी दिन रात में राम स्वयं गुप्त रूप से नगरचर्या देखने को निकले, क्योंकि हमेशा के लिए किसी भी तरह की आश्वस्तता के बगैर ऐसे जोखिमकारी निर्यण नहीं किए जा सकते ।

राम जब गुप्त रूप से नगर में घूम रहे थे, तब भी उन्हें लोगों के मुँह से सुनने को मिला, "रावण जैसा परपुरुष सीता को उठा ले गया, फिर भी राम अभी उसे सती मानते हैं ?"

गली-मोहल्ले हर जगह हो रही बातें सुन कर राम को लगा कि विजय आदि महाजनों की बात सही थी । फिर राम घर लौट आए ।

www.yuganradhan.com

पुन: नगरचर्या देखने गुप्तचरों को भेजते राम

दूसरे दिन रात को पुन: राम ने अपने गुप्तचरों को इस बारे में निश्चित जानकारी लाने के लिए भेजा और भविष्य में किस तरह की रणनीति अपनाई जाए, यह सोचने लगे ।

राम सोचने लगे, "जिसकी खातिर मैंने राक्षसकुल का नाश किया, उस सीता के सिर ऐसा भयंकर कलंक आया ? मैं स्पष्ट रूप से जानता हूँ कि सीता महासती है और मेरा कुल निष्कलंक है । अब मैं क्या करूँ ?"

जब लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण आदि सभी राम के साथ बैठे, तो गुप्तचरों को राम ने आदेश दिया, "कल रात लोकमुख से तुमने जो सुना, स्पष्ट बताओ।"

गुप्तचरों की बातें सुन कर लक्ष्मण का क्रोध भड़का

गुप्तचरों ने स्पष्ट कहा, "अयोध्या के हर नुक्कड़-चौराहे पर एक ही चर्चा चली है कि रावण के यहाँ रही सीता शुद्ध नहीं हो सकती । ऐसी स्त्री को रामचंद्रजी ने आश्रय देकर बड़ी भूल की है ।"

यह सुन कर लक्ष्मण एकदम क्रोध में आ गए और कह उठे, "बड़े भाई ! कौन है ऐसा बोलने वाला इस दुनिया में ? आप याद रखना कि जो लोग झूठे कारणों की कल्पना कर मेरी महासती जैसी भाभी सीता की निंदा करते हैं, उनके लिए मैं काल हूँ, काल ! मेरी भाभी को अ-सती कहने वालों को मैं मेरी तलवार से खत्म कर दूँगा ।"

राम कहते हैं : सीता की खातिर अपयश की कालिमा अनुचित है

लक्ष्मण को भयंकर क्रोध में देख राम कहते हैं : "लक्ष्मण ! सबसे पहले हमारे ही नियुक्त किए विजय आदि अधिकारियों ने मुझे बताया है । फिर मैंने स्वयं भी लोकापवाद सुना है और मेरे कहने से ही गुप्तचर भी स्वयं सुन कर आए हैं । इसीलिए यह एहवाल अब बिल्कुल पक्का साबित होता है । लक्ष्मण ! हमारा जीवन सदा यशस्वी रहा है । अपने जीवन को एक स्त्री की खातिर अपयश की कालिमा लगना अनुचित है । हाँ ।"

"हालाँकि, सीता सर्वथा शुद्ध है । इसमें मुझे कोई शंका नहीं है । वह परम् पवित्र है, परन्तु किसी विषम कल्पना से लोग ऐसा बोलें, तो क्या वह असंभव है ?"

www.yugpradhan.com

"कुछ भी हो; सीता को लेकर हमारे कुल पर कलंक लगे, हमारे रघुकुल को ऐसा अपयश मिले, तो मुझे हरगिज पसंद नहीं है । कल लोग हमारा झूठा दृष्टांत लेकर घर-घर दुराचार पालने लग जाएंगे । यथा राजा तथा प्रजा, बोल कर हमें ताने मारेंगे। नहीं, यह मैं बर्दाश्त नहीं कर पाऊँगा । फिर भले शुद्ध सीता की मुझे आहुति देनी पड़े ।"

लक्ष्मण कहते हैं : यश की खातिर सीता-त्याग अनुचित

जब राम लक्ष्मण को यश और अपयश का तत्वज्ञान समझाने लगे, तो लक्ष्मण ने कहा, "बड़े भाई ! लोगों के कहने से सीता का त्याग जरा भी उचित नहीं है । लोगों के मुँह पर पट्टी नहीं बांधी जा सकती । लोग तो कुछ भी अनर्गल बोलते हैं ।"

"राजा अच्छा हो और राज्य भी स्वस्थ हो, तो भी लोग राजा का दोष निकालते हैं । इससे उलटे राजा को उन्हें दंडित करना चाहिए या उनकी उपेक्षा करनी चाहिए, परन्तु इस तरह लोगों का यश लेने के लिए लोगों के पक्ष में चले जाना और एक पवित्र स्त्री को दंडित करना जरा भी योग्य नहीं है ।"

राम ने कहा, "लोग ऐसे होते हैं, यह बात सही है, परन्तु जो बात सभी लोगों के अभिप्राय के विरुद्ध हो, उसे तो यशस्वी व्यक्ति को भी छोड़ देना चाहिए ।"

सीता को जंगल में छोड़ आने का राम का आदेश

इसके बाद रामचंद्रजी ने कृतांतवदन नामक सेनापति से कहा, "सीता गर्भवती है । इसीलिए उसके अंतर मं समेदशिखरजी तीर्थ की यात्रा करने की काफी समय से इच्छा भी थी । इसीलिए उस तीर्थयात्रा के बहाने उसे घोर जंगल में ले जा । जहाँ शेर की गर्जनाएँ हो रही हों, ऐसे विकराल प्राणियों से भरपूर जंगल में, बाघ और शेर के बीच में ही सीता को छोड़ देना और तू लौट आना ।"

लक्ष्मण राम का ऐसा आदेश सुन कर पैरों में गिर गया और रोते-रोते राम से कहने लगा, "हे बड़े भैया ! आप यह क्या कर रहे हैं ? यदि आप सीता को अशुद्ध नहीं मानते हैं, तो फिर क्यों उन्हें दंडित करते हैं ? ऐसी महासती को ऐसा त्रास क्यों दे रहे हैं ? आप अपना कदाग्रह छोड़ दें ।"

राम कहते हैं, "सीता महाशुद्ध होने के बावजूद उसे जंगल में छोड़ देने का कारण एक ही है कि सीता की खातिर मेरे कुल को, मेरे जीवन को कलंक लग रहा है, जो मैं सहन नहीं कर सकता हूँ ।"

www.yugpradhan.com

हठाग्रह छोड़ने के लिए राम से लक्ष्मण की याचना

लक्ष्मण कहते हैं, "भाई ! किसी के दिए यश और अपयश की खातिर सत्य को फाँसी क्यों लगा रहे हैं ? आप महासती से अन्याय क्यों कर रहे हैं ? आप प्रसन्न हों और ऐसा हठाग्रह छोड़ दें । सत्य की रक्षा करने के लिए अपयश झेलना पड़े, तो झेल लेना चाहिए, परन्तु सत्य का त्याग कैसे हो सकता है ?"

तो राम लक्ष्मण से साफ कह देते हैं : "अब एक अक्षर भी तू मुझे नहीं कहेगा। मैं अपयश से डरता हूँ । लोग मेरे लिए, मेरे कुल के लिए अनर्गल प्रचार करें, यह मुझसे सहन नहीं होता । सीता को निकाल दूँगा, तो लोग कहेंगे कि चलो, बहुत अच्छा हुआ । सीता को निकाल दिया । इससे मेरा, मेरे कुल का यश बढ़ेगा ।"

एक व्यक्ति सम्पूर्ण सत्य होने के बावजूद अपने यश की खातिर उसे राम ने निकाल दिया । यह राम का बहुत बड़ा अपराध माना जाए या राम की प्रजारक्षा के प्रति दूरदर्शिता ?

कृतांतवदन के साथ सीता का वन गमन

कृतांतवदन ने आकर कहा, "आप जल्दी चलो । रथ में बैठ जाओ । आर्यपुत्र रामचंद्र की आज्ञा है कि आपको समेदशिखर तीर्थ की यात्रा करने ले जाया जाए ।"

सीता मन में सोचने लगी, "अरे ! यह क्या ? समेसशिखर जैसे तीर्थ की यात्रा पर जाना है, तो फिर आर्यपुत्र के साथ क्यों नहीं ? मुझे अकेले क्यों जाना है ? परन्तु आर्यपुत्र की आज्ञा है । इन शब्दों को सुनने के बाद सीता कुछ नहीं बोलीं और मात्र इतना कहा कि जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा ! कितनी अद्‌भुत है सीताजी की पतिआज्ञापरायणता !"

सीताजी रथ में बैठ गईं । रथ चलने लगा । सीताजी को जाते-जाते कई अशुभ चिन्ह दिखाई दिए, परन्तु अब आगे बढ़ने के अलावा कोई चारा नहीं था ।

रथ का सिंहनिनाद वन में आगमन और कृतांतवदन का रुदन

चार घोड़ों से जुड़ा रथ इतने भयंगर वेग से दौड़ा जा रहा था कि उसने देखते ही देखते काफी रास्ता काट दिया और गंगा नदी को पार कर एक भयानक जंगल के अंदर रथ आ खड़ा हुआ । 'सिंहनाद' नामक वह वन था । बाघ और शेर जैसे अनेक हिंसक-मांसाहारी पशुओं की गर्जनाओं और चीखों से पूरा जंगल भयंकर लगता था । अच्छे-अच्छे रुस्तमों की रूह काँप जाए, ऐसा भयानक उस जंगल का दृश्य था ।

जंगल में पहुँचने के बाद कृतांतवदन ने रथ खड़ा किया और कुछ विचार करता हो, इस प्रकार दिग्मूढ़ बन खड़ा रहा । और कुछ देर में अचानक जोर-जोर से रोने लगा। उसे रोता देख सीताजी ने पूछा, "कृतांतवदन ! अकारण क्यों रो रहा है ?" कृतांतवदन जवाब नहीं दे सकता था । उसका गला रुँध गया है । मुश्किल से उसने कहा, "हे महासती सीतादेवी ! मैं क्या कहूँ ? माताजी ! मुझसे बोला नहीं जा रहा है ।"

सीता कहते हैं, "मुझे अकेले यात्रा करने भेजा है । तू इस तरह क्यों फूट-फूट कर रोता है । यह सब क्या है ? जो भी हो बिना घबराए बता ।"

अंततः कृतांतवदन द्वारा सीता के समक्ष सत्य का प्रागट्य

बहुत दृढ़ मन कर कृतांतवदन कहता है, "हे माताजी ! दुर्जन लोगों की भद्दी बातें सुन कर आपके स्वामीनाथ काँप उठे... आप रावण के घर में रह आईं । इससे

आपके शील को लेकर लोगों में अनर्गल चर्चा हुई। लोकापवाद से डर कर अपयश भीरु रामचंद्रजी ने आपका त्याग करने का संकल्प किया और यशभूखे हमारे राजा ने अपने यश की खातिर समेसशिखर की तीर्थयात्रा के बहाने आपको जंगल में छोड़ देने का आदेश दिया है। महादेवी ! क्या करूँ ? पापी पेट की खातिर मुझे मेरे स्वामी का ऐसा अन्यायपूर्ण आदेश स्वीकारना पड़ा है।"

सीताजी को वज्राघात और मूर्च्छा

कहते-कहते कृतांतवदन पुनः जोर-जोरसे रोने लगा और उसके ये शब्द सुनते ही सीताजी पर वज्राघात हुआ। उनके सिर मानो बिजली टूट पड़ी और वे मूर्च्छित हो गईं।

जनक की पुत्री सीता को इस तरह गिरे देख कृतांतवदन ने मान लिया, "सीताजी खत्म हो गई हैं। मुझे लग ही रहा था कि ऐसी सुकुमार सती ऐसा वज्राघात कैसे सहन कर पाएगी ?"

कृतांतवदन पुनः-पुनः रोने लगा। परन्तु कुछ देर बाद शीतल पवन चली और सीताजी ने कुछ हलन-चलन किया। यह देख कर सेनापति को लगा, "नहीं, महादेवी मरी नहीं, जीवित हैं।"

www.yugpradhan.com

कृतांतवदन का आश्वासन और सीता के साथ संवाद

कृतांतवदन सीता से कहता है, "महादेवी ! आप रोएँ नहीं। आप जागृत होएँ।" इस आश्वासन से सीता उठ बैठीं।

इसके बाद सीता कृतांतवदन से कहती हैं, "सेनापति ! राम ने झूठे लोकापवाद से भले मेरा त्याग किया, परन्तु क्या उस समय मेरे देवर लक्ष्मण वहाँ उपस्थित नहीं थे ? विभीषण और हनुमान जैसे आर्यपुत्र के सेवक वहाँ उपस्थित नहीं थे ? किसी ने ऐसा अकार्य करने से रोका नहीं ?"

कृतांतवदन कहता है, "माताजी ! इस लोकापवाद को सुन कर लक्ष्मण तो क्रोध से लाल-पीले हो गए और जब आपका त्याग कर आने को राम ने मुझसे कहा, तो रामचंद्रजी को भी उन्होंने फूट-फूट कर रोते हुए ऐसा अकार्य नहीं करने का आग्रह किया, और कहा कि लोगों के यश की खातिर सत्य को नहीं कुचलें, परन्तु राम ने अपनी आज्ञा के जोर पर उनकी बोलती बंद कर दी।"

"माताजी ! जब लक्ष्मण जैसे की कुछ नहीं चली, तो विभीषण और हनुमान

क्या करते ? हे माताजी ! मुझे मेरे पापी पेट की खातिर राम की आज्ञा से आप जैसी महासती को ऐसे घोर जंगल में अकेले छोड़ देने का काला पाप करना पड़ता है; परन्तु मैं आपसे सच कहता हूँ कि इसमें मेरा कोई दोष नहीं है ।"

उदार और भद्र हृदयी सीता कहती हैं, "सेनापति ! तू जरा भी चिंता मत करना, रोना नहीं । राजाज्ञा का पालन करना तो तेरा धर्म है । मेरे मन में तेरे लिए कोई दुःख नहीं है । जो अपराध है, वह किसी का नहीं है । मात्र मेरे दुष्कर्म का ही अपराध है । मेरा नसीब जहाँ ले जाएगा, वहाँ मैं जाऊँगी ।"

नारी के लिए यह आघात हृदयविदारक होता है

विचार करो कि सम्पूर्णतः शुद्ध महासती, जो अभी तो वन से आई है; जिसकी खातिर युद्ध हुआ; जो रावण के हंगामों व भयंकर जोखिमों के बीच अभी हाल तक तो घिरी हुई थी; गर्भवती है । एक भी व्यक्ति जिसके साथ नहीं है; नहीं कोई दासी, नहीं कोई सखी या कोई संगी; पूर्व में तो रामचंद्रजी स्वयं उसके साथ वन में थे। इसीलिए वह चिंतित नहीं थी, जबकि आज तो बिल्कुल अकेली है और उसमें भी गर्भ में दो बच्चे हैं । ऐसी महासती के साथ ऐसे अवसर पर क्या नहीं हो सकता? इन विचारों से सीता बुरी तरह दुःखी हुई । वे मूर्च्छित होने लगीं ।

नारी के लिए ऐसा आघात पीड़ाकारक-हृदयविदारक हो जाता है । इसमें भी सती नारी के लिए तो शीलभंग का आरोप जहर घोल कर पीने से भी भयंकर हो जाता है । जो सती है, उसके अंतर में ऐसे भयानक लोकापवाद की जो व्यथा हो, उसकी तो हम कल्पना भी नहीं कर सकते ।

सीताजी का राम को अंतिम हृदयविदारक संदेश

सीता भी ऐसा वज्राघात सहन नहीं कर पा रही है । वह फफक-फफक रोती है । सीता का जीवन पूर्व में कैसा खिले गुलाब की तरह था ! सुख और वैभवों में जीने वाला था ! ! फिर भी दृढ़ मनोबल धारण कर सीता राम को अंतिम संदेश भेजती है ।

सीता के इस संदेश के बारे में पूज्यपाद हेमचंद्रसूरिजी महाराजने बहुत सुंदर तीन श्लोक त्रिषष्ठि के सातवें पर्व में आठवें सर्ग में कहे हैं, जो हम देखें ।

"यदि निर्वादभीतस्त्वं, परीक्षां नाकृथाः कथं ।

शंकास्थाने हि सर्वोपि, दिव्यादि लभते जनः । ।३२१ । ।

अनुभोक्ष्ये स्वकर्माणि, मन्दभाग्या वनेप्यम् ।

नानुरुपमकार्षीस्त्वं, विवेकस्य कुलस्य च । ।३२२ । ।

यथा खलगिरा त्याक्षीः, स्वामिन्नेकपदेपि माम् ।

तथा मिथ्यादृशां वाचा, मा धर्मं जिनभाषितम् । ।३२३ । ।"

सीता कहती हैं, "हे कृतांतवदन ! मेरे आर्यपुत्र को तू मेरा इतना अंतिम संदेश देना कि जब तुम लोकापवाद से डर गए थे, तो मेरी अग्निपरीक्षा क्यों नहीं ली ? हमारे आर्यदेश में ऐसे प्रसंगों में दिव्य आदि द्वारा परीक्षा लेने की व्यवस्था कहाँ नहीं थी ? तुम मुझसे कहते तो सही कि सीता ! तेरे लिए लोकापवाद चल रहा है, तो तेरी शुद्धि तो घोषित कर ।"

"खैर ! स्वामीनाथ ! मैं ही मंद भाग्यवाली हूँ । अब मेरे पापकर्मों के उदय से ऐसा दुःख तो मैं वन में भी जरूर भोग लूँगी, परन्तु स्वामीनाथ ! एक निर्दोष नारी को, लोगों के अपयश से डर कर आपने अग्निपरीक्षा आदि किसी भी दिव्य का मौका दिए बगैर वन में धकेल दिया, यह आपके विवेक और कुल दोनों के लिए शोभास्पद नहीं है, ऐसा मुझे स्पष्ट लगता है ।"

"आर्यपुत्र ! अब मेरी एक अंतिम विनती सुन लो । आपने जिस तरह अयोध्या के कुछ दुष्ट लोगों की वाणी सुन कर एक झटके से मेरा परित्याग कर दिया, कोई बात नहीं, लेकिन अन्य किसी दुष्ट पुरुषों की वाणी सुन कर तुम्हें हृदय में बसे धर्म का कभी परित्याग नहीं करना । ऐसे किसी बहकावे में आकर धर्म मत छोड़ देनाा।"

आर्यपुत्र रामचंद्र की चिंता करतीं सीताजी

ऐसा कहने के साथ ही सीताजी पुनः फूट-फूट कर रोने लगीं । नारी की जाति! कुछ भी, है तो अबला ! उसका बल कितना ! ! इससे ऐसा दुःख सहा जाएगा ?

सीताजी पुनः मूर्च्छित खाकर जमीन पर गिर पड़ीं । कृतांतवदन भी फूट-फूट कर रोने लगा । जंगल का पूरा वातावरण मानो शोकाकुल हो गया ।

पुनः स्वस्थ होकर सीताजी ने कृतांतवदन से कहा, "सेनापति ! मेरा संदेश आर्यपुत्र को देना । मुझे एक ही बात की चिंता हो रही है कि आर्यपुत्र मेरे बगैर कैसे जी सकेंगे ? मैं तो मेरे पापकर्म के उदय का विचार कर इस भयंकर दुःख को सहन कर लूँगी, परन्तु आर्यपुत्र मेरे वियोग के दुःख को कैसे बर्दाश्त कर पाएंगे? जरा लक्ष्मण से कहना कि वे रोज रात को उनके पैर दबाएँ । उन्हें उसके बगैर नींद नहीं आती है"

कैसी आदर्श थी यह आर्यवर्त की नारी !

कृतांतवदन सोच में पड़ गया, "अहो महासती ! अभी भी रामचंद्र के बारे में विचार करती है ! ! उनसे कितना त्रास मिला है ? मरणांतकष्ट जैसी दशा में राम ने उन्हें छोड़ दिया, फिर भी अपने जीवन-मरण की चिंता नहीं करती और रामचंद्रजी के प्रति परम भक्ति दर्शा रही हैं !"

सीता की सभी से हार्दिक क्षमापना

भारी हृदय से विदा हो रहे कृतांतवदन से अंत में सीताजी कहती हैं, "कृतांतवदन! मेरा संदेश देकर अंत में आर्यपुत्र से कहना कि हे आर्यपुत्र ! मैं आपको उपदेश देने के योग्य नहीं हूँ । फिर भी निःस्वार्थ स्नेह के कारण ही मुझसे इतना कहा गया है। हे कृपालु ! लम्बे समय तक आपके साथ मेरे सहवास के दौरान मुझसे आपकी कोई भी अविनय, अपराध या असद्व्यवहार हो गया हो, तो मुझे क्षमा करना । आपके साथ अब मिलन हो या नहीं, परन्तु मेरे सर्व अपराधों की मैं क्षमा मांगती हूँ ।"

"मेरे देवरजी लक्ष्मणजी को एक भाभी के रूप में, मेरी सास कौशल्या आदि को एक बहू के रूप में मेरे अंतःकरण की क्षमापना कहना ।"

कैसी होगी वह आर्यवर्त की महाश्राविका ! अपने इतने भयंकर दुःखों और त्रासदी के बीच भी, बाघ और शेर जैसे हिंसक जानवरों के बीच भी अपने मरण की चिंता नहीं और 'उनका क्या होगा ?' यह विचार करना, कोई छोटी-मोटी बात है ?

आर्य देश की कई श्राविकाएँ भयंकर दुःख में पड़ने पर भले ही कभी-कभी बहुत व्यथित हो जाएँ, परन्तु उन दुःखों के समक्ष अजीब चुनौती देने का साहस भी रख सकती हैं !

कृतांतवदन की विदाई और सीता की पुनः पुनः मूर्च्छा

सीता का अंतिम संदेश सुन कर कृतांतवदन बहुत ही विलाप करता, रोता, बिलखता अपने सेवकधर्म का धिक्कार करते हुए अयोध्या की तरफ चला गया ।

एक तरफ सीता 'इधर जाऊँ-उधर जाऊँ ! !' का विचार करते भटकती हैं । इधर जाए, तो बाघ, उधर जाए तो शेर की गर्जना सुनाई देती है । अब क्या किया जाए? सीता फिर मूर्च्छित हो जाती हैं, जागृत होकर रोने लगती हैं ।

कुछ भी हो, तो भी मानव का पुण्य कहीं जाता नहीं है । व्यक्ति को कहीं भी भटकता छोड़ दिया जाए, परन्तु उसके पुण्य को कोई छीन नहीं सकता है ।

वज्रजंघ राजा का जंगल में आगमन

सीताजी अत्यंत रुदन कर रही थीं, तभी अचानक वहाँ कई परिवारों के साथ वज्रजंघ नामक राजा आ पहुँचा । पुंडरीकनगर का वह राजा था । हाथियों की खोज करते हुए वह वहाँ आया था ।

उसके सैनिकों ने एक स्त्री के रुदन की करुण आवाज सुनी । अतः वे उस दिशा में आए कि उन्होंने एक अद्‌भुत रूपसुंदरी को करुण स्वर में विलाप करते, रोते-बिलखते देखा, उसके मुख से अरिहंत-अरिहंत जैसे शब्द का उच्चारण हो रहा था।

सैनिकों ने राजा को बताया, "हे राजन ! इस जंगल में कोई दिव्य रूपसुंदरी, जिसके मुख पर सतीत्व का तेज झलक रहा है, जो गर्भिणी लगती है, वह करुण स्वरूप में विलाप कर रही है ।" राजा वज्रजंघ समाचार मिलते ही सीता के समक्ष पहुँचे ।

सीता की घबराहट और वज्रजंघ का आश्वासन

राजा वज्रजंघ को अपने पास आया देख घबराहट में सीता ने कहा, "भाई ! तुम क्यों आए हो ? तुम्हें चाहिए, तो मेरे ये आभूषण ले जाओ, परन्तु मुझे सताना नहीं ।" सीता ने अपने आभूषण उतार दिए ।

तभी वज्रजंघ ने कहा, "बहन ! तुम्हारे आभूषण तुम्हारे पास ही रखो । मुझे उनकी जरूरत नहीं है । और तुम मुझसे जरा भी डरना नहीं । मैं तुम्हें बहन मानता हूँ ।"

"अब तुम मुझे बताओ कि तुम कौन हो ? और इस तरह अकेले जंगल में तुम्हें

कौन छोड़ गया है ? कौन है तुम्हारा वह क्रूर व निर्दयी पति, जिसने तुम्हें ऐसी स्थिति में छोड़ दिया ? तुम्हारे दुःख से मैं दुःखी हो गया हूँ ।"

राजा वज्रजंघ के ऐसे करुणापूर्ण वचन सुन कर सीता आनंदित हुई । वज्रजंघ के मंत्री सुमति ने वज्रजंघ की पहचान कराते हुए सीता से कहा, "देवी ! वज्रजंघ नामक यह हमारे राजा पुंडरीकनगर के स्वामी हैं । परमार्हत् परम सत्त्वशाली और परनारीसहोदर हैं ।"

मंत्री के इन शब्दों को सुन कर सीता खुश हो गई । श्रावक, श्रावक से मिले, तो उसे चिंता क्यों हो ?

सीता को पुंडरीकनगर ले जाने का वज्रजंघ का आग्रह

इसके बाद सीता ने रोते-रोते सारा वृतांत राजा वज्रजंघ को सुनाया । वज्रजंघ वृतांत सुन कर दुःखी हृदय से बोले, "महासती ! तुम्हें जरा भी चिंता करने की जरूरत नहीं है । मुझे लगता है कि तुम्हारे पति रामचंद्रजी ने भयंकर भूल की है, परन्तु फिर भी एक बात समझ लो कि राम ने लोकापवाद से डर कर तुम्हें निकाला है; उनकी इच्छा से नहीं । इसीलिए मैं मानता हूँ कि राम को एक दिन पश्चाताप् होगा ही; और तब वे तुम्हें वापस लाने के लिए जमीन-आसमान एक करे बगैर नहीं रहेंगे ।"

www.yugpradhan.com

"आप मुझे अपना बंधु मानो । इसीलिए आप बिल्कुल चिंता किए बगैर मेरे पुंडरीकनगर में चलो । और जैसे राम को इस बात की खबर लगेगी, वे दौड़े-दौड़े आएंगे ।"

कभी-कभी बड़ा तैराक भी गड्ढे में डूब जाता है

राम ने वास्तव में सीता के परित्याग के मामले में गंभीर भूल कर दी थी । बड़े आदमी भी कभी-कभी ऐसी भूल कर बैठते हैं कि हमें ऐसा लगता है कि ऐसा बड़ा तैराक भी ऐसे गड्ढे में डूब गया ? लोगों का अपयश टालने के लिए और कुल का यश प्राप्त करने के लिए राम ने सीता की किसी भी तरह की जाँच या परीक्षा किए बगैर उसका त्याग कर दिया, यह राम की असाधारण भूल है ।

....वास्तव में कोई सच्ची बात हो, सिद्धांत रक्षा का सवाल हो, तब महापुरुष इस तरह लोगों के यश की खातिर सत्य को खारिज नहीं कर सकते हैं। सत्य की रक्षा के प्रश्न में यश-अपयश की चिंता नहीं करनी चाहिए। राम, सीता का त्याग करने के मामले में चूक गए, जिसके कारण एक महासती की आहुति दे दी गई।

राम दूसरा 'अभिप्राय' अपना सकते थे

यद्यपि ऐसा करने में कोई दृष्टिकोण राम अपना सकते थे, "लोगों के मुँह में पट्टी तो नहीं बाधी जाती। हमारी बात सम्पूर्ण सत्य है। सीता महा शुद्ध है। फिर भी सीता के अपवाद का दृष्टांत पकड़ कर घर-घर में यदि पुत्रियाँ कुलटा हों; राजा राम ने भी परपुरुष के यहाँ रह आई सीता को घर में रखा, तो हमारी पुत्री या पत्नियाँ भी यदि कोई अनुचित काम कर आएँ, तो हमें घर में रखने में क्या आपत्ति ? ऐसा निमित्त बन कर मेरा संक्रमण प्रजा में फैले, तो क्या हो ? मेरे निमित्त से प्रजा से मूलभूत संस्कृति का नाश हो जाए। इसीलिए सभी पर वर्चस्व जमाने की खातिर भी; सीता बिल्कुल शुद्ध होते हुए भी मुझे उसे जंगल में भेजना पड़ेगा।"

इस तरह राम की नजर में संस्कृति की मर्यादा की रक्षा होती और उस खातिर उन्होंने सीता का त्याग किया होता, तो बहुत विचारणीय हो जाता।

परन्तु 'लोग सीता के लिए पवाद करते हैं और मुझे अपयश मिलता है' इस विचार से सीता का राम ने एकदम त्याग कर दिया, यह तो उचित नहीं ही कहलाएगा।

लागो का तो कोई ठिकाना होता नहीं है। लोग पल में कुछ और पल में कुछ बाले। तुम शंकर-पार्वती का लौकिक दृष्टांत तो जानते हो न ?

लोकमत की चंचलता पर शंकर-पार्वती का दृष्टांत

कहा जाता है कि एक बार शंकर और पार्वती दोनों विमान में बैठ कर आकाश मार्ग से जा रहे थे, तभी बात ही बात में शंकर ने पार्वती से कहा, "ये लोगों को

किसी की कोई कद्र नहीं होती है । उन्हें किसी के अच्छे काम में भी दोष निकालने की आदत होती है ।"

पार्वती कहती हैं, "नहीं, तुम झूठे हो । ऐसा नहीं है ।" शंकर कहते हैं, "तू भोली है । तुझे कुछ पता नहीं है । नहीं तो अभी साबित कर दिखाऊँ ।"

पार्वती कहती हैं, "हाँ । अभी प्रयोग कर दिखाओ ।"

फिर शंकर पार्वती को लेकर तुरंत पृथ्वी पर उतरे और ब्राह्मण-ब्राह्मणी का वेश लेकर एक टट्टू को साथ लेकर चलने लगे ।

प्रथम लोकमत : 'पुरुष होकर टट्टू पर बैठा है !'

एक गली से टट्टू के साथ दोनों ब्राह्मण-ब्राह्मणी निकले । सामने से ही लोग आ रहे थे । शंकर ने कहा, "मैं टट्टू पर बैठता हूँ । तू नीचे चलना और फिर लोग क्या कहते हैं, सुनना ।"

शंकर टट्टू पर बैठ गए और पार्वती नीचे चलने लगी । लोग यह देख कर बोले, "है कोई होश ! आदमी होकर ऊपर चढ़ा और पत्नी को नीचे चलाता है ! !"

www.vyaghraghar.com

शंकर ने कहा, "देखा न ! पार्वती ! लोग कैसा कहते हैं ?" पार्वती कहती हैं, "उनकी बात सही है न ? तुम ऊपर बैठो और मुझे नीचे चलाओ, यह तो अच्छा नहीं है ?"

शंकर ने कहा, "ले अब तू ऊपर बैठ । और मैं नीचे चलता हूँ ।"

दूसरा लोकमत : 'यह तो कोई मर्द है !'

शंकर नीचे चलने लगे और पार्वती टट्टू पर बैठीं । फिर दोनों दूसरी एक गली से गुजरने लगे । वहाँ से भी कुछ लोग गुजर रहे थे, वे बोले, "देखा यह बीवी का गुलाम । पत्नी को ऊपर बैठाया है और स्वयं नीचे चलता-चलता टट्टू चला रहा है। है न निर्माल्य ! यह तो कोई मर्द है या कौन है ?"

शंकर ने पार्वती से कहा, "ले सुनती जा... अभी भी तुझे इन लोगों की बेकद्रदानी समझ में नहीं आई ?"

पार्वती कहती हैं, "नहीं... नहीं... उनकी यह बात भी कहां गलत है ? मर्द होकर तुम नीचे चलो, तो अच्छा है कहीं ?"

शंकर कहते हैं, "तो मैं अब क्या करूँ ? तू ही बता ।" पार्वती कहती हैं, "चलो... हम दोनों टट्टू पर बैठ जाएँ ।"

तीसरा लोकमत : 'दोनों कैसे निर्दयी हैं !'

शंकर-पार्वती दोनों टट्टू पर बैठ गए । कुछ आगे चले कि अन्य कुछ लोग मिले। पति-पत्नी दोनों को टट्टू पर बैठे देख वे बोले, "देखो तो सही... ये लोग कैसे निर्दयी व क्रूर हैं ! ! दोनों मिया-बीवी टट्टू पर चढ़ बैठे हैं ! ऐसे तो इस टट्टू को ये लोग मार ही डालेंगे !"

तब शंकर ने पार्वती से कहा, "अब सुना न ? यह दुनिया वास्तव में बेकद्र है। अब भी तू नहीं समझेगी ।" पार्वती कहती हैं, "परन्तु उनकी बात भी कहाँ गलत है ? हम दोनों बैठ जाएंगे, तो टट्टू बेचारा मर ही जाएगा न !"

www.yugpradhan.com

चौथा लोकमत : 'टट्टू पूजा करने के लिए रखा है ?'

अंतत दोनों टट्टू से नीचे उतर गए और चलने लगे । आगे जाने पर कुछ लोग मिले । वे इन दोनों को चलते देख कर बोले, "देखो... देखो, ये दोनों कैसे विचित्र इंसान है ! टट्टू हाजिर होने के बावजूद उसे पालते हैं; बचाते हैं, परन्तु उस पर दोनों में से एक भी बैठता नहीं है । क्या पूजा करने के लिए टट्टू रखा है ?"

पार्वती को विश्वास हो गया कि पति शंकर जो कहते थे, वह वास्तव में सही ही है ।

यह दुनिया क्या कहती है ? इसकी परवाह करने जैसी नहीं है । दुनिया को सत्य या सत्प्रवृत्ति की खास कद्र नहीं होती है । इसीलिए सच्चा काम करने वाले इंसान यदि दूसरों के सामने देखते हैं, तो वे यह कार्य कर नहीं सकते; यदि लोगों के ताल पर चलना हो, तो इंसान कभी सत्य की भी हत्या कर डालेगा ! और इसका परिणाम भयंकर होगा !

कृतांतवदन का राम के समक्ष पुनरागमन इधर कृतांतवदन सीता को छोड़ कर अयोध्या में आ पहुँचे । आने के साथ ही राम ने पूछा, "कृतांतवदन ! क्या कर आया ? सीता को वन में छोड़ आया ?"

कृतांतवदन ने कहा, "हाँ राजन् ! आपकी आज्ञा के अनुसार गर्भवती सीता को सिंहनिनाद नामक वन में अकेली छोड़ दिया है । जो जंगल शेर, बाघ, भालू, चीता आदि भयंकर प्राणियों की चित्र-विचित्र आवाजों से डरावना और रोम-रोम को कंपाने वाला लगता था ।"

"सीताजी को जब आपके समाचार मैंने सुनाए, तो वे बारबार मूर्च्छित होने लगीं । उनके आक्रंद का कोई पार नहीं था । फिर भी धीरज धारण कर वे महासत्त्वशालिनी महादेवी ने आपको अंतिम संदेश भेजा है ।"

संदेश सुनने को उत्सुक राम पूछते हैं, "हाँ... क्या कहा ? बता, बता, जल्दी बता... सीता ने मेरे लिए क्या संदेश भेजा है ?"

www.yugpradhan.com

रामचंद्रजी को सीता का अंतिम संदेश सुनाता कृतांत

कृतांतवदन कहता है, "स्वामीनाथ ! जिसकी आँखों से निरंतर अश्रुधारा बह रही थी, ऐसी सीता ने कहा है कि आर्यपुत्र से कहना कि हे आर्यपुत्र ! मेरे प्रति लोगों में अपवाद जागा, कोई बात नहीं, परन्तु मेरे प्रति शंका को दूर करने के लिए दिव्य करने की सुव्यवस्था आर्यदेश में कहाँ नहीं थी ? किस देश या शास्त्र में ऐसा आचार है कि एक पक्ष की बात सुन कर दूसरे पक्ष को पूछे बगैर ही दंडित किया जाए ?"

"खैर, मेरे मंद भाग्य में जो था, वह ठीक; परन्तु हे आर्यपुत्र ! आपने जो काम किया है, वह अपके कुल और विवेक के लिए शोभास्पद नहीं है ।"

"आप तो सदा निर्दोष हैं, जो दोष है, वह मेरे कर्म का है : परन्तु मेरी आपसे एक विनती है कि जिन दुष्ट व्यक्तियों की बात सुन कर आपने मेरा त्याग कर दिया, उसी तरह अन्य किन्हीं मिथ्यात्वी व्यक्तियों की बातें सुन कर धर्मशासन का त्याग कभी मत कर देना ।"

इतना संदेश सुन कर अंततः सीताजी ने आप सभी के चरणों में अंतिम क्षमापना कही है ।

फिर मुझे अंततः यह भी कहा है, "मैं तो मेरे भाग्य का विचार कर अभी भी जी सकूँगी, लेकिन आर्यपुत्र मेरे विरह में कैसे जी सकेंगे ? इसकी मुझे चिंता होती है ।"

राम का अंतर-पश्चाताप और करुणा विलाप

कृतांतवदन के मुख से सीता का हृदयविदारक संदेश सुन कर राम धरती पर ढल गए । वे मूर्च्छित हो गए । राम को सीता के इन शब्दों में अपने प्रति आह स्नेहभाव का साक्षात्कार हो गया ।

जागृत होने के बाद राम भयंकर पश्चाताप करने लगे । उन्हें ख्याल आ गया कि उन्होंने बड़ी भूल कर दी है ।

राम चीखते हुए कहते हैं, "हे सीते ! हे सीते ! तू कहाँ है ? तू जहाँ हो, वहाँ से लौट आ । हे भगवान ! मैंने इस खलपुरुष के वचनों से सीता का त्याग क्यों किया ? हे लक्ष्मण ! तू सीता को जहाँ हो, वहाँ से ले आ । नहीं तो चल...हम सभी उसे खोज लाएँ ।"

www.yugpradhan.com

राम को लक्ष्मण का आश्वासन

राम के करुण विलाप को शांत करते चतुर लक्ष्मण बोले, "हे बड़े भाई ! आप धीरज धरो । वह महासती अभी भी अपने सत् के प्रभाव से वन में भी सुरक्षित ही होंगी ।"

"जीव कहीं भी हो, परन्तु उनका परम सुकृत पुण्योदय के समय में उनकी जरूर रक्षा करता है । अतः आप स्वयं ही तत्काल वहाँ जाओ और उसे जरूर बचा लाओ।"

राम का सीता की खोज के लिए वन प्रयाण और सीता का अ-मिलन

राम कृतांतवदन और अन्य अनुचरों को साथ लेकर, जहाँ सीता को छोड़ा गया

था, उस भयंकर सिंहनिनाद वन में आ पहुँचे ।

राम ने सर्वत्र सीता की खोज शुरू की । एक-एक कोने, पर्वतों की गुफाओं, अरे ! पहाड़ों की गिरीकंदराओं में और तालाब-सरोवरों में सर्वत्र सीता की खोज की । एक-एक पेड़ देख लिए, परन्तु सीता नहीं मिली । सीता कहाँ से मिलती ? वह तो वज्रजंघ राजा के नगर में पहुँच गई थी ।

सीता जब कहीं भी न मिली, तो राम फूट-फूट कर रोने लगे । उन्होंने मान लिया कि निश्चित ही सीता परलोक में पहुँच गई होगी । ऐसे दारूण जंगल में जरूर किसी पशु ने उसे अपना शिकार बना लिया होगा ।

राम के कल्पांत का पार नहीं रहा । राम अयोध्या लौटते हैं और सीता का क्रियाकर्म कर देते हैं ।

पुंडरीकपुर में सीता के दो पुत्रों का जन्म व विवाहादि

www.yogadhari.com

इधर सीता वज्रजंघ राजा के पुंडरीकनगर में एक घर में निवास करती है । वह सदा धर्मपरायण ही रहती है । ऐसे में सीता ने एक दिन पुत्रयुगल को जन्म दिया

इन दोनों पुत्रों के क्रमशः अनंगलवण और मदनांकुश नाम रखे गए । उनके संक्षिप्त नाम लव व कुश के रूप में प्रसिद्ध हुए हैं अतः हम इन्हीं नामों का उल्लेख करेंगे । दो पुत्रों के जन्म के कारण राजा वज्रजंघ अपने सगे पुत्रों के जन्म से भी अधिक आनंदित हो गए ।

ये दोनों बालक ऐसे तेजस्वी थे कि देखते के साथ ही मानो शेर के बच्चे जैसे लगे । दोनों बच्चे बहुत ही तेजी से बड़े होने लगे ।

नवयौवन की दहलीज पर आकर जब दोनों खड़े हुए, तब शशिचूला आदि कन्याओं के साथ लव का और कनकमाल नामक कन्या के साथ कुश का विवाह हो गया ।

नारदजी द्वारा लवण-अंकुश को सत्य का ज्ञान

एक दिन नारदजी वहाँ आ गए । वज्रजंघ ने उनका आदर-सत्कार किया और

लव तथा कुश के समक्ष प्रसंगोपात नारदजी ने कहा, "तुम्हारे पिताजी तो रामचंद्रजी हैं !" इसके बाद नारद ने सारा वास्तविक वृतांत संक्षिप्त में बताया ।

उस समय अंकुश ने नारद के समक्ष हास्य करते हुए कहा, "राम ने इस तरह माता का दारुण वन में त्याग कराया, यह अच्छा नहीं किया । यह तो सही है न ? लोकापवाद को दूर करने के लिए और भी कई रास्ते हैं । फिर भी विद्वान राम ने ऐसा क्यों किया !"

इतने में लवण ने तुरंत पूछा, "नारदजी ! यहाँ से अयोध्या कितनी दूर है, जहाँ हमारे पिता व काका रहते हैं ?"

नारद ने कहा, "यहाँ से अयोध्या एक सौ सात जोजन दूर है ।"

लव और कुश इतने पराक्रमी व तेजस्वी थे कि उन्होंने वज्रजंघ आदि राजाओं के साथ रह कर अन्य अनेक देशों पर जीत हासिल कर ली ।

लव-कुश की अयोध्या जाकर युद्ध करने की इच्छा और सीता का निषेध

www.yugpradhan.com

लव और कुश को जब अयोध्या जाने की तीव्र इच्छा हो गई, तो उन्होंने वज्रजंघ से कहा, "हमारी माता का जिन्होंने अन्यायपूर्ण ढंग से त्याग किया है, उस रामचंद्रजी को भी हमें सबक सिखाना है । उनका पराक्रम कैसा है, यह भी हम देख लेते हैं ।"

सीताजी यह सुन कर रोने लगीं और गद्‌गद् कंठ से कहने लगीं, "पुत्रों ! यह तुम क्या कहते हो ? यह तुम्हारी इच्छा तो बड़ी अनर्थकारी होगी । तुम्हारे पिता व काका तो देवों के लिए भी दुर्जेय हैं । उन्होंने महाबलवान रावण को खत्म कर दिया है । यदि तुम्हें उन्हें देखना ही है, तो नम्र बन कर उनके पास जाओ ।"

लव-कुश ने जवाब दिया, "माताजी ! जिन्होंने तुम्हारा त्याग कर दिया और जो भयंकर अकार्य किया है, उसे देखते हुए हमारे वे पिता हों, तो भी हमारे लिए अभी शत्रु ही हैं । हम किस तरह उनकी विनय करें ? हम उनके पास जाएं, तो भी

लज्जास्पद कहलाएगा । अत: हम तो युद्ध का आह्वान करेंगे, जिससे वे जानेंगे, तो हमें भी आनंद होगा ।"

सीता कहती हैं, "तुम उन्हें पहचानते नहीं । ये शेर जैसे हैं, और तुम नादान हो । तुम्हें ऐसे बलवानों के साथ भिड़ने का विचार आना भी अनुचित है ।"

लव-कुश कहते हैं, "माँ ! हम नहीं बर्दाश्त करेंगे । जिस पिता ने हमारी माता को बदनाम किया, उसे हम निश्चित ही दंडित करेंगे । हम कौन, तू जानती है । हम सीता की संतानें हैं ।"

सीता की अवगणन करके भी लव-कुश का युद्धार्थ गमन

इतना कह कर लव और कुश चलते हुए । सीता रोती रहीं । दस हजार की विराट सेना लेकर लव-कुश अयोध्या की तरफ बढ़ने लगे ।

राम और लक्ष्मण को जब यह समाचार मिले कि कोई दो राजकुमार युद्ध के लिए आ रहे हैं, तो वे हँसने लगे और इसके बाद रामचंद्रजी लक्ष्मण सहित युद्ध करने के लिए आ पहुँचे ।

www.yogpradhan.com

इसी समय सीता के भाई राजा भामंडल से नारदजी मिले । नारद से भामंडल ने पूछा, "नारदजी ! बताइए तो सही ! मेरी बहन सीता को जंगल में राम ने छोड़ दिया था, फिर वह जीवित है या हिंसक प्राणियों की शिकार बन गई ? उसका कुछ पता लगा भी ?"

तब नारदजी ने कहा, "भामंडल ! चिंता मत करो । सीता अभी जीवित ही है और वज्रजंघ राजा के यहाँ पुंडरीकनगर में क्षेमकुशल ही है ।"

रुंधे गले से भामंडल ने कहा, "क्या बात करते हो ? अभी मुझे या रामचंद्रजी को तो कोई समाचार नहीं मिले हैं । अरे ! राम ने तो सीता को मृत समझ कर उसका क्रियाकर्म भी कर दिया । चलो, तुरंत सीता के पास पहुंचता हूँ ।"

भामंडल का सीता के समक्ष आगमन

भामंडल तुरंत सीता के समक्ष आए । प्रेम से मिले । फिर सीता रोने ही लगी।

भामंडल ने पूछा, "बहन, क्या है ? क्यों रोती हो ?" सीता ने कहा, "राम ने मेरा त्याग किया है, यह बात जान कर तुम्हारे दो बलवान भांजे राम से लड़ने गए हैं। अतः तुम जाकर उन्हें तुरंत ही रोको ।" सीता के अंतर में भारी घबराहट और भय व्याप्त हो गया ।

भामंडल कहते हैं, "राम ने जल्दबाजी में तुम्हारा त्याग करके एक बड़ी भूल तो की है । अब अनजाने में अपने ही पुत्रों का नाश कर दूसरी भूल नहीं कर बैठें। ये बालक अभी छोटे हैं । बच्चे जैसे हैं । उन्हें क्या पता कि राम कैसे महापराक्रमी हैं ? चलो बहन ! हम अभी वहाँ पहुँचें ।"

लव-कुश की छावनी में भामंडल-सीता का आगमन

यह सोच कर सीता और भामंडल विमान में बैठ कर सीधे लव व कुश की छावनी में आए ।

www.yagpradhan.com

माताजी को स्वयं आया देख लव-कुश तुरंत खड़े हो गए और माता के चरणों में प्रणाम किए । सीता ने कहा, "बेटों ! देखो ये भामंडल हैं न, ये तुम्हारे सगे मामा हैं।"

लवण और अंकुश का सिंह जैसा सटीक जवाब

भामंडल भी सिंह जैसे पराक्रमी अपने भांजों को देख कर अत्यंत खुश हुए । सीता उन्हें युद्ध नहीं करने के लिए पुनः समझाती है, तो बच्चे कहते हैं, "माँ ! जिस पिता ने एक अपयश की खातिर तेरा बिल्कुल त्याग कर दिया, उसे हम नहीं छोड़ेंगे । यदि अब युद्ध रोकेंगे, तो तेरी कोख लज्जित होगी । लोग कहेंगे, क्या सीता के पुत्र ऐसे नपुंसक हैं ! माँ ! हम दिखा देना चाहते हैं कि हम कौन हैं ?"

"राम हमारे पिता हैं और लक्ष्मण काका हैं, तो क्या । हम उन्हें मार नहीं डालेंगे, परन्तु माँ ! अभी तो हम मात्र उनसे खेल खेल रहे हैं । अभी तू देख तो सही ! हम उन्हें बराबर सबक सिखा देंगे । उन्हें जीवित बांध कर तेरे पास लाएंगे । माँ ! तू जरा भी चिंता मत कर ।"

भामंडल तो अपने वीर-पराक्रमी भांजों की बातें सुन कर खुश हो गया : "ये दोनों वीर-पुत्र वास्तव में कमाल करेंगे", इस रोमांच से वह पुलकित हो गया ।

भामंडल द्वारा लव-कुश की रामपुत्रों के रूप में सुग्रीव को जानकारी

इस तरफ लव और कुश के विरुद्ध राम के सैनिक आ पहुँचे, तो लव-कुश उनके विरुद्ध युद्ध करने लगे । भामंडल ने उस रामसेना में सुग्रीव को देखा और सुग्रीव ने भामंडल को देखा । सुग्रीव ने पूछा, "अरे ! भामंडल ! ये दोनों वीरकुमार कौन हैं ?" भामंडल ने कहा, "अरे ! ये दोनों कोई और नहीं, बल्कि रामचंद्र के ही वीर सुपुत्र हैं !"

यह समाचार सुनते ही सुग्रीव आदि अनुचरों ने सीता के समक्ष आकर प्रणाम किया । इधर देखते ही देखते पराक्रमी लव व कुश ने राम की समग्र सेना को तोड़ दिया । सीता के दो वीरपुत्रों के सामने कोई टिक नहीं सका ।

राम और लक्ष्मण के विरुद्ध युद्ध करते लव-कुश

www.yugpradhan.com

जब राम और लक्ष्मण स्वयं ही लव-कुश के सामने आ गए, तो राम व लक्ष्मण परस्पर विचार करने लगे, "ये दोनों सुंदर राजकुमार कौन होंगे ?" राम कहते हैं, "लक्ष्मण ! इन देवकुमार जैसे कुमारों को देखते ही उनके प्रति सहज स्नेह उत्पन्न होता है । कैसे सुंदर कुमार हैं ! उन्हें भेंट पड़ने की इच्छा हो जाती है । अब क्या करूँ ? कैसे युद्ध करूँ ?"

युद्ध में लव-कुश का अजीब कहर

रथ में बैठे-बैठे राम लक्ष्मण इस प्रकार बाते करते हैं । इतने में तो लव-कुश कहर बरपाते हैं । ऐसे भयंकर धनुष-टंकार करते हैं कि राम भी चकित हो जाते हैं ।

राम के समक्ष लव आ गए और लक्ष्मण के समक्ष अंकुश । भीषण युद्ध शुरु हुआ । सारथि अपने-अपने रथों को जोरजोर से घुमाने लगे और इन वीर सुपुत्रों ने आमने-सामने शस्त्र-प्रहार शुरु कर दिए ।

लव और कुश राम-लक्ष्मण के साथ अपने सम्बंध जानते हैं, इसीलिए सावधानीपूर्वक

लड़ते हैं, जबकि राम-लक्ष्मण को इन सम्बंधों की जानकारी नहीं है । इसीलिए वे जम कर संघर्ष कर रहे हैं ।

इसके बावजूद लव-कुश का कहर ऐसा भीषण है कि लक्ष्मण विचार में पड़ जाते हैं, "ये छोटे से बालक भी जोरदार लगते हैं । यदि ध्यान नहीं रखें, तो हमें मुश्किल में डाल देंगे । उनके एक के बाद एक बाण प्रचंड वेग से आ रहे हैं । शत्रु तो पैदा होते ही खत्म कर देना चाहिए ।"

लव के बाणों के सामने प्रहत होता राम का रथ और सारथि

लव-कुश के बाण सन्न-सन्न करते ऐसे छूटते हैं कि राम को भी सारथि कृतांतवदन से कहना पड़ता है, "अरे ! रथ ठीक शत्रु के सामने रख ।" इस पर कृतांतवदन कहता है, "स्वामी ! क्या करूँ ? हमारे रथ के घोडों के अंग-अंग को इन शत्रुओं के बाणों ने छलनी कर दिया है । अत: चाबुक की मार से भी घोड़े गति नहीं पकड़ते । हमारा रथ भी टूटने वाला है और मेरी बाजुओं में भी बाणों के घाव लगे हैं । अत: मेरी और अश्वों की तो अब लड़ने की शक्ति नहीं रही है ।"

www.vyapradnan.com

लव के एक-एक बाण ऐसे आते हैं कि राम के शस्त्र बीच में ही टूट जाते हैं। राम कह उठते हैं, "अरे ! यह मेरा वज्रवर्त धनुष भी ढीला-ढीला हो गया है ! अरे! यह मूसलरत्न भी असमर्थ बन गया है ! अरे ! यह हलरत्न भी नाकाम हो गया है। इस रथ के पहिये टूट रहे हैं ! मेरे सारे शस्त्र मानो खत्म हो रहे हैं ? कुछ समझ में नहीं आता ।"

अंकुश के वज्रनुमा बाण से लक्ष्मण की मूर्च्छा

एक तरफ लव के बाणों से राम के शस्तर विफल हो गए, तो दूसरी तरफ अंकुश के साथ युद्ध कर रहे लक्ष्मण के शस्त्र भी बेकार हो गए थे । मौका देख कर अंकुश ने लक्ष्मण के सीने पर वज्रनुमा बाण मारा कि लक्ष्मण मूर्च्छा खार रथ में ही गिर पड़े ।

लक्ष्मण के मूर्च्छित होते ही सारथि विराध रणभूमि छोड़ कर अयोध्या की तरफ

चलने लगा । इतने में लक्ष्मण जागडत हुए । उन्होंने विराध से कहा, "अरे विराध! तू यह क्या कर रहा है ? दशरथ का ऐसा महाबलवान पुत्र इस तरह समरांगण से भाग जाए, तो उचित है ?"

अंकुश के विरुद्ध सुदर्शन चक्र छोड़ते लक्ष्मण

तुरंत विराध ने रथ युद्ध भूमि पर मोड़ा और एकदम आवेश में आकर लक्ष्मण ने दाएँ हाथ में सुदर्शन चक्र घुमाना शुरु किया और सन्न करता अंकुश के विरुद्ध छोड़ दिया ।

अपनी तरफ आ रहे सूर्य जैसे भयंकर तेजस्वी सुदर्शन चक्र को विफल करने के लिए लवण व अंकुश ने हजारों शस्त्र छोड़ दिए, परन्तु चक्र बीच में स्खलित नहीं हुआ ।

पुनः पुनः लौटता सुदर्शन चक्र

www.yugpradhan.com

सभी समझ गए : "समाप्त समाप्त ! ये वीरपुत्र आज ही खत्म हो जाएंगे । भारी से भारी चक्र उन पर छूट गया है ।" परन्तु... सभी के आश्चर्य के बीच ही चक्र वेगपूर्वक अंकुश की प्रदक्षिणा कर लक्ष्मण के हाथ में लौट आया, क्योंकि सुदर्शन चक्र का ऐसा नियम है कि वह स्वगोत्रीय किसी की भी हत्या नहीं करता, परंतु उसके विरुद्ध छोड़ने पर वह उसकी प्रदक्षिणा कर लौट आता है ।

लक्ष्मण भी अचंभे में पड़ गए और आवेश में आकर पुनः चक्र छोड़ा, परन्तु फिर वही हुआ । यह देख कर क्षण भर तो राम-लक्ष्मण सोच में पड़ गए, "क्या यही दोनों भाई बलभद्र और वासुदेव होंगे ! हम नहीं होंगे ?"

नारदजी द्वारा सत्य का प्रागट्य

इतने में नारदजी वहाँ आ गए और राम तथा लक्ष्मण से कहने लगे, "अरे ! रामचंद्रजी व लक्ष्मणजी ! आप क्यों खेद कर रहे हैं ? ये दोनों कुमार कोई और नहीं, बल्कि तुम्हारी धर्मपत्नी सीता के ही लवण व अंकुश नामक पराक्रमी पुत्र हैं।

रामचंद्रजी ! याद रखो कि सीताजी अभी भी जीवित हैं और वज्रजंघ राजा की पुंडरीकनगरी में रह कर उनकी कोख से इन दोनों पुत्ररत्नों का जन्म हुआ है । तुम्हारे ही पुत्रों से हुआ तुम्हारा पराभव तो आनंद का विषय है ।"

राम की मूर्च्छा - जागृति और पुत्रों के साथ भावविह्वल मिलन

इतना कह कर नारद ने सीता के समस्त समाचार राम-लक्ष्मण को सुनाए । राम यह सुन कर मूर्च्छित हो गए ।

फिर जागृत होकर पुत्र-वात्सल्य से भरपूर हृदय से राम व लक्ष्मण लवणांकुश के पास जाने लगे । उन्हें आता देख लवणांकुश बोले, "चलो...चलो...पिताजी हार गए !" मजाक में कहते ही दोनों सर्व शस्त्रों को छोड़ कर रथ से नीचे उतर गए और दोनों क्रमशः पिता व काका राम-लक्ष्मण के चरणों में गिर गए ।

दोनों प्रिय पुत्रों से राम अश्रुपूर्ण नेत्रों से भेंट पड़े । अपने पुत्रों का अपूर्व पराक्रम व पिता के साथ पुत्रों का अंततः ऐसा भावपूर्ण मिलन देख कर सीताजी अत्यंत हर्षविभोर हो गईं ।

www.yugpradhan.com

सीता का पुंडरीकनगरी में पुनः प्रयाण

सीता के अनुसार उनका काम पूर्ण हुआ था । इसीलिए सीताजी कहती हैं, "चलो अब हम पुंडरीकनगर चले जाएँ । मुझे अयोध्या नहीं आना है ।" सीताजी को जो अपरम्पार दुःख राम की तरफ से प्राप्त हुआ था, वह भूल कर वे राम की तरफ दौड़ी जाएँ, इतनी कमजोर नहीं थीं सीताजी । वे कहती थीं, "मेरे पुत्रों का अपूर्व पराक्रम और अंततः उनके पिता से मिलन के अद्‌भुत दृश्य देख कर मेरी आत्मा परम हर्ष को प्राप्त हुई है । अब मुझे और कुछ नहीं चाहिए ।"

सीताजी पुंडरीकनगर की तरफ विमान में चली गईं । इधर अपने ही जैसे महापराक्रमी पुत्रों को पाकर राम के हृदय में अपार आनंद हुआ । राम का समग्र सेवकगण भी अपार आनंदित हुआ ।

लव-कुश के साथ राम का अयोध्या में प्रवेश

लवण और अंकुश को पुष्पक विमान में अपने साथ बैठा कर राम ने अयोध्या में प्रवेश किया । नगरी के लाखों लोग महातेजस्वी पुत्रों को देख रहे थे और पुत्रागमन का भव्य महोत्सव अयोध्या में मनाया गया ।

सीता को वापस लाने लक्ष्णमादि का आग्रह और राम की सशर्त सहमति

एक बार लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान, विभीषण आदि ने मिल कर राम से कहा, "स्वामीजी ! सीताजी आपके पुत्रों के विरह में तड़प रही होंगी । उन्हें ले आएँ तो कैसा रहेगा ?"

राम कहते हैं, "बात सही है, और मैं भी यही चाहता हूँ कि सीता लौट आए, परन्तु लोकापवाद का क्या ? यद्यपि सीता सम्पूर्ण शुद्ध महासती है, यह मैं भी जानता हूँ और वह स्वयं भी अपनी निर्मलता जानती है, परन्तु लोकापवाद को दूर करने का एक रास्ता है । और वह है दिव्य करने का ।

सीता यदि सर्व लोगों के समक्ष दिव्य करे और लोगों के हृदय में अपनी शुद्धता साबित करके पुनः मेरे साथ गृहवास में रहे, तो मुझे इष्ट होगा ।"

राम की वाणी सुन कर सभी आनंदित हुए ।

सीता के समक्ष सुग्रीव का आगमन और अयोध्या आने के प्रति सीता की अनिच्छा

और राम की आज्ञा से सुग्रीव पुंडरीकनगर आए । वहाँ जाकर सीताजी से नमस्कार कर आग्रह किया, "देवी ! आप पुष्पक विमान में बैठ कर अयोध्या पधारो। आपके लिए ही यह विमान रामचंद्रजी ने भेजा है ।"

सीता ने कहा, "मुझे क्यों अयोध्या लौटना चाहिए ? आर्यपुत्र ने मुझे बिना

अपराध जंगल में छोड़ दिया... अभी मेरा वह आघात शांत नहीं हुआ । अब ऐसे आर्यपुत्र के पास आकर भी मैं क्या करूँ ?"

महादु:खियारी स्त्री : सीता

सीता बेचारी एक ऐसी दु:खियारी महासती थी कि जसने जन्म के साथ ही अपना भाई भामंडल खो दिया था ! बड़ी हुई, फिर बारह वर्ष तक पति रामचंद्रजी के साथ उसे जंगल में भटकना पड़ा ! इसमें भी रावण ने बेचारी का अपहरण कर लिया ! वहाँ उसे भयंकर जोखिम और संताप के बीच रहना पड़ा ! इससे मुक्त होने के बाद राम के साथ अयोध्या में आकर शांति व सुख प्राप्त करने का अवसर मिला, तो उस लोकापवाद ने उसे प्रताड़ित किया । जंगल में अकेले पति के बगैर जाना पड़ा । वह तो कुछ पुण्य बच गया था, जिससे उसे वज्रजंघ का सहारा मिल गया।

अब ऐसी स्त्री को संसार असार नहीं लगेगा, तो क्या लगेगा ? उसके मन में तो यही होगा न कि अब मेरे लिए इस संसार में भोगने जैसा बचा ही क्या है ? कर्म की भयंकर गुलामी आत्मा पर सदा हावी रहती है । धारणा करके भी कुछ नहीं होता ! अब मुझे संसारी का जीवन जीकर क्या करना है ? मेरी इच्छा अब तो केवल धर्मध्यान में ही जीवन बिताने की है ।

www.yugpradhan.com

अंतत: दिव्य के लिए अयोध्या आने को सीता तैयार हुई

अंतत: सुग्रीव सीता को समझाते हुए कहते हैं, "देवी ! राम ने आपको त्रस्त करने में कुछ शेष नहीं छोड़ा, यह सही है, परन्तु लोकहृदय में आपके प्रति जो गलत छवि है, उसे आप दूर करना नहीं चाहेंगी ? राम चाहते हैं कि आप दुनिया के समक्ष शुद्ध होकर आएँ ।"

सीता तो ऐसे दिव्य द्वारा अपनी शुद्धता जाहिर करने के लिए पहले ही तैयार थीं । इसीलिए उन्होंने इस प्रस्ताव का स्वागत करते हुए कहा, "हाँ सुग्रीव ! मैं सदा शुद्ध हूँ । मैंने कभी किसी को स्पर्श तक नहीं करने दिया है । मैं मेरी शुद्धता जाहिर करने दिव्य करने के लिए तैयार हूँ । चलो... इसके लिए मैं जरूर आऊँगी ।"

सीता का आगमन और दिव्य के बाद ही नगरप्रवेश की प्रतिज्ञा

इसके बाद तत्काल सुग्रीव और सीता विमान में अयोध्या आ पहुँचे और नगर के बाहर महेन्द्रोदय उद्यान में उतरे। वहाँ लक्ष्मम तथा अन्य अनेक राजाओं ने उन्हें नमस्कार कर कहा, "देवी ! आप अपनी नगरी में और घर में पधार कर उसे पवित्र करो ।"

तो सीता कहती हैं, "जब तक अयोध्या के लोगों की नजर में मैं अशुद्ध हूँ, तब तक मैं नगर में पैर नहीं रखूँगी । अत: सबसे पहले दिव्य द्वारा मेरी शुद्धता जगत के समक्ष जाहिर करूँगी और बाद में ही किसी अन्य बात पर विचार करूँगी ।"

सीता के जीवन में कैसे-कैसे दु:ख आन पडे ! सब कर्म का दिया हुआ है । दु:ख और सुख सब कर्म का दिया हुआ ही खाना है न ! ! पुण्यकर्म दे, तो खाना और पुण्यकर्म छीन ले तो भूखे रहना ! ऐसे पुण्य व पाप सच्चे धर्मात्मा को कभी इच्छित नहीं होते । किसी के देने पर भोगें और किसी के छीन लेने पर छिन जाएं, ऐसे सुख किस काम के ! ऐसे कर्मों की गुलामी की सच्चे धर्मी कभी इच्छा नहीं रखते ।

सीता कहती हैं, "मैं शुद्ध हूँ, पवित्र हूँ, इतना घोषित होने दो । मुझे दिव्य कर लेने दो । फिर दूसरी बात ।"

सीता का राम को कटाक्ष : 'तुम वास्तव में चतुर पुरुष'

सीता की ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा राम को बताई गई और राम ने भी सीता से कहा, "हाँ तुम रावण के घर रह आई हो, फिर भी तुम यदि शुद्ध हो, तो सभी लोगों के समक्ष दिव्य करो ।"

सीता हँसते हुए कहती हैं, "आर्यपुत्र ! इस जगत में अजीब चतुर पुरुष हो ! जिसने दोष जाने बगैर ही महावन में मेरा त्याग कर दिया ! और पहले दंडित किया, अब मेरी परीक्षा करते हो ? धन्य है तुम्हारी चतुराई को ! खैर... इसके बावजूद मैं तो आज भी दिव्य करने को तैयार हूँ ।"

पाँचों प्रकार के दिव्य के लिए सीता तैयार

सीता ने कहा, "भले स्वामिन् ! हमारी स्त्री-जाति की शुद्धता के लिए पाँच प्रकार के दिव्य किए जाते हैं । (१) अग्नि में प्रवेश करने रूपी (२) मंत्रित तांदुल का भक्षण करने रूपी (३) तराजू पर चढ़ने रूपी (४) गर्म सीसे के रस का पान करने रूपी और (५) जिह्वा से शस्त्र के फल को ग्रहण करने रूपी ।"

आज ऐसे दिव्य के प्रयोग करवाना उचित नहीं लगता, क्योंकि आज स्त्री सती हो, तो भी ऐसा दैवत व देवतत्व की जागृति दोनों नहीं दिखते । यदि दैवी तत्व की सहायता नहीं मिले, तो आज कोई स्त्री सम्पूर्ण सती हो, तो भी शायद अग्नि में जल कर खाक हो जाए ।

लोगों की दोधारी वाणी की कड़ी निंदा करते राम

सीता को जब दिव्य करने की बात की गई, तो लोग कहने लगे, "हे राघव ! यह सीता निश्चित ही सती, सती और महासती है । इसमें तुम ऐसा विकल्प भी नहीं करो ।"

www.yugpradhan.com

तो राम मंच पर खड़े होकर कहते हैं, "हे लोगं ! तुम्हारे बोलने का कोई ठिकाना नहीं है । ये तुम्ही लोग हो, जिन्होंने पूर्व में सीता को अशुद्ध कहा था । अब मैं तुम्हारी बात मानने को तैयार नहीं हूँ । तुम मुझे यह तो बताओ कि सीता पहले किस तरह तुम्हारी नजर में दोषी थी और अब कैसे पवित्र बन गई ?"

"तुम लोग तो यहाँ सीता को शुद्ध कहोगे और दूसरी जगह पुनः अशुद्ध कहोगे। तुम सबके समक्ष सभी को दृढ़ प्रतीति हो, इसके लिए मैं सीता को आदेश देता हूँ कि सीता धू-धू करती अग्नि में प्रवेश कर अपना सतीत्व सिद्ध कर दिखाए ।"

धू-धू करते अग्निकुंड में सीता का प्रवेश

इसके बाद तीन सौ हाथ लम्बा-चौड़ा और दो पुरुष जितना ऊँचा एक गड्ढा तैयार किया गया और उसे चंदन की लकड़ियों से भर दिया या । इसमें घी आदि डाले गए और आग लगाई गई । लोग बार-बार पुकारते हैं, "सीता महासती है ।

अयोध्यापति ! आप वापस आओ । ऐसा आदेश नहीं करो ।"

परन्तु राम टस से मस नहीं हुए । वे बिल्कुल नहीं झुके । इस तरफ इंद्र ने अपने एक सेवक को आज्ञा की, "जाओ, सीता दिव्य कर रही है, तुम उसकी सहायता करो ।"

भड़भड़ जलती विकराल अग्नि के समक्ष सीता खड़ी हुई और परमात्मा का स्मरण कर बोलीं, "हे लोकपालों ! क्षेत्रपालों और शासनदेवों ! आप मेरी बात सुनो । यदि मैंने इस जीवन में आर्यपुत्र राम को छोड़ कर किसी भी पुरुष की मन से अभिलाषा की हो, तो हे अग्नि ! तुम मुझे अभी की भी जला दो । नहीं तो जल जैसे बन जाओ ।"

सीता के सतीत्व के प्रभाव से अग्नि का जल में रूपांतरण

मंत्राधिराज का स्मरण कर सीता ने अग्निकुंड में कदम बढ़ाया । जैसे अग्नि में सीता गिरीं कि तुरंत अग्नि बुझ गई और वह गड्ढा स्वच्छ जल से भर गया ।

www.yagpradhan.com

सीता के सतीत्व से प्रभावित ऐसे देव की माया से जल के बीच में मनोहर कमल की रचना हो गई । उस कमल पर एक भव्य सिंहासन पर बैठी सीताजी लक्ष्मीदेवी की तरह सुशोभित हो उठीं ।

लोगों की ओर बढ़ता जल प्रवाह

गड्ढे का पानी बल्लियों उलाचें भरने लगा और लोगों की तरफ बढ़ने लगा । बड़ी-बड़ी मचानें भी पानी में डूबने लगीं । लोग चीख़-पुकार करने लगे, "हे महासतीजी ! हमें बचाओ । हमारी रक्षा करो ।"

उस समय सीताजी ने जल के प्रवाह को अपने संकल्प के प्रभाव से शांत कर दिया । सीता के शील के प्रभाव से खुश हुए नारद आदि आकाश में नृत्य करने लगे । देवताओं ने सीता पर पुष्पवृष्टि की और 'अहो ! राम की पत्नी का यह तो कैसा यशस्वी चारित्र्य !' ऐसी आकाश में घोषणा करने लगे ।

सर्वाधिक आनंद लवण व अंकुश को

अभी सर्वाधिक हर्ष किसे होगा ? ! रामचंद्रजी को तो होगा ही, परन्तु उससे भी अधिक आनंद लवण व अंकुश पर छा गया : "वाह ! हमारी माता का कैसा प्रभाव ! वह कैसी परम शुद्ध सती सिद्ध हुई !"

माता के परमभक्त लव व कुश दोनों हंस की तरह तैरते-तैरते सीता माता के पास पहुँच गए । माता ने दोनों को गोद में लिया और सिंहासन पर अपने आसपास बैठा दिया । प्रसन्नवदना सीता की आँखों से हर्ष के आँसू बहने लगे ।

सीता से क्षमायाचना करते रामचंद्रजी

इसके बाद रामचंद्रजी, लक्ष्मण, सुग्रीव, शत्रुघ्न, भामंडल और विभीषण के साथ सीताजी के पास आए और लज्जा तथा पश्चाताप से पूर्ण हृदय से उन्होंने सीताजी से क्षमायाचना करते हुए कहा, "देवी ! ये लोग स्वभाव से ही दोषदृष्टा हैं । उनकी बातों का अनुकरण कर मैंने तुम्हारा त्याग किया, मैंने बड़ा अपराध किया है । मांसाहारी प्राणियों के आवास जैसे जंगल में भी तुम जीवित रहीं यही महादिव्य था । फिर भी मैंने उसे नहीं जाना और तुमसे ऐसा दिव्य करवाया । तुम मुझे क्षमा करो । कृपा करके इस पुष्पक विमान में बैठो और मेरे साथ घर चलो ।"

www.yogpradhan.com

स्वकर्म को दोष देतीं सीताजी

सीता कहती हैं, "स्वामीनाथ ! यह जो कुछ भी हुआ है, उसमें आपका कोई दोष नहीं है । लोगों का भी इसमें दोष नहीं है । दोष मेरे पूर्वकृत कर्मों का ही है। इसमें आप दुःखी मत हो, आपको क्षमा मांगने की जरूरत नहीं है !"

"मेरे कर्म से ही मेरे माथे पर कलंक आया न ! फिर मैंने वन से कठोर संदेश भेज कर आपका विनयभंग किया । तुम्हारे कुल व विवेक के लिए अशोभास्पद कृत्य किया, ऐसा कहा । क्षमा तो स्वामीनाथ ! मुझे मांगनी चाहिए ।"

राम कहते हैं, "नहीं... देवी ! तुम तो वास्तव में महासत्त्वशाली हो । अब सब कुछ भूल कर घर चलो... मेरे साथ ।"

संयम पथ पर जाने का सीता का दृढ़ संकल्प

सीता कहती हैं, "नहीं स्वामीनाथ ! संसार का ऐसा भयानक तांडव देखने के बाद मेरे अंतर में अब वैराग्य हो गया है । अब मैं संसार में लौटूँ, ऐसी मूर्ख नहीं हूँ । भगवंतों ने शास्त्र में जैसा कर्म का स्वरूप बताया है, ऐसा ही मेरी समझ में ठीक से आ गया है । अब तो मैं मेरे मानव जीवन को सफल करने वाली प्रवज्या ग्रहण करना चाहती हूँ ।"

केशलोचन कर दीक्षा लेतीं सीताजी

इतना कह कर तुरंत ही सीता ने वहीं कि वहीं अपने मस्तक का लोच किया और वे बाल राम के हाथ में रख दिए ।

राम यह दृश्य फटी आँखों से देखते रहे और तुरंत बेहोश हो गए । इस तरफ सीताजी तुरंच ही चलने लगीं और जयभूषण नामक केवलज्ञानी मुनि से दीक्षा ले ली ।

www.yugpradhan.com

सीता को लौटा लाने राम का आग्रह

राम पर चंदन जलका सिंचन करते ही वे स्वस्थ हुए । और बोल उठे, "महादेवी सीता कहाँ हैं ? अरे भूचरों-खेचरों और लक्ष्मण ! तुम जहाँ हो, वहाँ से मेरी सीता को खोज लाओ । लोच हुआ, तो ले हुआ, परन्तु मुझे मेरी सीता वापस लाकर सौंप दो ! अरे लक्ष्मण ! मैं इतना दुःखी हूँ, फिर तू क्यों उदासीन बैठा रहा है ?"

मोहदशा कितनी भयंकर है ! वीतराग का शासन मिलने के बावजूद भी दीक्षित सीता को लौटा लाने की बात राम करते हैं !

राम को लक्ष्मण ने समझाया

लक्ष्मण कहते हैं, "हे आर्य ! आप यह क्या कह रहे हैं ? न्याय में निष्ठ होकर भी जिस तरह दोष के भय से आपने सीता का त्याग किया था, उसी प्रकार स्वार्थ (आत्मार्थ) निष्ठ सीता ने इस संसार के भय से हम सब का त्याग किया है । तुम्हारी

पत्नी सीता ने अभी ही जयभूषण मुनि से दीक्षा ली है । उस महर्षि को अभी ही केवलज्ञान हुआ है । हम उसकी महिमा करें ।"

"इतना ही नहीं महाव्रतधारी सीता भी वहीं हैं । चलो, हम वहाँ जाएँ ।"

इसके बाद स्वस्थ होकर राम ने कहा, "अहो ! सीता ने दीक्षा लेकर बहुत अच्छा किया ।"

जयभूषण मुनि और सीता साध्वी के समक्ष राम का आगमन

इसके बाद राम सपरिवार जयभूषण मुनि के समक्ष गए और देशना का श्रवण किया । वहाँ राम के सेनापति कृतांतवदन ने भी दीक्षा ली ।

फिर राम आदि सभी सीता के समक्ष आए और उन्हें भावपूर्ण नमस्कार किया। इसके बाद राम अयोध्या में गए ।

इधर सीता और कृतांतवदन घोर तप करने लगे । कृतांतवदन मुनि ब्रह्मलीन होकर ब्रह्मदेवलोक में गए और सीता साध्वी साठ वर्ष तक विविध तप कर बाईस सागरोपम के आयुष्य वाली 'अच्युतेन्द्र' हुई ।

www.yugpradhan.com

* * *

(७) भरत

रामायण या भरतायन ?

रामचंद्रजी ने वन की तरफ प्रयाण किया । भरत के आघात का कोई ठिकाना न रहा । उसकी मनोव्यथा आवेश की उग्रता पकड़ने लगी । सारा आक्रोश माता कैकयी पर उसने उड़ेला । क्या करना था ? और क्या हो गया ? यह कटु वास्तविकता के पत्थरों के साथ टकराती कैकेय भी दिग्मूढ़ बन गई थी । चारों तरफ से वाक्प्रहार झेल रही कैकेयी पर भरत के प्रहार नमक में भीगे हंटर की मार से भी भयंकर थे । वह माँ थी; वह उसकी संतान था । माँ, सबसे अपमानित सहन कर सकती है, परन्तु संतान से अपमानित होने की वेदना तो कैसे बर्दाश्त करती ? सहिष्णुता की भी मर्यादा होती है न ?

भरत अंधाधुंध तरीके से माता को फटकार लगाने लगा, "ओ, पापिनी माँ ! तेरे ही पाप से बड़े भाई को वनवास सहना पड़ा ! तुझे तो क्या धिक्कार दूँ, परंतु धिक्कार है अपने आप पर, जिसका जन्म एक पुत्र के पीछे मोहांध बन कर कुकर्म कर डालने वाली पापिनी माँ की कोख से हुआ ! हाय ! पूर्वजन्मों में मैंने कैसे पाप किए होंगे ? जिसके फल आज भोग रहा हूँ !"

www.yugpradhan.com

परार्थपरायण, अकारणवत्सल, करुणासिन्धु बड़े भाई रामचंद्रजी जैसे महात्मा को मेरे निमित्त वनवास ! अहो ! अहो ! इस विचार से मुझे चक्कर आ जाते हैं। (धिङ्मां जातोऽस्मि, कैकेय्यां, पापराशिविधनतः । मन्निमित्तमिदं क्लेशं, रामस्य परमात्मनः)

अजैन रामायण में ऐसा भी कहा जाता है कि रामचंद्रजी वन में गए, तो भरत अयोध्या में हाजिर नहीं थे । वे मामा के घर थे । जब उन्हें ताबड़तोड़ अयोध्या बुलाया गया, तभी घटी घटनाओं के बारे में उन्हें सिलसिलेवार जानकारी मिली । भरत ने राज्य स्वीकारने से स्पष्ट इनकार कर दिया । भरत कौशल्या माँ के पास गए। भरत के मन में शंका थी, "कौशल्या माँ के ख्याल में ऐसा होगा कि कैकेयी को आगे रख कर भरत ने ही अयोध्या का राज छीन लिया होगा ।"

इस शंका का निवारण करने के लिए भरत ने कौशल्या माँ से कहा, "माँ ! तुम ऐसी कोई शंका नहीं रखना । मेरी माँ कैकेयी ने ही यह नीच कृत्य किया है । इसमें मेरा जरा भी हाथ नहीं है । ओ माँ ! यदि इसमें अप्रत्यक्ष रूप से भी मेरा हाथ हो, तो मुझे सौ-सौ ब्रह्महत्या का पाप लगे । गुरु वशिष्ठ और गुरुपत्नी अरुंधती की हत्या करने का पाप लगे", इतना कह कर भरत जोर से रोने लगे ।

पापं मेऽस्तु तदा मोतर्ब्रह्महत्याशतोद्भवम् ।
हत्वा वशिष्ठं खड्गेन अरुन्धत्यासमन्वितम् ।
भूयात्पापमखिलं मम, जानामि यद्यहं ।
इत्येवं शपथं कृत्वा रुरोद भरतस्तदा ।।

राज्य राजा विहीन नहीं रह सकता; अतः इसीलिए कोई उपाय तो करना ही होगा । ऐसे समय में राजा के सिर ऋषि थे ।

दरबार भरा । वशिष्ठ ऋषि वहाँ पधारे । वातावरण अत्यंत ग्लानिमय था । प्रजाजनों से पूरा ही राजमहल खचाखच भर गया था । सभी के दिल ऊँचे-नीचे हो रहे थे ।

www.yugpradhan.com

एक तरफ रामचंद्रजी का वन में गमन !

दूसरी तरफ भरत का करुण कल्पांत और राज्य से स्पष्ट इनकार !

वशिष्ठ क्या करेंगे ? क्या उपाय ढूँढेंगे ?

प्रजाजनों के मन में यही असमंजस था । राजदरबार के सिंहासन की एक तरफ भद्रासन पड़ा था, जिस पर भरत बैठा था । उनकी आँखें बारबार आँसू से छलक रही थी ! "हे राम !" उद्गार बारबार मुँह से निकलते थे । भरत का यह दुःख प्रजाजनों से देखा नहीं जा रहा था । कई आँखें रोती थीं । कई मुँह खोल कर भरत के सामने देख रहे थे; कइयों के दिल की अपार व्यथा उनके मुँह पर चली आ रही थी ।

नीरव शांति को तोड़ते हुए वशिष्ठ ऋषि बोले, "भरत ! पिताजी की आज्ञा पालन करना क्या पुत्र-धर्म नहीं है ? अब आनाकानी किए बगैर तुम्हें राज्यारुढ़ हो जाना चाहिए, ऐसा मुझे लगता है ।"

कमर पर हाथ रख कर बैठे भरत ने सिर उठाया । खड़े होकर विनम्रभाव से ऋषि

को नमन कर भरत बोले, "भगवन् ! आप भी ऐसा कह रहे हैं ? भले... आज्ञा का मुझसे उल्लंघन नहीं हो सकता; परन्तु इस सेवक को एक बात कह लेने दो ।"

"मुझे आपसे इतना ही पूछना है कि राजा तो धर्मशील ही होना चाहिए न ? मैं तो पापिनी माता का अधर्मी पुत्र हूँ । (चाहिअ धरमसील नरनाहु) भगवन् ! यदि मेरे जैसे पापीष्ठ को अयोध्या का राजा बनाओगे, तो सातों समुद्र अयोध्या की धरती पर फैल जाएंगे; (रासासातल जाइही तबही) अयोध्या के लाखों नर-नारी मरण की शरण होंगे; सैंकड़ों धरती-मंडन मंदिर नष्ट होंगे । ओ भगवन् ! मेरे एक पाप से लाखों का पापोदय ! सर्वनाश !"

"क्या यह स्थिति आपको मंजूर है ?", भरत ने दृढ़ आवाज से पूछा ।

भरत के इस प्रस्तुतिकरण से पूरी सभा स्तब्ध हो गई । अब ऋषिवर क्या कहते हैं, यह जानने के लिए सभी चौकन्ने हो गए ।

कुछ देर शांति पसरी रही । फिर वशिष्ठ ऋषि बोले, "भरत ! पिता की अनुपस्थिति में ज्येष्ठ बंधु पिता के स्थान पर माने जाते हैं । तुम एक बार वन में जाओ; रामचंद्रजी से मिलो; तुम्हारी सारी बात उनके समक्ष प्रस्तुत करो... वे न समझें, तो मेरी तरफ से कहना कि वशिष्ठ ऋषि कहते हैं कि अयोध्या की सारी प्रजाजनों और हम सबकी इच्छा है कि आप वापस लौटो, और अयोध्या का राज संभाल लो । इतना ही नहीं पिताजी की वनवास की आज्ञा का-वनवास स्वीकार लेने का तुम पालन कर चुके हो अर्थात् अब वह आज्ञा शेष नहीं रहती ।"

वशिष्ठ ऋषि का यह संदेश प्राप्त कर भरत आनंदविभोर हो गए ।

कुछ ही समय में भरत और पश्चाताप की आग में जल रही माता कैकेयी दोनों रथ में बैठ गए । रथ वन की तरफ बढ़ने लगा ।

भरद्वाज ऋषि के आश्रम में

रामचंद्रजी के पास वन में जाते रास्ते में भरद्वाज ऋषि का आश्रम आया । भरत ने वहीं रात्रिविश्रंम किया । पूरी रात भरत ने मनोव्यथा की अनुभूति की । बारबार उसके मुँह से क्षोभपूर्ण सुर ही निकल रहे थे । चर्मासन पर सूते भरद्वाज ऋषि से भरत की वेदना अछूती नहीं रही । वे उठ कर भरत के समक्ष आए । "क्यों तुम व्यथित हो ?" ऋषि ने पूछा ।

भरत ने कहा, "ऋषिवर ! मेरे जैसा दुःखियारा शायद इस जगत में कोई नहीं होगा । मेरे दुःख की क्या बताऊँ ? पूरी रात मुझे एक ही विचार आता रहा कि बड़े भाई रामचंद्रजी के दिल में मेरा स्थान होगा या नहीं ? मेरे ही मोह के कारण माँ ने राज मांगा; बड़े भाई ने वनवास स्वीकारा ।"

"अकारणवत्सल रामचंद्रजी को हमने निष्कारण वन में भेज दिया है ! हाय ! अब उनके हृदय के किसी निर्जन कोने में भी मेरा स्थान कहाँ से होगा ? कैसे थे हमारे वे दिन ! अहो ! गए... चले गए वे दिन ! रह गई मात्र सुखद स्मृतियाँ !" भरत ने फिर लम्बी साँस ली ।

कुछ पल के बाद फिर भरत बोले, "ऋषिवर ! वन में प्रयाण करते रामचंद्रजी ने क्या यहाँ रात्रिविश्राम किया था ?"

ऋषि ने कहा, "हाँ ।"

तुरंत स्वस्थ होकर भरत बोले, "तो... तो... गुरुदेव ! आपने उनके साथ बातें तो की ही होंगी न ? उनकी रात्रिचर्या, प्रातःकालीन दिनचर्या भी देखी ही होगी न ?"

www.yugpradhan.com

पुनः ऋषि ने कहा, "हाँ ।"

"तो आपको कहीं भी ऐसा लगा कि जिससे यह पता चल सके कि बड़े भाई के हृदय में मेरा स्थान बना हुआ है ? अरे, भूला ! अब वह प्रश्न ही कहाँ रहता है ।"

परन्तु तुरंत ऋषि बोले, "भरत ! शोक न करो । आपको खुशी के समाचार देता हूँ कि आज भी आपका स्थान रामचंद्रजी के दिल में है । दिल के प्रत्येक खंड में है; उपखंडों में भी है ।"

"अरे ! भगवान ! क्या कह रहे हैं ?", हर्ष से बल्लियों उछले भरत ने पूछा, "कैसे आपको प्रतीत हुआ ? मुझे अभी बताओ", एक ही साँस से भरत बोल गए ।

"सुनो", ऋषि ने बात की शुरूआत की ।

हाथ जोड़ कर भरद्वाज ऋषि के समक्ष भरत बैठ गए और उस धन्यातिधन्य पल की प्रतीक्षा करने लगे कि जिस पल में 'आज भी रामचंद्रजी के हृदय में तुम्हारा स्थान है', ऐसा जयवंती शब्द कान में पड़े ।

ऋषिवर ने कहा, "प्रभात का समय था । रामचंद्रजी को मैं सामने स्थित तालाब

पर ले गया । आवश्यक क्रिया निपटाने के बाद सूर्योदय होते ही रामचंद्रजी ने तालाब से अपनी हथेली में पानी लिया । सूर्यनारायण के समक्ष पूर्व दिशा सम्मुख खड़े होकर वे नित्यविधि अनुसार बोलने लगे-जंबूद्वीपे, भरत... इतना कह कर रुक गए । उनकी आँख में आँसू निकल पड़े । निःस्तब्ध खड़े ही रहे । मानो किसी गहरे विचार में खो गए । कुछ स्वस्थ होकर फिर बोले-जंबूद्वीपे... भ... र... त... और वहीं रुक गए । उस समय उनकी आँखों से भल्ल-भल्ल आँसू बह निकले ।"

"भरत ! इस पर से मैं निश्चित ही कह सकता हूँ कि तुम्हारा नाम स्मरण होते ही रामचंद्रजी व्यथित-अत्यंत व्यथित-हो रहे हैं । तुम्हारी स्मृति उनके लिए अत्यंत दुःखद बनी है । यदि तुम नहीं होते, तो भरतक्षेत्रे..आदि पाठ का सरपट उच्चारण कर लिया होता । उसी समय मैंने मन ही मन निश्चय किया कि रामचंद्रजी के हृदय में भरत तो आज भी ज्यों का त्यों विराजित है ।"

इन शब्दों को सुन कर भरत हर्ष से पागल-जैसे बन गए । उनकी दोनों आँखों से सावन-भादो बह निकले । वे बोल उठे, "अहो ! बृहद बंधु ! ओ पतितपावन! अकारणवत्सल !" अंतिम रात की कुछ क्षणें ऐसे ही गुजर गईं । पुनः भरद्वाज ऋषि ने कहा, "भरत ! समग्र जीवन मैंने तप किया; और उससे जो पुण्य का प्राग्भार तैयार हुआ, उसके एवज में मुझे राम के दर्शन हुए, परन्तु राम के दर्शन से मुझे जो पुण्य प्राप्त हुआ, उसके एवज में उस राम के भी हृदय में जा बैठे भरत के दर्शन हुए । आज मेरा जन्म पावन हो गया ।"

सुनहु भरत ! हम झूठ न कहहीं, उदासीन तापस बन रहहीं
सब साधन कर सुफल सुहाया, लखन-रामसीय दरसनुं पाया ।
(ते हि फल कर फल दरस तुम्हारा, सहित पयाग सुभाग हमारा)

-तुलसी चौपाई

राम के बदले भरत वनवासी होने को तैयार

रामचंद्रजी के विरह से उद्विग्न रहते भरत ने जनकराजा से वार्तालाप करते हुए वशिष्ठ ऋषि से कहा, "भगवन् ! बड़े भाई का वनवास छुड़ाने के लिए कोई तो रास्ता होगा न ? मुझसे यह कटु सत्य सहन नहीं हो रहा है ।"

वशिष्ठ ऋषि ने कहा, "भरत ! एक रास्ता है । राम के बदले भरत चौदह वर्ष

का वनवास स्वीकार ले ।"

भरत तुरंत बोले, "अहो ! इसमें क्या बड़ी बात है ? यह भरत अकेला ही नहीं; परन्तु हम तीनों भाई वनवास स्वीकार लें; और वह भी मात्र १४ वर्ष के लिए नहीं, बल्कि समग्र जीवन के लिए ।

यदि राम अयोध्या में लौटें, तो इसकी खातिर जो आहुति देनी पड़े, हमारे लिए छोटी है ।"

"परन्तु भगवन् !", भरत आगे बोले, "तो भी एक बात का घाव तो मेरे अंतर में जीवन भर ताजा ही रहेगा कि मेरे जैसे पापी के निमित्त रामचंद्रजी को थोड़े दिन भी वन में रहना पड़ा । यह घाव कभी भरेगा नहीं ।"

फिर भरत चित्रकूट पर्वत पर रामचंद्रजी के पास गए । माता कैकेयी को देखते ही रामचंद्रजी उनकी तरफ दौड़े, "माताजी ! माताजी ! आप ! यहाँ पधारीं !"

"बेटा, राम ! तेरे दर्शन के लिए तो पूरा जगत उत्सुक है । मैं तो तेरी माँ हूँ । बेटा! चल, अब अयोध्या लौट चल । पुत्र ! मेरी भूल हो गई है । मुझे इस अपराध के लिए क्षमा कर । पूरा अयोध्या मेरी आलोचना कर रहा है । फफक-फफक कर रो रहा है । अब यह स्थिति मुझसे देखी नहीं जाती । भरत के प्रति मेरी मोहदशा ने मुझे भुलावे में डाल दिया । ऐसा होने की तो सपने में भी मैंने कल्पना नहीं की थी ।"

कैकेयी का समर्थन करते हुए राम पर्णकुटीर आए । सभी बैठे । राम के पैरों से लिपट कर हिचकियाँ भरते भरत बोले, "बड़े भाई ! आप वापस लौटे । सभी मुझे राजलोलुपी कहते हैं । मेरे लाट पर लगे दाग जैसे कलंक को तुरंत दूर करें ।"

"बड़े भाई ! पूरी अयोध्या आपके विरह की वेदना से तड़पती है । महर्षि वशिष्ठ ने भी आपको अयोध्या लौटा लाने का संदेश भेजा है । अत: अब आप विलम्ब न करो । अभी वापस चलो । वनवास के इस एकेक पल का दर्शन मेरे लिए हजारों काले नागों के डंख की वेदनातुल्य हैं ।"

इतना कह कर भरत शांत हुए । "राम क्या जवाब देते हैं ?" यह जानने के लिए सभी राम की तरफ टकटकी लगाए देखते रहे ।

गंभीर स्वर से राम बोले, "भरत ! पिताजी की आज्ञा है ! अत: तुझे ही अयोध्यापति बनना होगा । महर्षि वशिष्ठ भी मुझे लौटा लाने की आज्ञा कैसे कर

सकते हैं ? तो फिर पिताजी की आज्ञा का क्या होगा ? संतों की सत्ता के माथे धर्ममहासत्ता का चक्र अविरत चलता रहता है । उसका उल्लंघन उनसे भी नहीं हो सकता ।"

कुछ देर शांत रह कर राम बोले, "यदि राम इस प्रकार अयोध्या लौटेगा, तो राम की ७१ पीढ़ियों को कलंक लगेगा । सभी कहेंगे राम सपूत नहीं निकला ! राज के लोभ से वनवास त्याग कर अयोध्या गया ! नहीं, ऐसा तो कभी नहीं हो सकता ।"

और... तुरंत ही रामचंद्रजी ने सीता को इशारा किया । पंद के झरने से हस्तसम्पुट में पानी आदि लेकर वे लौट आईं । रामचंद्रजी सत्तावाही आवाज से बोले, भरत ! ले, यहीं मैं तेरा अयोध्यापति के रूप में राज्याभिषेक करता हूँ । चल, देरी मत कर । बड़े भाई की आज्ञा का उल्लंघन भरत जैसे महात्मा कैसे करते ? विवशता से उन्होंने आज्ञा स्वीकारी । संक्षिप्त उपचार से रामचंद्रजी ने भरत को वहीं अयोध्यापति के रूप में घोषित किया । कैकेयी तो स्तब्ध हो गईं । रामचंद्रजी के दैवत के सामने टिकने की उनमें कोई शक्ति नहीं थी ।

अयोध्यापति भरत अयोध्या लौटे ।

www.yogpradhan.com

-ऐसे थे भरत ! राज्यविरक्त ! आज्ञा-प्रेमी ! उचित-सेवी !

अनासक्त योगी ! राम-भक्त !

-प्रजा के माथे राजा की सत्ता थी; राजा के माथे ऋषियों की सत्ता थी; और ऋषियों के माथे धर्म-महासत्ता थी ।

-कर्मवशात् पाप तो अभी हो जाए; परन्तु कैकेयी की तरह हार्दिक पश्चाताप तो कुछ ही कर सकते हैं ।

-कैसे थे राम ? अजातशत्रु ! शत्रुतुल्य वर्ताव करने में निमित्तभूत बनी सौतेली माता कैकेयी की तरफ भी उनकी कैसी भक्ति ! माता के आते ही स्वयं दौड़ते उनके पास गए !

(इसके बाद के वनवास, सीतापहरण, रावणयुद्ध, रावणवध के प्रसंग पूर्व के विविध पात्रालेखनों में आ गए हैं ।

अब जिसमें भरत की मुख्यता है, वह भरत की दीक्षा आदि प्रसंग हम यहाँ भरत के पात्रालेखन प्रकरण में देखें)

रामचंद्रजी का अयोध्या में प्रवेश

रावण-विजय प्राप्त करने के बाद अयोध्या लौट रहे राम व लक्ष्मण को पुष्पक विमान से आते देख भरत व शत्रुघ्न अपने बडे भाइयों का स्वागत करने हस्तिराज पर बैठ कर सामने आए । राम और लक्ष्मण पुष्पक विमान से नीचे उतरे और भरत तथा शत्रुघन भी हाथी से नीचे उतरे । भरत सीधे राम के चरणों में गिर गए । राम ने भरत का हाथ पकड़ कर खड़ा किया और उसे प्रेम से भेंट पड़े । भरत व शत्रुघ्न ने भी लक्ष्मण के चरणों में नमस्कार किया । राम वन में फल खाते थे । जटा बढ़ाते थे, छालिया वस्त्र पहनते थे; जमीन पर सोते थे; यह सब जैसे-जैसे भरत जानते गए, वैसे-वैसे भरत ने भी वह सब आचरण में रखा था । राम जंगल में रहेंगे और भरत यदि अयोध्या के राजमहल में रहेगा, तो लम्बे समय तक जीवित नहीं रहेगा, ऐसा कौशल्या माँ से कह कर उसने अयोध्या के पास स्थित नंदिग्राम में निवास किया था । राम धरती पर सोएँ; भरत भी धरती पर सोएँ, ऐसी समानता भरत को स्वीकार नहीं थी । अत: भरत धरती में गहरा गड्ढा कर सोते थे । कैसा कमाल ! सीता को राम नहीं होना है और भरत को समान नहीं होना है !

www.yugpradhan.com

ऐसे शरीर से दुर्बल हुए दो भाइयों का जब आलिंगन हुआ, तो कुछ क्षणों तक अयोध्या के हजारों लोग यह निर्णय नहीं कर सके कि दोनों में कौन राम है ? कौन भरत है ?

इसके बाद अयोध्यानगरी में राम और लक्ष्मण का भव्य आडंबरपूर्वक प्रवेश हुआ और राम आदि सभी ने आकर सभी माताओं को भावपूर्ण प्रणामादि किए ।

एक दिन भरत रामचंद्रजी से बोले, "हे बंधु ! तुम्हारी आज्ञा से ही मैंने इतने समय तक राज चलाया, परन्तु अब तुम मुझे दीक्षा लेने की अनुमति दो । मुझे इस संसार पर भारी उद्वेग पैदा हो गया है । अब इस राज्य में रहने का मेरा उत्साह नहीं है ।"

भरत का वैराग्य अपरम्पार था । यह वैराग्य मात्र दशरथ के ही उपदेश से नहीं जागा था, बल्कि उससे पूर्व भी भरत विरागी थे । जब राम सीता के स्वयंवर में गए थे; और धनुष्य का टंकार कर सीता से विवाह किया था, तभी सीता जैसी शीलवंती और गुणवंती सुंदरी मिलने पर भरत बोले थे, "अहो, बड़े भाई का पुण्य कितना प्रबल है ! पिताजी से भी अधिक उनका पुण्य है, जिससे सीता जैसी अद्‌भुत स्त्री

उन्हें मिली । यह सब पुण्य की बलिहारी है !" उसी समय भरत को अभी से पुण्य और पाप की कथा करते देख कैकेयी को आश्चर्य हुआ था और उसे विचार आया, "यह लड़का अभी से पुण्य व पाप करने लगा है, तो कहीं विरागी होकर दीक्षा न ले ।" इस विचार से भरत को संसार में उलझाने,भद्रा नामक जनक राजा के बांधव की पुत्री के साथ उसका विवाह कर दिया था ।

भरत दीक्षा के मार्ग पर

इस बात को पुन: याद कर लें कि भद्रं के साथ भरत का ताजा विवाह होने के बावजूद पिता दशरथ की दीक्षा की भावना जान कर भरत के अंतर में दीक्षा लेने का भाव आग की तरह प्रज्वलित हो उठा था ।

पिताजी ने संसार त्याग की इच्छा व्यक्त करते हुए जो उपदेश दिया, उससे भरत का वैराग्य जोरदार भभक उठा था, परन्तु रामचंद्रजी के आग्रह के कारण और दशरथ के प्रतिज्ञापालन की खातिर उसे राज्य स्वीकारना पड़ा और दीक्षा नहीं ले सका ।

भरत का दीक्षार्थ राम से आग्रह और राम का निषेध

www.vijaydhan.com

जब भरत ने राम के समक्ष दीक्षा लेने का प्रस्ताव रखा, तो राम ने अश्रुपूर्ण आँखों से कहा, "भरत ! तू यह क्या कह रहा है ? हम तो तेरे बुलावे पर ही यहाँ आए हैं । तू खुशी से राज कर और दीक्षा लेने की बात छोड़ दे ।"

भरत कहता है, "बड़े भाई ! तुम्हें क्या कहूँ ? इतने दिन मैंने इस अयोध्या का राज कैसे चलाया है ? यह तो मैं ही जानता हूँ । दीक्षा लेने की मेरी तीव्र अभिलाषा होने के बावजूद मुझे राज चलाना पड़ा । अत: मेरी पिंजरे में बंद शेर जैसी दशा हो गई थी । अब कुछ दिन बाद नहीं । मुझे तो तत्काल दीक्षा लेनी है । मेरे वैराग्य का किसी को विचार भी नहीं आता है और अभी भी मुझे राज चलाने का आग्रह किया जाता है ?"

इस प्रकार भरत के जोरदार वैराग्य के सामने भी जब राम का संसार में रहने का आग्रह भरत ने देखा, तो वे वहाँ से उठ कर जाने लगे । अत: लक्ष्मण ने उनका हाथ पकड़ कर बैठाया ।

लक्ष्मण ने भरत से कहा, "भाई ! चौदह वर्ष बाद हम मिलते हैं । कुछ दिन साथ रहते हैं । सुख-दु:ख की बातें करते हैं । अनुभवों का आदान-प्रदान करते हैं । रे ! इतना व्यवहार-धर्म भी तू नहीं समझता ! हमारी भावना का तुझे खयाल नहीं

है ! बस... दीक्षा की ही बात करने लगा !"

हाय ! संसारी जीव ! भरत का तेज वैराग्य तुम्हें कैसे पता चलेगा ?

सीता आदि द्वारा भरत को रागी बनाने का प्रयास

सीता और विशल्या आदि ने देख लिया कि भरतजी का वैराग्य अपूर्व कोटि का है । इसीलिए भरत के मन से दीक्षा लेने की बात हटा देने के लिए सीताजी आदि भरत को जबरन जलक्रीडा करने के लिए ले गए ।

जलक्रीडा करके जैसे ही भरत बाहर निकले कि भुवनालंकार नामक हाथी ओलानस्तंभ को उखाड़ कर उन्मत्त बन कर दौड़ता वहाँ आ पहुँचा, परन्तु भुवनालंकार ने जैसे भरत को देखा कि उनके दर्शन मात्र से शांत हो गया । इससे भरत भी हर्षित हुए ।

भरत आदि की एक हजार राजाओं सहित दीक्षा

कुछ समय में ही देशभूषण और कुसभूषण नामक दो मुनि अयोध्या के उद्यान मो आए । राम, भरत आदि उनके पास गए ।

आज गुरुवर से दीक्षा लने का दृढ़ संकल्प घोषित किया ।

www.vadbadhan.com

भरत का ऐसा संकल्प, अन्य भी एक हजार मुकुटबद्ध राजाओं ने जब जाना, तो उन्होंने सोचा, "अहो ! ऐसे महान राजवी भरत जब संसार को लात मारते हैं ? तो उनकी तुलना में हमारे पास क्या अधिक है कि हम अभी भी भोग में डूबे रहे हैं ?" यह सोच कर भरत के साथ-साथ उन्होंने भी दीक्षा लेने की घोषणा की ।

इस प्रकार भरत और अन्य एक हजार राजाओं ने दीक्षा ली । भरत की माता कैकेयी ने भी दीक्षा ली । और अपनी आत्मसाधना कर सभी परमपद (मोक्ष) को प्राप्त हुए ।

संसार में रह कर भी कैसे अनासक्त थे भरत ! आसक्ति से आसक्ति मरती है ! यह बात मानो उसने सिद्ध कर दिखाई । राम के प्रति अथाक भक्ति ने संसार का-राजगद्दी से लेकर तमाम प्रकार का मोह उड़ा दिया ।

राम तो सभी के दिल में होंगे, परन्तु राम के हृदय में भरत थे । इसीलिए राम की तुलना में भरत के महान कहना पड़ता है ।

रामायण का भरतायन नामकरण करना जरूरी नहीं लगता ?

* * *

युगप्रधान आचार्यसम पंन्यास प्रवर श्री चन्द्रशेखरविजयजी म.सा. प्रेरित, वर्धमान संस्कृतिधाम संचालित शेठ श्री कांतिभाई लल्लुभाइ झवेरी

तपोवन संस्कारधाम - नवसारी

धारागिरि, पो. कबीलपोर, ता.जि. नवसारी. पीन - 396424

शिक्षण, संस्कार और सवलतो का संगम {English Medium}

जैन सी.बी.एस.ई (C.B.S.E.) बोईज् रेसीडेन्सीयल स्कुल (Std. 5th to 10th)

* कुदरती और प्रदुषण रहित वातावरण
* सात्विक और पौष्टिक आहार
* व्यवहारिक, धार्मिक और बौधिक विकास
* स्टेज प्रोग्राम की तालीम
* Inhouse खेर

* स्पेशियल क्रीसमस और समरकेम्प
* Life Enrichment शिविर

प.पू. गुरुमा के शिष्यो द्वारा जीवन घडतर और संस्करण

* देश-विदेशमे पर्युषण की आराधना करवाने की तालीम
* मानवप्रेम, पशुप्रेम और श्रमप्रेम के पाठ

संगीत, नृत्य, ड्रामा, बेन्ड आदि का स्पेशियल कोचिंग

* हरएक क्लासरुम मे E-Board द्वारा प्रशिक्षण
* सवलतो सें पूर्ण कम्प्युटर लेब

Std. 10th C.B.S.E. बोर्ड का 100% रीझल्ट

सी.पी. गोइन्का इन्टरनेशनल द्वारा तपोवन विद्यालय का संचालन

क्रिकेट, स्केटींग, वोलीबोल, फुटबोल, कराटे, टेबल-टेनिस आदि स्पोर्ट्स एक्टीवीटीज के स्पेशियल कोचिंग

प्रवेश के लिए संपर्क करे

मुंबई
अंधेरी ओफिस - 022-65762530/31
निमेषभाई - 9324246348
विनोदभाई - 9321041323

नवसारी
भाविनभाई - 93777 70006
पुना : राजेशभाई - 98220 20685

सुरत
हेमेन्द्रभाई - 9723821688
धर्मेशभाई - 93747 08503

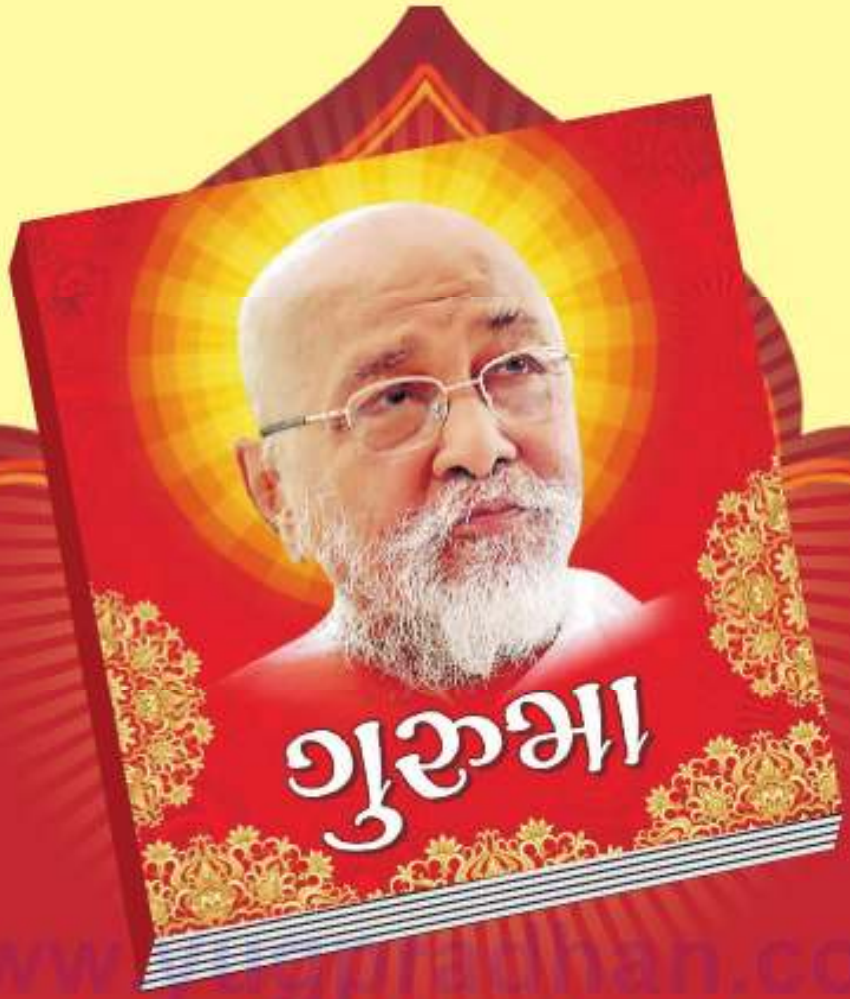

www.yugpradhan.com

जिनके रक्त के हर बुँद में सिंहसत्त्व भरा हुआ था...
जीनके हृदय के प्रत्येक धबकार में करुणा धबक रही थी...
जिनके रोम-रोम में शासनराग उभर रहा था...
एसे बीसवी सदी के अद्वितीय
पुण्यवैभव - शक्तिवैभव और गुणवैभव के स्वामी
परम शासनप्रभावक युगप्रधान आचार्यसम पूज्यपाद
पंन्यास प्रवर **श्री चन्द्रशेखर विजयजी म.साहेब** की
सेवा - संयम - समर्पण - समाधि - और शौर्यभरी
जन्म से कालधर्म तककी अनेक घटनाओं को
अनोखी शैली में प्रस्तुत करता हुआ विशिष्ट ग्रंथ याने

गुरुमा
स्मृतिग्रन्थ

Different Printing Hub : 8983896805

प. पु. युगप्रधान आचार्यसम पंन्यासवर श्री चन्द्रशेखरविजयजी म. स्ा.लिखित पुस्तके
पढने/डाऊनलोड करने के लिए अवश्य मुलाकात ले www. yugpradhan.com